शक्तिपुंज निराला

शक्तिपुंज

निराला

निराला

डॉ॰ कृष्णदेव झारी

शक्ति साधना और आराधना
प्रगति और प्रयोग के कवि

शक्तिपुंज निराला

निराला

संस्करण
1986

मूल्य
100 00

ISBN—81-85023-31-X.

मुद्रक
राष्ट्रभाषा प्रिंटिंग ऐजेन्सी द्वारा
अशोक प्रिंटिंग प्रेस दिल्ली-६

प्रकाशक
शारदा प्रकाशन
16/एफ-3 असारी रोड,
दरिया गंज, नई दिल्ली-110002

विजयदेव झारी द्वारा शारदा प्रकाशन, नई दिल्ली के लिए प्रकाशित
आवरण सज्जा – श्री चेतन दास,
एवं आवरण मुद्रण – गणेश प्रेस, दिल्ली-31, द्वारा

प्राक्कथन

श्री सूर्यकांत त्रिपाठी निराला युगकवि थे। युगीन विरोधों और विषमताओं का जैसा सामंजस्य निराला-काव्य में है वैसा अन्यत्र मिलना कठिन है। आज अनेक आधुनिक वादों और नई-नई शैलियों के कवि उन्हें अपना आदि गुरु और मार्गदर्शक मानते हैं, तो इसका कारण यही है कि निराला ने सम्पूर्ण युग बोध को आत्मसात् कर लिया था। वे एक साथ ही छायावाद के प्रवर्तक भी थे और प्रगति के प्रेरक भी, वे राष्ट्रवादी भी थे और साथ ही अन्तर्राष्ट्रवादी मानवतावादी भी थे। उनका काव्य एक ओर परम्परा के अजस्र स्रोत से जीवन रसधारा प्राप्त करता है दूसरी ओर प्रयोगों के नवनवोन्मेष का द्योतक है। गीत प्रगीत, छंद मुक्तछन्द, मुक्तक-प्रबंध, आदर्श यथार्थ, वैयक्तिकता-सामाजिकता, सिद्धान्त व्यवहार, परम्परा प्रयोग, छायावाद-प्रगतिवाद, अतीत-वर्तमान, आक्रोश-करुणा, व्यंग्य विनम्रता, परुषता-कोमलता, रहस्यवाद भौतिकतावाद, भगवद्भक्ति जीवन आस्था आदि अनेक द्वन्द्वों का समन्वय निराला काव्य की प्रमुख विशेषता है। अनेक युगीन वाद, काव्य प्रवृत्तियाँ और शैलियाँ उनके काव्य में अन्तर्भूत हैं, पर वे किसी एक की सीमा में बंधकर नहीं रहे। वे सब के स्रष्टा होकर भी सबसे ऊपर रहे।

निराला काव्य के इन विविध पक्षों का अध्ययन इस पुस्तक में किया गया है। निराला और उनके कृतित्व पर कई पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। पर निराला काव्य की शक्ति का रहस्योद्घाटन शायद ही किसी में किया गया हो। मैं समझता हूँ कि निराला-काव्य की शक्ति का पूर्ण रहस्य न तो उनके द्वारा किये गए मुक्त छन्द आदि के नव प्रयोगों में है, न संगीतपूर्ण गीत-सृजन में। न दार्शनिक मन्तव्यों और प्रगतिशील विचारों के प्रकाशन या नैतिक तत्त्वों में उनकी शक्ति निहित है, न भाषा शैली के विविध सफल प्रयोगों में। यहाँ तक कि निराला-काव्य की शक्ति उनकी बहुचर्चित 'जुही की कली', 'शेफालिका' जैसी कोरी शृंगारपरक या प्रकृतिपरक रचनाओं में भी नहीं मानी जा सकती। सच तो यह है कि जहाँ भाषा शैली, छन्द गीत-संगीत आदि नव प्रयोगों ने निराला-काव्य को सशक्त बनाने में अंशतः योग दिया है, वहाँ उसकी वास्तविक शक्ति उसमें अभिव्यंजित उदात्त भाव संवेदनाओं में ही निहित है। जीवन के वैषम्य पर निराला की घृणात्मक या व्यंग्यात्मक प्रतिक्रिया, दुखी-पीड़ित शोषित मानवता के प्रति निराला की उदात्त करुणा, शोषकों, पीड़कों, पूँजीपतियों तथा अन्य समाज विरोधी तत्त्वों के प्रति उनकी उदात्त घृणा, मानव, मानवों, भगवान् या

जननी-जन्मभूमि के प्रति निराला की उदात्त प्रेम-भावना या भक्ति, उनकी राष्ट्रीय-चेतना, ओज और वीरता की उदात्त ध्वनियों से युक्त कर्मोत्साह आदि जीवन की नाना-विध उदात्त भावानुभूतियाँ ही निराला-काव्य की शक्ति का स्रोत है। निराला-काव्य की इसी शक्ति—इसी ऊर्जा का अध्ययन मैंने, अपने उदात्त भावरस के सिद्धान्त को मूल्यांकन की कसौटी बनाकर, इस ग्रन्थ के तृतीय विमर्श में किया है।

प्रथम विमर्श में निराला-काव्य की पृष्ठभूमि पर प्रकाश डाला गया है। निराला के निजी जीवन तथा युगीन परिस्थितियों और पूर्व-काव्य परम्पराओं के अध्ययन से उनके कवि व्यक्तित्व के निर्माणकारी स्रोतों की छानबीन की गई है। द्वितीय विमर्श में 'परिमल' से लेकर 'सांध्यकाकली' तक निराला की समस्त कृतियों का आलोचनात्मक अध्ययन करते हुए उनकी काव्य चेतना के क्रमिक विकास को समझाया गया है। चतुर्थ विमर्श में निराला के अध्यात्म दर्शन और जीवन-दर्शन अर्थात् उनके काव्य के बुद्धि-पक्ष पर विचार किया गया है। पंचम विमर्श में युगकवि निराला के काव्य का अध्ययन सभी आधुनिक वादों—छायावाद, रहस्यवाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद आदि—के संदर्भ में किया गया है। षष्ठ विमर्श में निराला-काव्य के अभिव्यक्ति और कला-शिल्प के सभी पक्षों की विवेचना की गई है।

इस सम्पूर्ण अध्ययन में मेरा निजी दृष्टिकोण और नया मूल्यांकन स्थान-स्थान पर दिखाई देगा: जैसे निराला के मुक्त छन्द और काव्य में छन्द की आवश्यकता पर विचार करते हुए मैंने निष्कर्ष निकाला है कि छन्द कविता का अनिवार्य तत्त्व है। यह बन्धन अवश्य है, पर ऐसा श्रमसाध्य बाँध है जो शक्ति उपजाता है। संगीत अपने में एक मनोहारी कला है, कविता को उससे वंचित करना कविता का अहित करना है। स्वयं निराला ने अपने मुक्त छन्द की उपयोगिता कविता की अपेक्षा नाटक के वार्तालाप में मानी थी। वर्तमान कवियों से हमने अनुरोध किया है कि वे कविता में लय की उपेक्षा न करें। कविता भी यदि गद्य बन गई—जैसा कि अब हो रहा है—तो कविता कहाँ बचेगी? भिन्न भिन्न प्रयोग लयबद्ध छन्दों के निर्माण में दिखाने चाहिए, न कि गद्यमयी पंक्तियों को छोटा-बड़ा रखने या विराम-चिह्नों के बेमतलब अटपटे प्रयोगों में। हम अपनी छन्द-परम्परा को यों मिट्टी में न मिलायें तो अच्छा होगा। निराला की मुक्त छन्द कविता को छन्दरहित कविता मान लेने की भ्रांति के ही कारण आज हिन्दी में आए दिन कविता के नाम पर जो ढेरों ऊलजलूल एवं विकृत गद्य रचा जा रहा है, उसकी रोकथाम जरूरी है।

इसी प्रकार सभी विमर्शों के विवेचन में नया निजी दृष्टिकोण प्रस्तुत किया गया है। आशा है निराला-काव्य के सर्वांगीण अध्ययन और सही मूल्यांकन की दिशा में प्रस्तुत पुस्तक उपयोगी सिद्ध होगी।

भूलभुलैयाँ रोड, महरौली
नई दिल्ली—३०

विषय-सूची

● प्रथम विमर्श

निराला काव्य की पृष्ठभूमि

१. जीवन परिस्थितियां और व्यक्तित्व ३
२. युगीन परिस्थितियां (सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक) १०
३. साहित्यिक पृष्ठभूमि १४
(क) निराला-पूर्व हिन्दी काव्य
(ख) अंग्रेजी रोमांटिक काव्य और निराला

● द्वितीय विमर्श

कृतित्व : काव्य-चेतना का विकास

१. निराला की काव्य-चेतना का विकास ... २५
(क) प्रारंभिक कृतित्व : परिमल
(ख) गीतिका
२. अनामिका ... ३०
३. राम की शक्ति-पूजा ... ३१
४. तुलसीदास ... ३६
५. कुकुरमुत्ता ... ४८
६. अणिमा ... ५४
७. बेला ... ६०
८. नये पत्ते ... ६४
९. अर्चना, आराधना और गीत-गुंज ... ७२
१०. सांध्यकाकली ... ७५
११. निराला की अन्य रचनाएं ... ८०

● तृतीय विमर्श

निराला-काव्य की शक्ति : उदात्त भावरसानुभूति

काव्य की शक्ति : ... ८५
उदात्त रसानुभूति

१. निराला-काव्य में करुणत्व ... ८८
उदात्त करुणा : उदात्त घृणा
२. *निराला का व्यंग्य-काव्य* ... ९६
उदात्त हास्य : उदात्त घृणा
३. नारी-सौन्दर्य और प्रेम (शृंगार रस) ... १०५
४. निराला के प्रार्थना-गीत (भगवद्भक्ति) ... ११७
५. निराला की राष्ट्रीय भावना ... १२४
(देशप्रेम : देशभक्ति)
६. निराला का प्रकृति-चित्रण ... १३२
(प्रकृति-अनुराग)
● चतुर्थ विमर्श
बुद्धि-पक्ष : दार्शनिकता
१. अध्यात्म दर्शन और साधना ... १४१
२. *जीवन-दर्शन और प्रगतिशीलता* ... १५६
● पंचम विमर्श
आधुनिक वाद और निराला
१. युगकवि निराला ... १७१
२. छायावाद और निराला ... १७३
३. रहस्यवाद और निराला ... १९२
४. प्रगतिवाद और निराला ... २०४
५. प्रयोगवाद और निराला ... २१२
● षष्ठ विमर्श
कलापक्ष
१. काव्य में छन्द-विधान और निराला का मुक्त छन्द ... २१३
२. निराला की भाषा-शैली ... २३१
३. बिम्ब-विधान और भाषा की चित्र-शक्ति ... २३६
४. प्रतीक-विधान ... २३८
५. अलंकार-विधान ... २४२
६. काव्य-रूप एवं गीत-प्रगीत-शिल्प ... २५१

प्रथम विमर्श

निराला-काव्य की पृष्ठभूमि

- जीवन परिस्थितियाँ और व्यक्तित्व।
- युगीन परिस्थितियाँ
  (सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक)
- साहित्यिक पृष्ठभूमि।
  (क) हिन्दी काव्य।
  (ख) अंग्रेजी रोमैंटिक काव्य और निराला।

: १ :

जीवन-परिस्थितियाँ और व्यक्तित्व

जिस साहित्यकार की आत्मा जितना अधिक आत्मक्रन्दन करती है, जर्जर जीवन की भट्ठी में जितना अधिक तपती है, युग आघातों को जितना अधिक सहती है और जीवन की चक्की में पिसती हुई जितनी ही अधिक मर्म व्यथा की निजी अनुभूतियां प्राप्त करती है, उतनी ही अधिक सचाई और ईमानदारी से वह साहित्यकार जीवन का हाहाकार अपनी रचनाओं में प्रस्तुत कर सकता है। निराला का काव्य उनके व्यक्तिगत जीवन अनुभवों का प्रतिफल है। अतः निराला की काव्य चेतना के विकास को समझने के लिए हमें उनकी जीवन परिस्थितियों और उनके व्यक्तित्व को जानना आवश्यक है।

निराला का जन्म माघ शुक्ल एकादशी, सं० १९५३ (जनवरी, १८९७ ई०) को महिषादल (बंगाल के मेदिनीपुर जिले की भूतपूर्व रियासत) में हुआ था। उनके पूर्वज मूलतः उत्तर प्रदेश के गढ़ाकोला ग्राम (उन्नाव जिला) के रहने वाले थे। निराला जी पितामह श्री शिवधारी त्रिपाठी के तृतीय पुत्र रामसहाय त्रिपाठी की दूसरी पत्नी से इकलौते पुत्र थे। उनके पिता श्री रामसहाय त्रिपाठी हृष्टपुष्ट और डीलडौल के व्यक्ति थे। वे पहले गवर्नर बंगाल के आरक्षक रहे, बाद में राजा साहब महिषादल ने उन्हें अपने यहाँ बुला लिया था। निराला जी की माता श्रीमती रुक्मिणी देवी उन्हें तीन साल का अबोध शिशु छोड़कर चल बसी थीं। पालन-पोषण इनकी चाची और भाभी ने किया। निराला जी का जन्म का पारिवारिक नाम सूर्य कुमार त्रिपाठी था, बाद में १९१७ १८ ई०में उन्होंने स्वयं बदलकर सूर्यकान्त त्रिपाठी रख लिया। निराला छोटे से थे तभी बंगला में तुकबन्दी करने लगे थे। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा बंगला में ही हुई। स्कूल में केवल नवीं कक्षा तक ही शिक्षा प्राप्त कर पाये थे। उन्होंने घर पर स्वाध्याय से ही संस्कृत अंग्रेजी, उर्दू, हिन्दी, फारसी आदि का अच्छा ज्ञान पा लिया था।

सन् १९११ में उनका विवाह हुआ था। पत्नी राय मनोहरा देवी रूपवती एवं सुशीला थीं। उनसे सन् १९१४ में पुत्र रामकृष्ण और १९१६ में पुत्री सरोज की प्राप्ति हुई। निराला जी हाई स्कूल छोड़कर महिषादल के राजा के यहाँ ही सहायक नियुक्त हो गये थे। किन्तु यौवन के प्रारम्भकाल में ही निराला पर पारिवारिक विपत्तियों का पहाड़ टूट पड़ा। सन् १९१७ में पिता की तथा १९१८ में उनकी प्रिय

२४ मे 'मतवाला' मे चले आए। 'मतवाला' मे ही सर्वप्रथम उनकी आरम्भिक रचनाएँ प्रकाशित हुई और हिन्दी ससार को उनकी प्रतिभा का परिचय मिला। उनका 'निराला' नाम 'मतवाला' के अनुप्रास और उनकी निराली स्वच्छन्द प्रवृत्ति के ही कारण पडा। इस बीच वे अपनी अल्पाय मे से भी अपने घर वालो को बराबर पैसा भेजते थे।

सन् १६२८ मे निराला अपने गाँव गढाकोला आ गए। उन दिनो गाँव मे किसानो पर जमीदारो के अत्याचार हो रहे थे। बेगार, बेदखली और छीना-झपटी का दौर चल रहा था। निराला का भी बागीचा और कुछ जमीन छिन गई थी। निराला ने गाँव मे किसान आन्दोलन छेड दिया। किसानो मे जागरण के अभाव तथा सगठन की कमी के कारण यद्यपि वे इस सघर्ष मे सफलता प्राप्त नही कर सके, पर इससे उनकी विद्रोही प्रवृत्ति को बल मिला। अपने गाँव मे आने पर उनका जीवन और भी आर्थिक कठिनाइयो मे पड गया। गाँव से जो कविताएँ पत्र पत्रिकाओ को भेजते थे, उनसे क्या मिल सकता था? उन्होने उपन्यास-कहानियाँ बेचकर निर्वाह करने की ठानी। पर जो मिलता था, उससे परिवार का खर्च चलाना कठिन था।

सन् '३० मे निराला लखनऊ चले गए। वहाँ 'सुधा' पत्रिका का सपादन-कार्य अपने हाथ मे लिया। इसी वर्ष उनका प्रथम काव्यसग्रह परिमल' प्रकाशित हुआ। यद्यपि इससे कुछ वर्ष पूर्व 'अनामिका' नामक पुस्तिका मे उनकी कुछ आरम्भिक कविताएँ प्रकाशित हो चुकी थी पर लेखन को देखते हुए अर्थात् १६१५-१६ से कविता रचना मे प्रवृत्त कवि की कृतियाँ सन् १६३० मे छपें—१४-१५ वर्ष बाद, तो यह स्थिति हिंदी प्रकाशन की दृष्टि से हास्यास्पद नही तो क्या है? पत्र-पत्रिकाओ मे छपवाना भी मजाक नही था। नये स्वर और नई मुक्त कवि-प्रवृत्ति के प्रति परम्परागत साहित्यिको मे अरुचि और उपेक्षा का भाव था। निराला कितने सघर्षों से गुजरे थे, आज कदाचित् हम कल्पना ही कर सकते है। यद्यपि छायावाद के सभी कवियो को आरम्भ मे विरोध का सामना करना पडा था, पर निराला को सर्वाधिक विरोध सहना पडा। उनके मुक्त छन्द, नई दार्शनिक बौद्धिक प्रवृत्ति और नये काव्य प्रयास का उन दिनो बहुत विरोध हुआ था।

सन् १६३१-३२ मे निराला पुन कलकत्ता गये थे। वहाँ 'रगीला' पत्र निकालने का आयोजन हुआ था। पर न तो उन्हे वहा साहित्यिक प्रोत्साहन का वातावरण मिला और न ही आर्थिक दृष्टि से कुछ लाभ हुआ। अत शीघ्र वापस आ गए। वापस अपने गाँव आकर उन्होने घोर आर्थिक सकट की स्थिति मे अपनी प्रिय पुत्री सरोज का विवाह किया—बिल्कुल परम्परा के विपरीत, अपने ही ढग पर। सर्वथा आडम्बरहीन। किसी को निमत्रण नही दिया, पुरोहित भी स्वय बन गये थे। पर हाय! विवाह के चार-पाँच साल बाद ही पुत्री का निधन हो गया। निराला जी यहाँ भी हारे। उन्होने 'सरोज-स्मृति' नामक मार्मिक शोकगीत मे अपनी सच्ची व्यथा व्यक्त की है।

सन १६३२ के बाद निराला फिर लखनऊ रहने लगे थे। आर्थिक स्थिति को

पत्नी की मृत्यु हो गई। यही नहीं, महामारी ने उनके परिवार के और भी कई व्यक्तियों को छीन लिया। डलमऊ (रायबरेली) में पत्नी के दाह संस्कार के बाद निराला ससुराल से अपने गाँव पहुंचे तो रास्ते मे ही बड़े भाई की मृत्यु का दुखद समाचार मिला। घर पहुँचने पर दादा को मरा पाया। इसके बाद भाभी और भाभी की दूध-पीती बच्ची चल बसीं। इस पारिवारिक सकट और विशेषत पत्नी की मृत्यु ने उनकी कोमल भावना को झकझोर डाला। उनकी शृगारिक प्रवृत्ति को उन्नयन की एक दिशा यहीं से प्राप्त हुई।

निराला ने खड़ी बोली हिन्दी अपनी प्रिय पत्नी की ही प्रेरणा से सीखी थी। उनकी पत्नी ने एक बार ताना मारा था कि तुम्हें हिन्दी कहाँ आती है? बैसवाड़ी जानते हो, बोल लेते हो और तुलसी रामायण पढ़ी है, बस! तुम खड़ी बोली का क्या जानो? यह भर्त्सना सुनने के बाद निराला जी ने प्रतिज्ञापूर्वक खड़ी बोली हिन्दी का समुचित ज्ञान प्राप्त किया। 'गीतिका' के समर्पण मे कवि ने पत्नी का यह ऋण स्वीकारते हुए उन्हें ही अपनी रचना समर्पित की है। सास तथा अन्य सम्बन्धियो के जोर देने पर भी निराला ने दूसरी शादी करने से साफ जवाब दे दिया था।

निराला का बचपन पुराने कनौजिया ब्राह्मण रीति रिवाजो मे बीता था, जो बालक की सहज विद्रोही प्रवृत्ति के विरुद्ध था। पिता का कड़ा अनुशासन और मार-पीट भी उन्हें सहन करनी पड़ती थी। किन्तु सामाजिक और धार्मिक रूढ़ियो से उन्हें मन-ही-मन नफरत थी। यही कारण है कि पिता की मृत्यु के बाद उनका स्वतंत्र जीवन उनके विद्रोही, निर्भीक और प्रखर व्यक्तित्व के निर्माण में सहायक हुआ।

आकर्षक रूप, लम्बे-तगड़े डील-डौल का शरीर, लम्बा कद, लम्बी भुजाएँ, वृषभकंध, व्यायाम के अभ्यास से सुगठित देह बड़ी बड़ी लुभावनी आँखें, दमकती दंत पंक्ति, लम्बा मुख, पतले होंठ लम्बे बिखरे बाल, चौड़ी पेशानी, चौड़ी छाती, ललित कंठ, गम्भीर मुद्रा—यह था निराला का आकर्षक व्यक्तित्व! प्रथम साक्षात्कार से जान पड़ता था कि किसी रोमन मूर्ति के दर्शन कर रहे हो। संघर्षों और जीवन द्वन्द्वों की भट्ठी में तपे मुख से कटु विद्रोह, क्षोभ और असन्तोष के भाव व्यक्त होते थे। घर के निरामिष भोजन-बन्धन के विरुद्ध उन्हें सामिष भोजन रुचिकर था। स्वयं बढ़िया भोजन बनाने में निष्णात थे। निराला का व्यक्तित्व बड़ा ही स्वाभिमानी था। उन्होने स्वयं कहा है—"मैं जीवन के पीछे दौड़ा हूँ, जीव के पीछे नहीं।" स्वाभिमान को साधारण-सी ठेस लगी और निराला सन् '२० के लगभग महिषादल की नौकरी त्याग कर कलकत्ता आ गये।

कलकत्ता में निराला जी का रामकृष्णाश्रम से सम्बन्ध हुआ। आश्रम से प्रकाशित होने वाले 'समन्वय' पत्र मे उन्होंने दो-तीन वर्ष कार्य किया। वे इसी समय आश्रम के संन्यासियों से दार्शनिक और आध्यात्मिक चर्चाओ मे रुचि लेते थे। वेदान्त और अद्वैत दर्शन का उन्होंने पूरा अध्ययन किया। इसी समय उनको दार्शनिक प्रवृत्ति के विकास का अवसर मिला। बाबू महादेव प्रसाद सेठ की प्रेरणा से वे सन् १९२३-

२४ में 'मतवाला' में चले आए। 'मतवाला' में ही सर्वप्रथम उनकी आरम्भिक रचनाएँ प्रकाशित हुईं और हिन्दी संसार को उनकी प्रतिभा का परिचय मिला। उनका 'निराला' नाम 'मतवाला' के अनुप्रास और उनकी निराली स्वच्छन्द प्रवृत्ति के ही कारण पड़ा। इस बीच व यहाँ प्रत्याय में से भी अपने घर वालों को बराबर पैसा भेजते थे।

सन् १९२८ में निराला अपने गाँव गढ़ाकोला आ गए। उन दिनों गाँव में किसानों पर जमींदारों के अत्याचार हो रहे थे। बगार, बेदखली और छीना झपटी का दौर चल रहा था। निराला का भी बगीचा और कुछ जमीन छिन गई थी। निराला ने गाँव में किसान आन्दोलन छेड़ दिया। किसानों में जागरण के अभाव तथा संगठन की कमी के कारण यद्यपि वे इस संघर्ष में सफलता प्राप्त नहीं कर सके, पर इससे उनकी विद्रोही प्रवृत्ति को बल मिला। अपने गाँव में आन पर उनका जीवन और भी आर्थिक कठिनाइयों में पड़ गया। गाँव से जो कविताएँ पत्र पत्रिकाओं को भेजते थे, उनसे क्या मिल सकता था? उन्होंने उपन्यास कहानियाँ लिखकर निर्वाह करने की ठानी। पर जो मिलता था, उसमें परिवार का सर्च चलाना कठिन था।

सन '३० में निराला लखनऊ चले गए। वहाँ 'सुधा' पत्रिका का सम्पादन कार्य अपने हाथ में लिया। इसी वर्ष उनका प्रथम काव्यसंग्रह 'परिमल' प्रकाशित हुआ। यद्यपि इससे कुछ वर्ष पूर्व 'अनामिका' नामक पुस्तिका में उनकी कुछ प्रारम्भिक कविताएँ प्रकाशित हो चुकी थी पर लेखन का देखते हुए अर्थात् १९१५-१६ से कविता रचना में प्रवृत्त कवि की कृतियाँ सन १९३० में छपें—१४-१५ वर्ष बाद, तो यह स्थिति हिन्दी प्रकाशन की दृष्टि से हास्यास्पद नहीं तो क्या है? पत्र पत्रिकाओं में छपवाना भी मजाक नहीं था। नये स्वर और नई मुक्त कवि-प्रवृत्ति के प्रति परम्परागत साहित्यिकों में अरुचि और उपेक्षा का भाव था। निराला कितने संघर्षों से गुजरे थे, आज कदाचित हम कल्पना ही कर सकते हैं। यद्यपि छायावाद के सभी कवियों को प्रारम्भ में विरोध का सामना करना पड़ा था, पर निराला को सर्वाधिक विरोध सहना पड़ा। उनके मुक्त छन्द, नई दार्शनिक बौद्धिक प्रवृत्ति और नये काव्य प्रयास का उन दिनों बहुत विरोध हुआ था।

सन् १९३१-३२ में निराला पुनः कलकत्ता गये थे। वहाँ 'रंगीला' पत्र निकालने का आयोजन हुआ था। पर न तो उन्हें वहाँ साहित्यिक प्रोत्साहन का वातावरण मिला और न ही आर्थिक दृष्टि से कुछ लाभ हुआ। अतः शीघ्र वापस आ गए। वापस आकर गाँव आकर उन्होंने घोर आर्थिक संकट की स्थिति में अपनी प्रिय पुत्री सरोज का विवाह किया—बिलकुल परम्परा के विपरीत, अपने ही ढंग पर! सर्वथा आडम्बरहीन! किसी को निमंत्रण नहीं दिया, पुरोहित भी स्वयं बन गये थे। पर हाय! विवाह के चार पाँच साल बाद ही पुत्री का निधन हो गया। निराला जी यहाँ भी हारे। उन्होंने 'सरोज-स्मृति' नामक मार्मिक शोकगीत में अपनी सच्ची व्यथा व्यक्त की है।

सन १९३२ के बाद निराला फिर लखनऊ रहने लगे थे। आर्थिक स्थिति को

सुधारने के लिए वे उपन्यास और कहानियाँ भी लिखते थे। 'गीतिका' के गीतों की रचना इसी समय आरम्भ हुई। लखनऊ-वास का यह समय आर्थिक दृष्टि से कुछ सुभीते का समय रहा। इसी समय उन्होंने अपने पुत्र रामकृष्ण का विवाह खुले दिल से किया। उन्होंने अपने पुत्र का वह रिश्ता जो नाना ने काफी दहेज पर तय किया था अस्वीकार कर दिया। पुत्री सरोज के ऐसे विवाह की प्रतिक्रिया और ल - परम्परा के विरोध मे निराला ने अन्यत्र कन्यापक्ष का भी व्यय-भार स्वयं सभालकर, पुत्र का विवाह किया। पर निराला को सुख के ये दिन भी दो तीन वर्षों से अधिक नही मिले। पुत्री सरोज की मृत्यु के पश्चात् निराला फिर दु खी हो गए। लखनऊ का किराये का मकान उन्होने छोड दिया और प्रयाग, बनारस आदि कई स्थानो पर मित्रो के साथ रहने लगे। आर्थिक विपन्नता और पेदर-ये कुटुम्ब के प्राणियो की मृत्यु ने निराला को खिन्न बना दिया था। यद्यपि कुछ मित्रो से उन्हे अपार स्नेह और सम्मान प्राप्त होता था, पर साहित्यजगत् मे अपना उचित सम्मान और स्थान न मिलने के कारण भी वे बहुत दु खी थे। सन् १९३६ के बाद वे इसी से अन्यमनस्क से भी रहने लगे थे न किसी से अधिक बोलते थे, न साहित्य-गोष्ठियो मे ही दिलचस्पी लेते थे। इसी समय आत्मलीन होकर स्वय अपने से बातें करने की आदत-सी भी उनकी बन गई थी।

इसी समय से निराला जी व्यग्य काव्य रचने लगे थे। उनके सामाजिक व्यग्य उनकी इसी खिन्न एव क्षुब्ध मन स्थिति के परिणाम हैं। हिन्दी भाषा और साहित्य पर किए गये आक्षेपो से वे तिलमिला उठते थ। गाँधी जी से हिन्दी कविता के बारे मे उनकी बात-चीत, नेहरू जी की हिदुस्तानी के पक्ष पर उनकी गरमागरम बहस आदि उनके निजी आक्रोश की परिचायक थी। सन् १९३५ के फैजाबाद वाले हिन्दी-साहित्य सम्मेलन म साहित्यकारो पर राजनीतिज्ञो का हावी होना उन्हें बहुत अखरा था। हि दी साहित्य और उसके साहित्यकारों का अपमान वे कहीं सह नही सकते थे।

कुछ लोग कहने लगे हैं कि '३६ से '४० ई०के इस समय मे निरालाजी अपना मानसिक सतुलन खो बैठे थे। पर यह धारणा गलत है। वास्तव मे इस विक्षोभ और खिन्नता की मन स्थिति मे ही उन्होंने 'तुलसीदास' और 'राम की शक्ति पूजा' नामक सशक्त और उदात्त काव्य रचनाएँ की। वास्तव मे उनकी दिमागी विकृति के लक्षण सन् ४० के पश्चात् ही प्रकट हुए। वे और भी अन्तर्मुख हो गए थे। बातचीत मे भी कभी-कभी अव्यवस्था दिखाई देने लगी थी। मन ही मन बोलना और अचानक ठहाका मारकर हस पडना अपने को रवीन्द्रनाथ के परिवार का बताना, चर्चिल, रूजवेल्ट आदि विश्वनेताओं से बातचात की बात कहना आदि ऐसे ही लक्षण थे।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से लगता है कि यह सब उनकी अतृप्त प्रभुत्व कामना थी जिसने उनकी ऐसी अस्त व्यस्त मानसिक दशा बना डाली। अपनी प्रतिभा और महत्वाकाक्षा के अनुरूप उन्ह समाज और जीवन से नही मिला। इसी से वे मानसिक ग्रंथियों का शिकार हो गए। पर आश्चर्य की बात यही है कि मानसिक विक्षेप के

दौरान भी बीस वर्षों तक निराला बराबर साहित्यरचना करते रहे। वे साहित्य रचना के समय मानसिक दृष्टि से पूर्ण स्वस्थ रहते थे। यह हिन्दी साहित्य के लिए अपूर्व सौभाग्य की बात थी। सन् ४० के बाद के इस अर्से मे उन्होंने हिन्दी कविता के क्षेत्र मे कई नये-नये प्रयोग भी किये। उर्दू शैली की गजलें, जीवन के सामान्य चित्रों का व्यग्य शैली मे उद्घाटन आदि ऐसे ही प्रयोग हैं। इसमे सदेह नही कि वे फिराक गोरखपुरी और जोश मलीहाबादी जैसे विख्यात उर्दू-कवियो के निकट सम्पर्क मे भी इस बीच आये थे और कुछ लोग उनकी उर्दू शैली की कविताओ का उनके प्रभाव का ही परिणाम मानते हैं, पर निराला-जैसे स्वच्छन्द और उन्मुक्त कवि के लिए मनमाना प्रयोग करना सहज बात ही कही जा सकती है। उनकी उर्दू शैली की गजलो और कविताओ का विषय फिराक और जोश की शायरी से कही कोई मेल नहीं खाता।

मानसिक विकृति के दिनों में जब जहाँ निराला जी के सम्मान का कोई आयोजन होता था या उनकी प्रशसा मे कोई आलोचनात्मक लेख लिखता था, तो वे कितना प्रसन्न होते थे! जनवरी १९४७ मे जब उनकी स्वर्ण जयन्ती मनाई गई तो वे बहुत खुश हुए थे। लगभग दो वर्ष बाद तक उनका स्वास्थ्य बहुत कुछ ठीक रहा था। समाज, राष्ट्र और हिन्दी-जगत् ने अपने हीरे की कद्र नही की। यदि प्रारभ मे ही उनका समुचित इलाज कराया जाता, यदि हमारी राष्ट्रीय सरकार १९४७ ई० के बाद उनका विशेष ख्याल रखती, उनके रहन-सहन एव उपचार का यथोचित प्रबध हो जाता, यदि हिन्दी वाले अपने कवि शिरोमणि को उचित आदर देते तो निराला इतने वर्ष रोगग्रस्त रहकर इतनी जल्दी हिन्दी जगत् को अनाथ बनाकर चले न जाते। पर हमारा समाज तो जिन्दा को मारकर उसकी प्रेत पूजा करने का आदी हो चुका है। प्रेमचन्द के साथ जो हुआ था, वही निराला जी का हाल हुआ।

अत मे निराला जी प्रयाग मे प्रसिद्ध चित्रकार श्री कमला शकर सिंह के दारागज स्थित घर मे रहने लगे और अत समय तक वहीं रहे। अपने जीवन के इन अतिम दस वर्षों में वे प्राय मौन रहते थे और विनय, प्रार्थना, आत्मनिवेदन या प्रकृति-सम्बन्धी गीत ही अधिकतर रचते थे। सासारिकता से परे रहते हुए निराला आत्मलीन और स्वस्थ रहते किन्तु जैसे ही पारिवारिक या सासारिक प्रसग उनके सम्मुख उपस्थित होता, उनका सतुलन बिगड जाता था। अतत १५ अक्तूबर सन् १९६१ को पूर्वाह्न नौ बजे यह ज्योति बुझ गई।

निराला सच्चे दीनबन्धु थे। दुखी मानवता के लिए उनके हृदय मे अपार स्नेह और सहानुभूति भरी थी। वे दीन-दुखियों की सहायता करने मे विशेष आनन्द का अनुभव करते थे। उनका पर्याप्त समय दीनो की दुनिया —फुटपाथ के भिखारियो के निरीक्षण मे बीतता था। अपनी कमाई के पैसो से उन्होने कभी भोगविलास की सामग्री नही जुटाई। न उनके पास कोई तिजोरी थी, न बैंक मे जमा हिसाब। कपडे रखने का भी शायद ही कभी कोई ट्रंक या बक्सा खरीदा हो। न बढिया पलग की

कभी जरूरत समझी, न बढ़िया से धा मेज कुर्सी चाही। प्रदर्शन और ऐयाशी से उन्हें नफरत थी। वह मस्तमौला फक्कड़ फकीर की तरह जीवन बिताते रहे। नये-नये जूते, कपड़े और लिहाफ बनवाने का उन्हें शौक था, पर उससे भी बढ़कर उन्हें गरीबों में बाँट देने की उदार प्रवृत्ति थी। एक बार एक प्रकाशक से एक सौ चार रुपये प्राप्त हुए, पर तभी सारे के सारे एक बुढ़िया भिखारिनी को दे डाले और कहा—'निराला की माँ होकर भिक्षा माँगती है ? ले अब कभी भिक्षा न माँगना।"

रूसी विद्वान् वारान्निकफ ने कहा था—'उनका (निराला का) उदात्त व्यक्तित्व जिस स्पष्टता के साथ उनकी रचनाओं में उभर कर साधारण जीवन के साथ मिलकर एकाग्र हो जाता है और फिर साधारण से उठकर जिस अनूठी विशिष्टता तक पहुँच जाता है, यह चमत्कार केवल मात्र साहित्यकारों से नहीं होता वे महा-मानव हैं।"

निराला के व्यक्तित्व में करुणा और पौरुष दोनों तत्त्व पाये जाते हैं। उनके व्यक्तित्व में विरोधों का अद्भुत सामंजस्य है दार्शनिक और रसिक, विद्रोही और सुधारक, प्रगतिवादी और परम्परावादी, महत्त्व और विनम्र, खान-पान में शैव शाक्त, पर विचार से वैष्णव, कुसुम-कोमल और वज्र-कठोर ! व्यक्तित्व के इन विरोधों के सामंजस्य का आधार क्या है ?

इस सामंजस्य का आधार है कवि के मन और मस्तिष्क पर अमिट रूप से पड़ा स्वामी विवेकानन्द, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, महात्मा गाँधी आदि नवयुग के मनीषियों का प्रभाव। विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ आदि इन विचारकों से उन्होंने जिस व्यावहारिक अद्वैत दर्शन की शिक्षा पाई, वही सब विरोधों के सामञ्जस्य का आधार है।

वे परले दर्जे के स्वाभिमानी और सुहृदार थे क्योंकि उनका व्यावहारिक अद्वैत दर्शन आत्मा की बुलंदी का संदेश देता है, आत्महीनता का नहीं। वे जीवन में अभाव और अर्थ-संकट का अनुभव करते रहे, पर कभी कहीं स्वाभिमान नहीं बेचा। एक बार रामगढ़ के स्वर्गीय राजा चक्रधरसिंह ने सोचा था कि हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कवि, सर्वश्रेष्ठ कथाकार और सर्वश्रेष्ठ आलोचक को अपने राज्यकोष से आर्थिक सहायता प्रदान कर अपने यहाँ रखा जाय। फलतः निरालाजी (कवि), मुंशी प्रेमचन्द (कथाकार) और आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी (आचार्य-आलोचक) के पास निमन्त्रण भेजे गये। प्रेमचन्द जी ने सीधा जवाब दे दिया और निराला जी ने निमन्त्रण पत्र को फाड़कर अपनी प्रतिक्रिया प्रकट की। उनका उन्मुक्त व्यक्तित्व भला कहीं किसी राजा या धनपति का बन्धन स्वीकार कर सकता था ! उन्होंने आत्म सम्मान को जरा भी नहीं झुकने नहीं दिया।

श्री अमृत लाल नागर ने 'सहयोगी' कानपुर के ३० अक्तूबर, १९६१ के अंक में लिखा था —'कलकत्ते में अपना पेट पालने के लिए निराला ने दूसरों के नाम से किताबें लिखीं। किसी दुकानदार के घी की महिमा में अपनी काव्य प्रतिभा को

'कमशियल' बनाने के दिन भी प्रारंभ में उन्हें देखने पड़े थे।" यदि यह बात सत्य है तो भी निराला के स्वाभिमान की इसमें कोई हानि नहीं। आर्थिक विपन्नता में अपवाद-स्वरूप निराला को ऐसा भी करना पड़ा हो तो यह निराला के लिए नहीं, हिन्दी जगत् के लिए ही कलंक की बात है।

उनका आत्माभिमान बाद के दमित अहम् का रूप भी ले बैठा था। वे परले दर्जे के अहंकारी बन गये थे। अपनी असंतुलित दशा में वे अत्यन्त उग्र और कटु हो जाते थे। उनके स्वभाव की सबसे बड़ी विचित्रता यह हो गई थी कि अपनी बात को सर्वोपरि रखते थे और सबसे उसकी पुष्टि चाहते थे। अपनी बात काटा जाना उन्हें गवारा न था। पुष्टि पाकर वे स्वयं का सम्मानित अनुभव करते थे।

निराला जी सच्चे प्रकृति प्रेमी थे। फूलों को देखकर वे खिल उठते थे। फूलों का हार पहनना उन्हें बड़ा पसंद था। पुष्प गंध रंग में वह अलौकिक आनन्द अनुभव करते थे। भिन्न भिन्न प्रकार के फूलों और पौधों की उन्हें बड़ी पहचान थी। उनका प्रकृति चित्रण इसी सहज प्रकृति अनुराग पर आधृत है।

जहाँ उन्हें अपने कवि पर गर्व था, वहाँ अन्य कवियों की अच्छी रचनाओं का भी वे उदारतापूर्वक स्वागत करते और दिल खोल कर प्रशंसा करते थे। अनेक प्राचीन-नवीन कवियों की अनेक सरस कविताएँ उन्हें कंठस्थ थीं। वे पक्षपात और दलबंदी से दूर रहे। स्पष्टवादिता और निर्भीकता उनके व्यक्तित्व के महत्वपूर्ण गुण थे।

कवि सम्मेलनों में अपनी कविताएँ वे जिस ओजस्विता और गतिपूर्ण लय के साथ सुनाते थे, वह उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व और कवित्व का अद्भुत परिचय देती थी। संगीत और वाद्यकला के भी वे अच्छे ज्ञाता थे।

: २ :

युगीन परिस्थितियाँ

निराला का साहित्य उनके व्यक्तित्व की अनुगूंज है और उनका व्यक्तित्व उनकी निजी तथा युगीन परिस्थितियों से ही निर्मित हुआ। परिस्थितियों ने निराला को बनाया था और उन्हीं परिस्थितियों के संदर्भ में निराला ने साहित्य का निर्माण किया।

परुषता निराला की कविता का मुख्य गुण है। उनके काव्य को समीक्षकों ने 'मर्दानी कविता' की उचित ही संज्ञा दी है। निराला की वाणी इसीलिए ओजस्वी है क्योंकि उनका निजी व्यक्तित्व भी ओजपूर्ण था। उनके व्यक्तित्व को यह मर्दानापन परिस्थितियों ने ही प्रदान किया। बचपन से ही पहलवानी का शौक, घर में बजरंग बली की पूजा-का भाव, पिता का रौबदार सैनिक व्यक्तित्व आदि निजी परिस्थितियों के साथ-साथ निराला के अक्खड़ एवं तेजस्वी बैसवाड़ा प्रदेश का योगदान तथा युगीन संघर्ष की परिस्थितियों के सम्मिलित योग ने 'जागो फिर एक बार' का उद्घोष करने वाले परुष कवि व्यक्तित्व का निर्माण किया। बंगभूमि और बैसवाड़ा—दो प्रदेश उनके जन्म, लालन-पालन और रहन-सहन से सम्बद्ध हैं। बंगाल ने उनके व्यक्तित्व को भावुकता और बौद्धिकता प्रदान की तो बैसवाड़े ने ओज और फक्कड़मस्ती भरी।

निराला का युग भारतीय स्वतंत्रता के संघर्ष का युग था। राष्ट्रकवि निराला के निर्माण में निश्चय ही उस समय की परिस्थितियों ने योग दिया। देश परतंत्रता की बेड़ियों में जकड़ा हुआ था, स्वार्थी और लालची लोग अंग्रेजों से उपाधियां पाकर अंग्रेजी राज्य को सींच रहे थे और अपने देशवासियों का गला घोंट रहे थे। ऐसे जयचन्दों या जयसिंहों को कवि ने अपनी या शिवाजी की उद्बोधक चिट्ठी लिख कर जगाने का स्तुत्य प्रयास किया।

निराला ने भारत की नंगी-भूखी बिलखती दरिद्रता का सच्चा अनुभव पा लिया था। अपने आरम्भिक जीवन में उन्होंने पिसती हुई शोषित दलित प्रजा की करुण दशा महिषादल राज्य में देख ली थी, बाद को बैसवाड़े में, उनके अपने गाँव में जमींदारों और ताल्लुकेदारों के अत्याचार और शोषण ने उन्हें झकझोर डाला था। कलकत्ता-जैसे महानगरों में उन्होंने फुटपाथ पर सोते बेघर-निर्वसन भिक्षुकों के कंकाल

देखे थे, झूठी पत्तलों के लिए लालायित भूखों की टोलियाँ तथा सड़कों के लिए पत्थर तोड़ती श्रम-विगलित मजदूर बालाओं और आहत-अभिमान मिल-मजदूरों की विवशता का अनुभव किया था। विषम अर्थ-व्यवस्था का अनर्थ उन्होंने पहचान लिया था। एक ओर बड़े-बड़े ऐश्वर्यपूर्ण भवनों का विलास था, दूसरी ओर जेठ की दोपहरी में तपते, वर्षा में गलते, सर्दी में ठिठुरते बेघर बेकस निर्धन तड़पता जीवन जी रहे थे। निराला जी ने बंगाल का अकाल देखा था, तड़पती और कराहती मानवता का हाहाकार सुना था।

देश की ९० प्रतिशत जनता गाँवों में रहती थी और हमारा ग्राम-समाज अत्यन्त शोचनीय दशा को प्राप्त हो चुका था। ग्राम जीवन का आर्थिक और सांस्कृतिक स्तर बहुत निम्न हो गया था। गाँवों में कुटीर-उद्योगों के अभाव से जमीन पर अत्यधिक भार बढ़ता जा रहा था। भूमि छोटे-छोटे टुकड़ों में बटने लगी थी। सम्मिलित परिवार प्रथा छिन्न भिन्न हो रही थी। किसान बेचारा अनावृष्टि आदि प्राकृतिक प्रकोपों का भी शिकार रहता था। उपज कुछ होती ही न थी, उधर लगान-वसूली के नियम कड़े थे। जमींदार के कारिन्दे, पटवारी, महाजन, पुलिस के सिपाही, डिप्टी साहब और अन्य कर्मचारी बेगार, मुफ्तखोरी, लूट-खसूट, ब्याज आदि से अत्याचार ढाकर किसानों को तंग करते थे। गाँवों में परम्परागत सामाजिक व्यवस्थाएँ—वर्ण-व्यवस्था, कठोर सामाजिक नियम, धार्मिक अंध-विश्वास, रूढ़ जातिगत प्रथाएँ, दहेज प्रथा आदि थे। गाँवों पर अशिक्षा और गरीबी का अंधेरा पर्दा छाया हुआ था। कभी-कभी महामारी के प्रकोप से ग्राम के ग्राम उजड़ जाते थे। ऋणभार के कारण बेचारे किसान की फसल प्रायः खलिहानों में ही उठ जाती थी। सामाजिक और राजनैतिक चेतना का गाँवों में अभाव ही था। पुरानी पीढ़ी का किसान तो भाग्यवादी और अंधविश्वासी ही था, पर नई पीढ़ी में कुछ संघर्ष की आकांक्षाएं उभरने लगी थीं।

देशभर में अंग्रेजीशासन का दमन-चक्र जारी था। भारतीय जनता परतंत्रता की चक्की में पिस रही थी। भारतीय जनता पर दोहरा आघात हो रहा था। एक ओर तो देशवासी अपनी ही मूढ़ता, चारित्रिक दुर्बलता, अशिक्षा, दूषित समाज-व्यवस्था, सामाजिक रूढ़ियों और बुराइयों का शिकार बने हुए थे, दूसरी ओर ब्रिटिश राज्य तथा अन्य शोषक शक्तियाँ अजगरमच्छ की तरह निगल रही थीं। हमारे समाज-सुधारकों तथा राजनैतिक नेताओं को भी इसी से दो मोर्चों पर संघर्ष करना पड़ रहा था: एक था सामाजिक बुराइयों के विरुद्ध और दूसरा विदेशी शासन के विरुद्ध। राजा राममोहनराय, केशवचन्द्र सेन, स्वामी दयानन्द, महाराष्ट्र के जस्टिस रानाडे, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, ऐनीबेसेंट आदि ने 'ब्रह्म समाज,' 'आर्य समाज', रामकृष्ण मिशन, थियोसोफिकल सोसाइटी आदि संस्थाओं की स्थापना करके समाज-सुधार के आन्दोलन समूचे भारत में चला दिये थे। राजनीति के क्षेत्र में भी सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी, तिलक, गोखले, गांधी, लाजपतराय आदि के सत्प्रयत्नों से ब्रिटिश राज्य के विरुद्ध व्यवस्थित मोर्चा तैयार हो गया था। एक ओर गांधी जी के सत्याग्रह, असहयोग

आन्दोलन, स्वदेशी आन्दोलन आदि की धूम थी, दूसरी ओर भगतसिंह और उनके साथियों की क्रांतिकारी गूंज थी। कांग्रेस में भी नरमदल और गरमदल दोनों कार्यरत थे। इधर मार्क्सवाद का प्रभाव भी जमने लगा था। सशस्त्र क्रांति और वर्गसंघर्ष की आवाज बुलंद होने लगी थी।

साम्राज्यवाद की छत्रछाया में पूँजीवाद विकसित हुआ। पुराने सामंतों और जमींदारों का ह्रास होने लगा था। वे अन्दर से खोखले होते जा रहे थे, पर बाहर से अपनी वही शान रखना चाहते थे। पूँजीवाद के विकास और उद्योगपतियों के नगरों में एकत्रित होने तथा ब्रिटिश नौकरशाही ने मध्यवर्ग उत्पन्न किया। इसमें साधारण व्यवसायी, दूकानदार, वेतनभोगी कर्मचारी तथा अन्य छोटे छोटे उत्पादक आदि हैं। नगरों में इस वर्ग का जीवन भौतिक बौद्धिक स्वार्थी बन गया था। नगरों में मध्यवर्ग के अतिरिक्त मिल मालिक या पूँजीपति और मजदूर ये दो विषम वर्ग और उत्पन्न हो गए। वर्ग संघर्ष अपना खेल खेलने लगा था। टूटा हुआ जमींदार या तो सरकारी पिट्ठू बन गया था या भेस बदलकर रंगा स्यार हो गया था। जमींदार और पूँजीपति मिलमालिक भी अवसरवादी बने ऊपर ऊपर से समाजवाद का दम भरने लगें थे। राजनीतिक नेता भी उनके पैसों पर बिक जाते थे। पैसे के बल पर ये ढोंगी लोग झूठे राष्ट्रनेता बने ढोंगी सम्पादकों, लेखकों आदि को खरीद लेने का हौसला रखते थे।

पाश्चात्य शिक्षा और सभ्यता के रंग में रंगे भारतीय सरकारी कर्मचारी, अमीर नागरिक तथा अन्य भारतवासी देश के अतीत गौरव को भुला बैठे थे तथा देश-अभिमान, स्वतन्त्रता आदि की राष्ट्रीय भावनाओं से शून्य होते जा रहे थे। सामान्य जनता आत्महीनता का शिकार हो गई थी। स्वामी विवेकानन्द जैसे धर्मगुरु भारतीयों को अपने अतीत पर विश्वास करने और हिन्दुत्व की शक्ति का परिचय प्राप्त करने का संदेश दे रहे थे। आर्यसमाज, हिन्दू महासभा, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ तथा कांग्रेस आदि धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक संस्थाएं अतीत गौरव के प्रकाश में पुनर्जागरण की प्रेरणा प्रदान कर रही थीं। सांस्कृतिक पुनर्जागरण, नव्य अध्यात्मवाद और व्यावहारिक अद्वैत दर्शन की क्रांति न केवल भारत में फैली, अपितु रामकृष्ण-मिशन एवं स्वामी विवेकानन्द के सद्प्रयत्नों से भारत के अध्यात्म की विजय का डंका अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भी बजा।

धर्म के क्षेत्र में भी नई जागृति आई। परम्परागत ब्राह्मण धर्म का ढकोसला बुद्धिवाद और मानवतावादी मूल्यों के आघातों से निरावरण होने लगा। आर्यसमाज ने भी अंधविश्वासों का धर्म के क्षेत्र से मूलोच्छेदन करने में बहुत योग दिया। धर्म के साम्प्रदायिक रूप पर करारी चोटें पड़ीं। धर्म की नई व्याख्या और उदार परि-भाषा हुई। निवृत्ति के स्थान पर प्रवृत्ति, साम्प्रदायिक कट्टरता की जगह उदारता और सहिष्णुता, स्वार्थ की जगह परमार्थ, व्यक्तिगत साधना के स्थान पर विश्वकल्याण, कायरता की जगह वीरता, अकर्मण्यता के स्थान पर कर्मशीलता, आत्महीनता की

जगह आत्मविश्वास, दासता के स्थान पर स्वतन्त्रता की आकांक्षा सच्चे धर्म के तत्त्व बने। भारत के चिरनिवृत्तिमूलक अध्यात्म का प्रवृत्तिपरक नवोत्थान हुआ। निराला पर स्वामी विवेकानन्द की विचारधारा का विशेष प्रभाव पड़ा। पौरुष और शक्ति का मूलमंत्र उन्होंने स्वामीजी से ही प्राप्त किया। स्वामीजी के एक भाषण में कहा गया है हमने बहुत बहुत आंसू बहाये हैं। अब कोमल भाव धारण करने का समय नहीं है। कोमलता की साधना करते करते हम लोग जीते जी मुर्दा हो रहे हैं। हमारे देश के लिए इस समय आवश्यकता है—लोहे की मांसपेशियों और फौलाद की नाड़ी तथा धमनी की क्योंकि इन्हीं के भीतर वह मन निवास करता है जो दधीचि एवं वज्रों से निर्मित होता है—शक्ति, पौरुष, क्षात्र वीर्य और ब्रह्म-तेज इनके समन्वय से भारत की नई मानवता का निर्माण होना चाहिए। हमारे देश को अब वीरता की आवश्यकता है।" कहने की आवश्यकता नहीं कि निराला के काव्य में यही ओजपूर्ण स्वर है।

इस प्रकार अपने युग की समस्त सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों और गतिविधियों का निराला ने अपनी खुली आँखों अवलोकन किया था। उन्होंने अपने युग की इन परिस्थितियों का सही अध्ययन, मनन और चिंतन करके अपनी एक प्रगतिशील विचारधारा बनाई थी। एक सच्चे युग चेता साहित्यकार के नाते ही निराला ने अपने युग का आलोडन विलोडन करके उच्च सांस्कृतिक निर्माण के तत्त्व निकाले।

: ३ :

साहित्यिक पृष्ठभूमि

जब कोई विशिष्ट-काव्य-धारा साहित्य मे अपना स्थान बनाती है तो उसके पीछे अनेक प्रेरक शक्तियां होती हैं। जाने-अनजाने, कवियों पर विभिन्न परिस्थितियों का प्रभाव पडता है। निराला काव्य या छायावाद की पृष्ठभूमि भी बहुमुखी है। साहित्यिक परिस्थितियो का भी इस पर विशेष प्रभाव पडा है।

यद्यपि आधुनिक काल मे नवीनता और राष्ट्रीय सस्कृति का आह्वान भारतेन्दु युग से ही शुरू हो गया था, पर कविता के क्षेत्र मे नवीनता का जैसा प्रभाव बगला पर पडा वैसा भारतेन्दु युग में हिन्दी कविता पर नहीं।

द्विवेदी युग मे ही हिन्दी कविता ने नया मोड लिया। खडी बोली ने कविता मे स्थान अभी बनाया ही था। इस काल मे भाषा मे व्यवस्था और एकरूपता तो आई, और उसकी काव्योपयोगिता सिद्ध करने मे भी हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्त, रूप-नारायण पाडेय जैसे कवि प्रयत्नशील थे परन्तु प्रारम्भ मे वह गद्यवत ही बनी थी। उसमे शुष्कता, इतिवृत्तात्मकता और कल्पना के फीके रगो का दाप था। पद्य भाषा मे जो कल्पना की रगीनी, प्रवाह, रसात्मकता और ध्वन्यात्मकता होनी चाहिए, उसका इस शती के प्रथम दशक मे अभाव रहा। कविता का यह अभाव और भी खलने लगा जब हमारे युवक कवियों ने बगला की भावात्मक शैली से परिचय प्राप्त किया। अत हिन्दी काव्य शैली नवीन अभिव्यक्ति के लिए उत्सुक हो उठी।

द्विवेदी जी ने रीतिकाल की अतिश्रृगारिक वृत्ति के प्रति रोष प्रकट करके अपने समय के कवियो को सामाजिक सुधार की ओर लगाया। रीतिकाल का अश्लील और स्थूल श्रृगार वर्णन तो इस प्रकार से रुक गया परन्तु उसके स्थान पर उससे भी भारी-भरकम स्थूल काव्य की रचना होने लगी। इस काल की कविता में न तो भावो की तीव्रता और सूक्ष्मता पाई जाती है—जो कविता का सर्वस्व होती है—और न अभिव्यक्ति की। कविता अधिक से अधिक बाह्योन्मुखी होने लगी। यह काव्य की आत्मा पर कुठाराघात ही था। अत नवीन कवियों ने इसके स्थान पर नए रग और नई तूलिका से अपनी कविता को सजाना प्रारम्भ किया। श्रृगार का बिल्कुल निषेध भी उन्हें अप्राकृतिक लगा। अत खडी बोली मे कल्पना की उडान, पद-लालित्य, भाव की वेगवती व्यजना, वेदना की विवृत्ति, शब्द प्रयोग की विचित्रता आदि अनेक बातें देखने की आकाक्षा बढती गई। द्विवेदीकालीन नैतिकता इतिवृत्तात्मकता आदि

कठोर बन्धनों की प्रतिक्रिया-स्वरूप छायावाद खूब फला-फूला। इसके मूल मे स्थूल की बजाय सूक्ष्म की वाछा थी, अभिधात्मक अर्थ-ध्वनि के स्थान पर कल्पना का आह्वान या और था उपदेशात्मकता के प्रतिकूल वैयक्तिक वेदना तथा सौन्दर्य के प्रति नवीन अपरिमित अनुराग।

बगला से अनुवाद भी इन्ही दिनो (१९१० के आस-पास) होने लगे थे। श्री पारस नाथ सिंह आदि के किए हुए बगला कविताओ के हिन्दी अनुवाद सरस्वती आदि पत्रिकाओं मे निकलने लगे थे। अ्रं, वर्ड्सवर्थ आदि अग्रेजी कवियो की रचनाओ के भी कुछ अनुवाद हुए, जैसे—श्री जीवनसिंह द्वारा अनूदित वर्ड्सवर्थ की कविता 'कोकिल' आदि। हमारे नवीन कवि निराला, पत, प्रसाद बगला भाषा से भी अच्छी तरह परिचित थे। अत बगला की भावात्मक सूक्ष्म रहस्यात्मक एव कलात्मक शैली का प्रभाव एकदम पड़ा। 'गीतांजलि' की धूम ने हमारे कवियों मे भी इसी प्रकार के नवीन सूक्ष्म काव्य के सृजन की प्रेरणा जगाई।

अग्रेजी कवियों का प्रभाव हमारे कवियो पर अमिट रूप से पड़ा। बाइरन, वर्ड्सवर्थ, शेले, कीट्स आदि पाश्चात्य रोमान्टिक कवियों को पढ़ने वाले नवयुवक-कवियों की भावना स्वच्छन्दता की ओर बढी। उनकी देखादेखी स्वच्छन्द भाव-प्रकाशन की प्रवृत्ति हिन्दी में जगी। पुरानी लकीर पीटने से हमारे कवियो को घोर नफरत हो गई।

द्विवेदी युग में ही विकसित होने वाली स्वच्छन्दतावादी काव्य-भावना भी छायावाद की पूर्व-पीठिका है। इस स्वच्छन्दतावादी-धारा को प्रारम्भ करने वालों मे श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी, मैथिलीशरण गुप्त, मुकुटधर पाडेय और बद्रीनाथ भट्ट का नाम लिया जा सकता है। इन कवियो ने कल्पना एव भावनाओ की कोमलता के साथ-साथ सर्वप्रथम अभिव्यजनागत मृदुता का भी परिचय दिया। आचार्य शुक्ल ने श्रीधर पाठक को सबसे पहला स्वच्छन्दतावादी कवि घोषित किया है। शुक्ल जी के शब्दों मे "उन्होंने प्रकृति के रूढिबद्ध रूपो तक ही न रहकर अपनी आँखो से भी उसके रूपों को देखा। उन्होंने खड़ी बोली पद्य के लिए सुन्दर लय और चढ़ाव-उतार के कई नए ढाँचे भी निकाले। ......'स्वर्गीय वीणा' मे उन्होंने उस परोक्ष दिव्य सगीत की ओर रहस्यपूर्ण सकेत किया जिसके ताल-सुर पर यह सारा विश्व नाच रहा है। इन सब बातो का विचार करने पर प० श्रीधर पाठक सच्चे स्वच्छन्दतावाद (Romanticism) के प्रवर्तक ठहरते हैं।"

(हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० ६०३—४)

रामनरेश त्रिपाठी के 'मिलन', 'पथिक' और 'स्वप्न' नामक खण्ड-काव्यों में उनकी सच्ची स्वच्छन्दता का परिचय मिलता है। प्रकृति के शीतल क्रोड मे स्वच्छन्द विचरने की कामना कैसी कमनीय है—

प्रति क्षण नूतन वेश बनाकर रंग बिरंग निराला।
रवि के सम्मुख थिरक रही है नभ मे वारिद-माला॥

नीचे नील समुद्र मनोहर, ऊपर नील गगन है।
घन पर बैठ बीच में बिचरूँ, यही चाहता मन है॥ (पथिक)

शुक्ल जी ने द्विवेदी काल की कविता से सन्तुष्ट न रहने वाले और खड़ी बोली काव्य को कल्पना का नया रूपरंग देने और उसे अधिक अन्तर्भावव्यंजक बनाने में प्रवृत्त होने वाले कवियों में मैथिलीशरण गुप्त, मुकुटधर पाण्डेय और बदरीनाथ भट्ट को भी बताया है। 'कुछ अंग्रेजी ढर्रा लिए हुए जिस प्रकार की फुटकल कविताएँ और प्रगीत मुक्तक (Lyrics) बंगला में निकल रहे थे उनके प्रभाव से कुछ विशृंखल वस्तु विन्यास अनूठे शीर्षकों के साथ चित्रमयी, कोमल और व्यंजक भाषा में इनकी नए ढंग की रचनाएँ सं० १९७०-७१ से ही निकलने लगी थीं, जिनमें से कुछ के भीतर रहस्यमय भावना भी थी। गुप्त जी की 'नक्षत्रनिपात', 'अनुरोध' (१९१४-१५), पुष्पांजलि (१९१७) आदि कविताओं में नवीन भावना दर्शनीय है। एक दो उदाहरण देखिए—

मेरे आँगन का एक फूल सौभाग्य-भाव से मिला हुआ,
श्वासोच्छ्वासन से हिला हुआ, संसार विटप में खिला हुआ,
झड़ पड़ा अचानक झूल भूल॥ (पुष्पांजलि)

मुकुटधर पाण्डेय की भी नई फुटकर कविताएँ नवीन सर्ववाद की भावना से ओत प्रोत मिलती हैं—

हुआ प्रकाश तमोमय मग में, मिला मुझे तू तत्क्षण जग में,
दंपति के मधुमय विलास में, शिशु के स्वप्नोत्पन्न हास में,
वन्य कुसुम के शुचि सुवास में, था तव क्रीड़ा स्थान॥

इसी प्रकार पं० बदरी नाथ भट्ट भी नयी कल्पनामयी शैली में नए भाव-व्यंजक और सुन्दर गीत १९१३-१४ के करीब रचते आ रहे थे। 'ये कवि जगत् और जीवन के विस्तृत क्षेत्र के बीच नई कविता का संचार चाहते थे। ये प्रकृति के साधारण, असाधारण सब रूपों पर प्रेम दृष्टि डालकर, उसके रहस्य भरे सच्चे संकेतों को परख कर, भाषा को अधिक चित्रमय, सजीव और मार्मिक रूप देकर कविता का एक अकृत्रिम, स्वच्छन्द मार्ग निकाल रहे थे। भक्ति क्षेत्र में उपास्य की एकदेशीय या धर्म-विशेष में प्रतिष्ठित भावना के स्थान पर सार्वभौम भावना की ओर बढ़ रहे थे जिसमें सुन्दर रहस्यात्मक संकेत भी रहते थे।"(हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ६५०)

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि छायावाद के पूर्व ही हिन्दी में एक स्वच्छन्दता-वादी काव्य प्रवृत्ति का विकास हो रहा था। परन्तु काव्य में छायावाद की प्रतिष्ठा करने का श्रेय इन कवियों को नहीं। बंगला के अध्येता प्रसाद, पन्त, निराला ही उसके प्रवर्तक हैं। श्रीधर पाठक की तरह प्रसाद जी की आरम्भिक कविताएँ भी स्वच्छन्दता-वादी प्रवृत्ति की द्योतक हैं और वस्तुतः १९०५ से ही वे इस ढंग के काव्य की रचना कर रहे थे। परन्तु छायावाद के अन्तर्गत नवीन शैली और नवीन भावों से ओतप्रोत उनकी कविताएँ 'झरना' में ही अच्छी तरह पाई जाती हैं। इस प्रकार हम देखते हैं

कि छायावाद स्वच्छन्दतावादी कविता का ही नया चरम विकास है।

श्री मुकुटधर पांडेय के १६२० ई० के लेखों से भी पता चलता है कि ये कवि काव्य की इस नवीन दृष्टि के प्रति जागरूक थे। एक लेख 'कवि-स्वातन्त्र्य' में पांडेय जी ने प्राचीन काव्य परिपाटी के स्थान पर नए भाव, भाषा, छन्द और अभिव्यक्ति-प्रणाली पर जोर दिया है। एक दूसरे निबन्ध "छायावाद क्या है ?" में उन्होंने छायावाद को मिस्टिसिज्म' का पर्यायवाची माना है। इस निबन्ध में वे कहते हैं—"छायावाद एक ऐसी मायामय सूक्ष्म वस्तु है कि शब्दों द्वारा उसका ठीक ठीक वर्णन करना असम्भव है - छायावाद के कवि वस्तुओं को असाधारण दृष्टि से देखते हैं। उनकी रचना की सपूर्ण विशेषताएँ उनकी इस 'दृष्टि' पर ही अवलम्बित रहती हैं।...... इसी के कारण वस्तु उसके प्रकृत रूप में नहीं, किन्तु एक अन्य रूप में दीख पड़ती है। उसके इस अन्य रूप का सम्बन्ध कवि के अन्तर्जगत से रहता है। यह अन्तरग दृष्टि ही छायावाद की विचित्र प्रकाशन-रीति का मूल है।" इससे स्पष्ट विदित होता है कि छायावाद के उस आरम्भ-काल में ही कुछ लोगों ने उसकी सूक्ष्मता, कल्पना-प्रियता और नूतन-भाव-प्रकाशन-शैली का परिचय प्राप्त कर लिया था, और स्वय पांडेय जी आदि कवि उसकी पृष्ठभूमि तैयार कर चुके थे।

मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया—छायावाद के मूल में असतोष की भावना है। वस्तुत जीवन के दृष्टिकोण बदल रहे थे। प्राचीन रूढ़ियों ने, व्यर्थ के नैतिक बधनों ने नवयुवकों की अन्तश्चेतना को कुठित कर रखा था। प्राचीन वैवाहिक प्रथा में घुन लग चुका था। प्राचीन विवाह-सम्बन्ध प्रेम की आन्तरिक उमग पर आधारित न था। पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव से नये कवि उन्मुक्त प्रेम के अभिलाषी बनने लगे थे। समाज की गली-सड़ी रूढ़ियों से उन्हें बहुत चिढ थी। अत. उनका मानसिक असतोष कविता में व्यजित होने लगा।

वैज्ञानिक युग की उपज पूँजीवादी पद्धति और उसके शोषण ने समाज को विनाश, पीड़ा एव व्यथा में डुबा दिया था। राजनीति में गाधीवाद आत्मपीडन का युग था। इस युग का प्रभाव छायावादी कवियों पर बराबर पाया जाता है। इसके अतिरिक्त प्रथम महायुद्ध के पश्चात् भारतीयों को आशा थी कि युद्ध में सहायता देने के फलस्वरूप जो आश्वासन ब्रिटिश सरकार ने दिया था, उसकी पूर्ति होगी। किन्तु सहूलियतों के स्थान पर उत्पीडन और दमन-चक्र की आधी ने जनता के एक वर्ग में निराशा की काली छाप लगा दी। इस प्रकार के नैराश्यपूर्ण वातावरण का भी हमारे कवि मानस पर प्रभाव पड़ना अनिवार्य था, यही कारण है कि व्यथा का यह स्वर आरम्भिक छायावादी कविता में खूब सुनाई दिया।

वैयक्तिक जीवन में भी सामाजिक जीवन की तरह विफलताओं का बराबर सामना करना पड़ता था। नवयुवक कवि जीविका चलाने में भी कठिनाइयों का अनुभव कर रहे थे। इच्छाएँ और आकाक्षाएँ कल्पना के सुनहले पख लगाकर आकाश में ऊँची उड़ानें भरती थीं, किन्तु वास्तविकता अपने कठोर आघातों से उन्हें

करती जा रही थी। उन्मुक्त प्रेम की लालसा भी लालसा ही बनी रही। समाज के नैतिक बन्धन उनकी भावना से मेल न खाते थे। अत बगला और अग्रेजी के व्यक्तिवादी गीति काव्य (Lyric) की अन्तर्मुखी (Introvert) प्रवृत्ति की ओर उनका आकर्षण बढता गया, और उन्होंने उसी सुर मे सुर मिलाना शुरू कर दिया।

इस प्रकार वैयक्तिक एव सामाजिक व्यथा से असतोष की उग्र भावना हमारे कवियो मे जाग्रत हुई। वे 'कोलाहल की अवनि' से भागकर प्रकृति की शीतल छाया मे अपने विदग्ध हृदय को सान्त्वना देने लगे। एक ओर समाज की रूढियो के प्रति असतोष प्रकट करने लगे, दूसरी ओर वस्तुवादी बाह्य जीवन से मुख मोडकर अपने ही अन्तर की झाँकी देखने लगे। इस प्रकार प्रगति और पलायन का अद्‌भुत मेल छायावादी कवियो मे हुआ।

आत्मप्रकाशन या आत्माभिव्यक्ति की भावना प्राचीन भारतीय कवियो के सस्कारो के ही विरुद्ध थी। प्राचीन या मध्ययुग के कवि सामाजिक सकोच के कारण न अपनी प्रणय-भावना को उत्तम पुरुष मे व्यक्त कर सकते थे, और न ही अपने व्यक्तित्व का किसी प्रकार प्रकाशन करने का उनका उद्देश्य ही था। व्यक्तित्व के निषेध की भावना के कारण उनकी कविता निर्वैयक्तिक ही रहती थी। परन्तु आधुनिक कवि ने उस सामतीय नैतिकता का बन्धन ढीला करना प्रारम्भ कर दिया, जिसके कारण प्राचीन कवि अपने निजी प्रणय-सम्बन्ध को सीधे ढग से व्यक्त करने मे असमर्थ था। यही कारण है कि पत ने 'उच्छ्‌वास', 'आँसू', 'ग्रथि' आदि रचनाओ मे, प्रसाद ने 'आँसू' मे अपना प्रणय सीधे ढग से व्यक्त किया। हजारो साल के इतिहास मे कवि ने समाज से यह छूट पहली बार ली। किन्तु फिर भी सामाजिक भय इतना अन्तरात्मा मे समा गया था कि कवियों को अपनी वैयक्तिक प्रणयानुभूतियाँ रहस्यमय आवरणों मे प्रस्तुत करनी पडी। यही कारण है कि छायावादी प्रणयाभिव्यक्ति स्पष्ट और सीधी होती हुई भी कही कही रहस्यमयी हो गई है। कही कवियो ने प्रकृति की ओट ली है, तो कही अपने प्रिय को रहस्यात्मकता के ऊर्ध्व आसन पर बिठलाना पडा है।

छायावादी कविता ने जो आत्माभिव्यक्ति की आकाक्षा प्रकट की, वह वस्तुत आत्म प्रसार की आकाक्षा थी। पुरानी दुनिया की सीमित चारदीवारी के भीतर उसका दम घुट रहा था। नये विज्ञान ने उसके सामने ससार का विराट् रूप रख दिया। एक ओर नए-नए देश परिचय की सोमा मे आए और दूसरी ओर प्रकृति की विराटता का बोध हुआ।

इस प्रकार निराला काव्य २०वी शती मे विकसित होने वाली नई साहित्यिक चेतना की देन है। उसके निर्माण म अग्रेजी की रोमेंटिक काव्यप्रवृत्ति, बगला की भावात्मक स्वच्छन्द प्रवृत्ति और हिन्दी की स्वच्छन्द काव्य धारा ने महत्त्वपूर्ण योग दिया।

अग्रेजी रोमेंटिक काव्य और निराला

आधुनिक हिन्दी कविता पर अग्रेजी काव्य का खूब प्रभाव पडा। खडी बोली

के प्रारम्भिक कवियों—श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी, मुकुटधर पाण्डेय आदि पर भी अंग्रेजी के कॉलिन्स, ग्रे, गोल्डस्मिथ आदि कवियो का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। द्विवेदी काल में इन अंग्रेजी कवियो की अनेक कविताओं का हिन्दी मे अनुवाद हुआ। अंग्रेजी काव्य का व्यापक प्रभाव हिन्दी से पूर्व और हिन्दी से अत्यधिक मात्रा मे बगला काव्य पर पडा था। द्विवेदी काल और तदनन्तर छायावाद-कालीन हिन्दी कविता पर अंग्रेजी प्रभावित बगला काव्य का भी प्रभूत प्रभाव पडा। खडी बोली के प्रारम्भिक कवियो पर अंग्रेजी के रोमैंटिक कवियो का प्रभाव कम था पर बाद मे छायावादी कवियो—प्रसाद, निराला, पत आदि ने अंग्रेजी के रोमैंटिक काव्य की अनेक प्रवृत्तियो को अपनाया। हमारे इन कवियो पर सन् १६१५ से एक ओर तो रवीन्द्रनाथ टैगोर के बगला-काव्य के माध्यम से रोमैंटिक प्रवृत्तियों का प्रभाव पडा, दूसरे, शैले, कीट्स, वर्ड्सवर्थ आदि अंग्रेजी रोमैंटिक कवियो से सीधी प्रेरणा भी हमारे छायावादी कवियो ने ग्रहण की। सन् १६१३ मे टैगोर की गीताजली की धूम मच गई थी, अत हमारे कवियों ने भी वैसी नई कविता रचना आरम्भ किया।

अंग्रेजी रोमैंटिक काव्य (सन् १७६८-१८३० ई०) की ये मुख्य प्रवृत्तिया हैं :

१ नया स्वच्छन्द भावबोध और नव वस्तु चित्रण जो निम्न मुख्य रूपों मे प्रकट हुआ

(क) स्वतन्त्रता और व्यक्तिगत व्यथा की अभिव्यक्ति।

(ख) प्रकृति का स्वच्छन्द अनुरागमय चित्रण, मानवीकरण एव दैवीकरण।

(ग) मानवतावाद एव परम्परागत रूढियो की प्रतिक्रिया मे विद्रोहात्मक आदर्शवाद।

(घ) परोक्ष सत्ता के प्रति जिज्ञासा एव रहस्य भावना।

(ङ) प्रेम का सूक्ष्म एव सौन्दर्याधृत प्रकाशन।

२ नव भाषा, नव छन्द एव नवीन कलात्मक अभिव्यक्ति परम्परागत काव्य-भाषा और शैली का परित्याग कर रोमैंटिक कवियो ने नई कल्पनाप्रवण भाषा और नव छन्दशैली अपनाई। परम्परागत 'हीरोइक कप्लेट' (Heroic Couplet) का विरोध हुआ, नवीन गीति शैली—सम्बोध गीत (Ode), चतुर्दशपदी (Sonnet), शोकगीत (Elegy) आदि अनेक रूपों मे अपनाई गई। भाषा को नये रोमानी शब्द, नये उपमान, नये प्रतीक और बिम्बात्मक लाक्षणिक प्रयोग प्रदान किये। भाषा को अत्यधिक सांकेतिक, व्यजक, कोमल-मधुर, सगीतात्मक और चित्रात्मक बनाया।

३ रोमैंटिक काव्य कल्पना-समृद्ध काव्य है। रोमैंटिक कवियों ने अपनी अद्भुत कल्पना शक्ति से न केवल कविता कामिनी को विषय वस्तु और भाव विचार के नव-नव रूप-रग प्रदान किये अपितु सलोनी कल्पना के ही बल से छन्द, प्रतीक, अलकार आदि के नव नव परिधान और अलकारो से भी अलकृत किया।

अंग्रेजी रोमैंटिक काव्य की ये सब प्रवृत्तियाँ हिन्दी की छायावादी कविता मे पाई जाती हैं। यह बात जरूर है कि दोनो काव्य अपने-अपने देश की विभिन्न

परिस्थितियों की देन हैं। निराला ने वर्डस्वर्थ, शैले, कीट्स टेनिसन आदि अंग्रेजी रोमेंटिक कवियों को भी पढ़ा था और बंगला भाषासाहित्य और संगीत का भी गंभीर अध्ययन किया था। कवि निराला के निर्माण में अंग्रेजी रोमैंटिक तथा बंगला साहित्य दोनों की प्रवृत्तियों ने महत्त्वपूर्ण योग दिया। अंग्रेजी रोमैंटिक काव्य की लगभग सभी प्रवृत्तियाँ निराला-काव्य में पाई जाती हैं। आगे हमने 'छायावाद और निराला' शीर्षक प्रकरण में रोमैंटिक काव्य की उपर्युक्त समस्त प्रवृत्तियों को छायावादी कवि निराला में प्रदर्शित किया है। क्या प्रकृति का नव चित्रण और मानवीकरण, क्या सूक्ष्म प्रेमाभिव्यक्ति, क्या भाषा शैली की नवीनता—सब रोमैंटिक प्रवृत्तियों में निराला सभी छायावादी कवियों में अग्रणी हैं। परम्परागत तुकांतता तथा छन्द-बंधन का जितना उग्र विरोध निराला ने किया उतना अन्य किसी कवि ने नहीं। निराला ने सम्बोध गीत, शोक गीत आदि नवीन गीतियों की रचना रोमैंटिक काव्य के अनुसरण पर ही की। शैले की 'ओड टू द वेस्ट विंड' के समान निराला ने 'वसन्त समीर', 'यमुना के प्रति', 'प्रपात के प्रति', 'बादल राग' आदि कई सम्बोध गीत लिखे। मुक्त-छन्द का प्रचलन किया।

निराला के सम्बंध में यह नहीं कहा जा सकता कि उन पर अमुक रोमैंटिक कवि का प्रभाव है। उन्होंने रोमैंटिक प्रभाव को सामूहिक रूप से ही अपनाया है। निराला की सूक्ष्म प्रेमभावना तथा प्रेम के उदात्तीकरण की प्रवृत्ति पर शैले की 'एलास्टर' कविता का प्रभाव भी लक्षित होता है। अपने विचारों और भावों में निराला पूर्णतः रोमैंटिक हैं। उन्होंने मानवतावाद का सच्चा आदर्श उपस्थित किया। परम्परागत रूढ़ियों की कड़ियाँ तोड़ने में वे सब से आगे थे। विद्रोहपूर्ण नवीन सामाजिक एवं सांस्कृतिक आदर्शों की उन्होंने भव्य प्रतिष्ठा की।

फ्रांस की क्रांति से स्वतंत्रता और मानवतावाद की जो लहर समूचे योरुप में व्याप्त हो गई थी, बीसवीं शती के इस छायावादी युग में शोषित और दलित भारत-वासियों को उससे बहुत सम्बल मिला। छायावादी कवि नव निर्माण की आकांक्षा और स्वतंत्रता का गान गाने लगे। बायरन ने समुद्र को क्रांति और स्वतंत्रता का प्रतीक बनाया, शैले ने पश्चिमी प्रभंजन को, तो निराला ने बादल को क्रांति, स्वतंत्रता, रूढ़ि के विध्वंस तथा नव-निर्माण का प्रतीक बनाया। शैले ने पश्चिमी प्रभंजन को स्वच्छन्द, उद्दाम, उच्छृंखल, भयंकर आत्मा आदि सम्बोधनों से सम्बोधित किया है, उसी प्रकार निराला ने बादल को—

ऐ निर्बन्ध—
अंधतम-अगम-अनर्गल बादल!
ऐ स्वच्छन्द!
मंद चंचल-समीर-रथ पर उच्छृंखल!
ऐ उद्दाम!
अपाररहित विराट्!

आदि समान सम्बोधनों से पुकारा है। छायावादी कवियों में निराला और पंत

पर अंग्रेजी गीति काव्य का प्रभाव सर्वाधिक पड़ा। आत्माभिव्यक्ति, कोमलकांत पदावली, भावमयता, नवीन भाषा-शैली और नया सौन्दर्य-बोध आदि गीतिकाव्य की समस्त विशेषताएं निराला-काव्य में पाई जाती हैं। निराला ने न केवल बगला और अंग्रेजी सगीत-पद्धति को अपनाया, न केवल मुक्त काव्य (मुक्त छन्द) का प्रयोग किया अपितु मानवीकरण, विशेषण-विपर्यय, ध्वन्यर्थव्यजना आदि पाश्चात्य अलकारों को भी अपनाया। यद्यपि भारतीय काव्य के लिए ये सर्वथा अपरिचित अलकार नहीं थे, क्योंकि हमारे यहाँ संस्कृत काव्य मे प्रकृति आदि के मानवीकरण, परिकर अलकार आदि के रूप मे विशेषण-विपर्यय और नादसौन्दर्यपूर्ण ध्वन्यर्थ व्यजना के खूब प्रयोग मिलते हैं, तथापि छायावादी कवियो ने पश्चिम के टेनिसन आदि के अनुकरण पर इनका बड़ा ही अनूठा प्रयोग किया है।

इस प्रकार उपर्युक्त सक्षिप्त विवेचन से स्पष्ट है कि निराला पर अंग्रेजी रोमैंटिक काव्य का पर्याप्त प्रभाव पड़ा। भाव पक्ष, विषय-वस्तु, विचारधारा तथा कला-पक्ष आदि सभी क्षेत्रों मे यह प्रभाव लक्षित होता है। यह सब होते हुए भी निराला का काव्य भारतीय दर्शन, सस्कृति एवं भारतीय भाषा-साहित्य-परम्परा का द्योतक होने से शतप्रतिशत भारतीय काव्य है, अंग्रेजी काव्य नही। उनकी रचनाएं कवि की मौलिक कृति हैं, अनुकृति नही।

द्वितीय विमर्श

कृतित्व : काव्य-चेतना का विकास

- काव्य-चेतना का विकास
  आरंभिक कृतित्व : परिमल, गीतिका
  निराला-काव्य की विविध प्रवृत्तियाँ
- अनामिका
- राम की शक्ति-पूजा
- तुलसीदास
- कुकुरमुत्ता
- अणिमा
- बेला
- नये पत्ते
- अर्चना, आराधना, गीत गुंज
- सांध्यकाकली
- निराला की इतर रचनाएं।

: १ :

निराला की काव्य-चेतना का विकास

१९१५ से १९६१ ई० तक निराला-काव्य की दीर्घ परम्परा है। छायावाद ही नहीं छायावादोत्तर काव्य की सभी प्रवृत्तियों का उन्होंने प्रवर्तन किया। उन्हें समूची शताब्दी का कवि कहना अधिक समीचीन है, क्योंकि निराला का काव्य आगे भी वर्षों तक व्यापक और गंभीर रूप से आगामी नये कलाकारों को प्रेरित और अनुप्राणित करता रहेगा। आज भी उन्हें अनेकानेक नयी प्रवृत्तियों के कवि अपना-अपना आदिगुरु मानते हैं। प्रगतिवादियों ने निराला का स्तवन किया, प्रयोगवादी कवि उन्हें अपना प्रेरक मानते हैं और वर्तमान नवतावादी कवि (नवलेखन के आचार्य) उन्हें अपना आचार्य कवि स्वीकारने में जरा नहीं झिझकते। निराला-काव्य विषय, भाव, शैली और भाषा के वैविध्य का कला-निकुंज है।

एक ओर शृंगार की उन्मुक्त किन्तु अशरीरी आत्मिक संयत धारा प्रवाहित हुई है, तो दूसरी ओर स्वच्छन्द प्रेम की प्रचण्ड शारीरिक हलचल और विद्रोही क्रीडा दृष्टिगोचर होती है; कहीं वैयक्तिक प्रेम का उन्नयन राष्ट्र और देश-प्रेम के रूप में हुआ है, कहीं परमात्म-प्रेम के रूप में, तो कहीं व्यापक मानव-प्रेम रूप में। कहीं करुण, शृंगार, भक्ति आदि कोमल भावों की स्वर-गंगा बहती है तो कहीं क्रांतिकारी और प्रखर वीर-रस की घनगर्जना है। कहीं प्रकृति और ऋतुओं की सुन्दर कोमल वाटिका को निराला ने सजाया है तो कहीं प्रकृति के रौद्र, भयावह और विस्मयकारक रूपों की अवतारणा की है। जहाँ एक ओर 'सरोज स्मृति' जैसी वैयक्तिक अतरंग करुणा है, वहाँ दूसरी ओर आधुनिक जीवन के सामाजिक वैषम्यों एवं विकृतियों की व्यंग्य के नश्तरों से उन्होंने शल्य-क्रिया की और सामाजिक विकृतियों के करुण-दृश्य-चित्र प्रस्तुत किये। एक ओर दार्शनिक भूमिका पर आधृत शांत रस की योजना है तो दूसरी ओर जीवन-संघर्षों से जूझने की अपूर्व ऊर्जा है।

अन्त में उनकी कविता आत्मनिवेदन और प्रार्थना-विनय के भक्तिपूर्ण भावों से आपूर्ण हो गई थी। पर निराला की इस काव्य-भूमिका को मध्ययुग के भक्त-कवियों की वैयक्तिक एकांत साधना समझ लेना भी भूल होगी। निराला के प्रार्थना काव्य में भी लोक-पीड़ा और सामाजिक दृष्टि भरपूर पाई जाती है। अधिकांश गीतों में उन्होंने

अपने प्रभु से जन-जीवन के मांगल्य की ही कामना की है, या उस परम महती शक्ति का आवाहन किया है, जो हमारी सामाजिक विषमताओ और विकारो का नाश कर दे। इस प्रकार यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो स्पष्ट प्रतीत होगा कि निराला का सास्कृतिक मूल्यो की आकाक्षा का दार्शनिक या बौद्धिक स्वर, जन-जीवन से घुला-मिला यथार्थवादी व्यग्यप्रधान आक्रोश और अतिम प्रार्थना-वदना का स्वर तीनों एक ही उद्देश्य-सूत्र से जुडे हुए हैं। निस्सदेह निराला के काव्य का मेरुदण्ड मानवतावाद है।

प्रारम्भिक कृतित्व : परिमल

निराला का इस समय प्राप्य प्रथम काव्य सग्रह 'परिमल' है, जिसमे सन् १६१६ से १६२६-३० तक रची कविताएँ सकलित हैं।

निराला प्रबुद्ध कवि के रूप मे प्रारम्भ से ही हिन्दी जगत् के सम्मुख आये। विचारपूर्वक लिखने के कारण निराला की आरम्भ से ही परिष्कृत रचनाएँ प्रकाश मे आईं। निराला की विविध प्रवृत्तियो मे कोई पूर्वापर क्रम मानना भ्राति है। वास्तव मे उनके काव्य मे जितनी भी प्रवृत्तियाँ अन्त तक लक्षित होती हैं, वे सब उनकी प्रारम्भिक रचनाओ मे ही प्रकट हो चुकी थीं। हाँ, इतना अवश्य है कि कवि की विशेष मन स्थिति एव बाह्य परिस्थितियों के कारण उनमे से कभी किसी रचना मे एक प्रवृत्ति की प्रधानता हो गई है, कभी दूसरी की, अन्य मे तीसरी की। प्राय समीक्षको द्वारा कहा गया है कि निराला के पूर्ववर्ती काव्य से परवर्ती काव्य बिल्कुल भिन्न प्रवृत्ति का है। यह बात विशेष रूप से निराला की व्यग्यप्रधान यथार्थवादी रचनाओ के काव्य-सग्रह 'बेला' और 'नय पत्ते' तथा लम्बी रचना 'कुकुरमुत्ता' को लेकर कही जाती है। पर हम देखते हैं कि इन रचनाओं की यथार्थवादी और प्रगतिशील प्रवृत्ति उनकी प्रारम्भिक 'परिमल' काल की 'विधवा', 'भिक्षुक', 'कण' आदि कविताओ मे भी पाई जाती हैं। 'बादल राग' कविता की इन पक्तियो से निराला की दीन दुखी, पीडित-शोषित जनता के प्रति शतशत करुणा और धनी-पूँजीपतियो के प्रति आक्रोश की जैसी तीव्र भावना व्यजित हो रही है, वह उनकी किस परवर्ती रचना से कम यथार्थवादी या भास्वर और आवेशपूर्ण है ?—

रुद्ध कोप, है क्षुब्ध तोप,
अगना-अक से लिपटे भी
आतक-अक पर काँप रहे हैं
धनी, वज्र-गर्जन से बादल !
त्रस्त नयन-मुख ढाँप रहे हैं।
जीर्ण-बाहु है शीर्ण शरीर,
तुझे बुलाता कृषक अधीर,
ऐ विप्लव के वीर !

चूस लिया है उसका सार,
हाड़ मात्र ही है आधार,
ऐ जीवन के पारावार! (बादल राग, 'परिमल')

मेरा अभिप्राय यह है कि निराला के प्रथम काव्य-संग्रह 'परिमल' में ही उनकी समस्त प्रवृत्तियों का उद्घाटन हो चुका था। 'परिमल' उनकी प्रतिनिधि रचना है। यह सन् १६३० में प्रकाशित हुआ था। यद्यपि इससे पूर्व सन् १६२२ में 'अनामिका' (प्रथम) नाम से निराला की सात कविताओं का एक संकलन प्रकाशित हो चुका था, पर आज वह अनुपलब्ध है और उसकी सभी कविताएँ 'परिमल' आदि अन्य संग्रहों में सम्मिलित कर ली गई हैं। 'परिमल' में कुल ७८ कविताएँ हैं।

'परिमल' की रचनाओं में कवि का प्रवृत्ति-वैविध्य स्पष्ट है। न केवल विषय-भाव की दृष्टि से अपितु शैली-बंध के विचार से भी 'परिमल' निराला की प्रतिनिधि रचना है। इसमें उनकी गीत, प्रगीत, दीर्घप्रगीत, आख्यानात्मक काव्य, स्वच्छन्द छन्द, सममात्रिक सान्त्यानुप्रास और विषममात्रिक सान्त्यानुप्रास आदि अनेक प्रकार की कविताएँ हैं। 'जुही की कली', 'शेफालिका', 'जागो फिर एक बार'- आदि स्वच्छन्द छन्द प्रगीत हैं। आरम्भ (सन् १६१६) से ही निराला जिस 'जुही की कली' को स्वच्छन्द छन्द में लेकर आये थे, तभी उनकी काव्य-प्रतिभा और स्वच्छन्द प्रवृत्ति का परिचय मिल गया था। 'जुही की कली' निराला की श्रेष्ठ रचनाओं में गिनी जाती है। 'परिमल' में दस गेय गीत बहुत सुन्दर हैं। 'परिमल' की इसी गीत शैली का विकास उनके 'गीतिका', 'अर्चना', 'आराधना', 'गीतगुंज' आदि परवर्ती गीत-संग्रहों में हुआ। 'बेला', 'नये पत्ते' आदि के उर्दू-शैली में रचित व्यंग्य-काव्य की व्यंग्य शैली के अतिरिक्त निराला काव्य की प्रायः समस्त शैलियों का परिचय उनके आरम्भिक संग्रह 'परिमल' की रचनाओं से मिल जाता है। 'पञ्चवटी प्रसंग' से उनकी आख्यानात्मक दीर्घ मुक्त-काव्य रचने की प्रवृत्ति का आभास मिलता है जिसका पूर्ण विकास राम की शक्ति पूजा' (अनामिका द्वितीय) और 'तुलसीदास' में हुआ। 'परिमल' की 'यमुना के प्रति', 'शिवाजी का पत्र' में उनकी दीर्घ प्रगीत-काव्य रचने की प्रवृत्ति का परिचय मिल जाता है। 'कण', 'जलद' आदि कविताओं में कण दलित-शोषित वर्ग का और 'जलद' विदेशी शिक्षा प्राप्त कर और डिग्रीधारी बनकर भी देश-सेवा भाव न भूलने वाले सच्चे भारतीयों का प्रतीक बनाया गया है। यही प्रतीक-प्रवृत्ति 'कुकुरमुत्ता' आदि परवर्ती रचनाओं में बढ़ती गई।

निराला जी की दार्शनिक एवं रहस्यवादी प्रवृत्ति के भी दर्शन हमें 'परिमल' में ही मिल जाते हैं। 'परिमल' की प्रसिद्ध 'तुम और मैं' कविता इसका पुष्ट प्रमाण है।

'परिमल' की कविताओं से ही निराला छायावाद के प्रवर्तक कवि बन गए थे। छायावाद की समस्त विशेषताएँ उनकी आरम्भिक रचनाओं में ही प्रकट हो गई थी। प्रकृति का सचेतन रूप में चित्रण, मानवीकरण, प्रकृति से तादात्म्य, संवेदनशीलता, प्रकृति से संदेश व प्रेरणा-प्राप्ति आदि प्रकृति-प्रयोग की सभी छायावादी विशेषताएँ

'परिमल' की 'सन्ध्या सुन्दरी', 'जुही की कली', 'शेफालिका', 'बादल राग' आदि कविताओं मे लक्षित होती हैं। 'यमुना के प्रति' कविता मे कवि की सूक्ष्म शृंगार चित्रण, प्रकृति का सचेतन रूप मे प्रयोग, अतीत का गौरव-गान तथा भावों एव कला की सूक्ष्मता आदि समस्त छायावादी विशेषताएँ दिखाई देती हैं।

निराला-काव्य की एक विशेषता है राष्ट्रीय भावना। देश प्रेम की जो उत्कट भावना निराला की अनेक रचनाओ मे पाई जाती है वह भी उनके काव्य की मूल एव आद्यन्त प्रवृत्ति है। 'परिमल' की 'जागो फिर एक बार', शिवाजी का पत्र' कविताओ मे राष्ट्रीय ओजपूर्ण भावों की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

यद्यपि निराला की दो परवर्ती प्रमुख प्रवृत्तियाँ—१ यथार्थवादी प्रगतिशील या प्रगतिवादी काव्य रचना और दूसरी भक्ति-भावना समग्रत उनकी परवर्ती रचनाओ मे प्रकट हुई, पर उनके बीज भी 'परिमल' काल की प्रारम्भिक रचनाओ मे ही देखे जा सकते हैं। शक्ति की जो पूजा-अर्चना उनकी 'राम की शक्ति पूजा' और 'अर्चना', 'आराधना' के कुछ गीतो मे आगे खूब खुलकर हुई, उसका आरम्भ 'परिमल की श्यामा के 'आवाहन' गीत मे ही हो चुका था। इसी प्रकार सरस्वती-वन्दना भी परिमल की 'क्या दूँ' कविता मे ही प्रकट हो चुकी थी। 'परलोक', 'हमे जाना है जग के पार', 'प्रार्थना' आदि गीतों मे निराला की अध्यात्म और भक्ति भावना के प्रारम्भिक रूप के दर्शन होते हैं। इसी प्रकार, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, यद्यपि निराला की यथार्थवादी प्रगतिशील प्रवृत्ति का पूर्ण विकास उनकी परवर्ती 'बेला', 'नये पत्ते' आदि सग्रहो की कविताओ मे हुआ, किन्तु उसके बीज भी परिमल' की 'भिक्षुक', 'विधवा' आदि कविताओ मे पाये जाते हैं।

इस प्रकार 'परिमल' को निराला की प्रतिनिधि रचना कहा जा सकता है।

गीतिका

परिमल' के बाद सन् १९३० से १९३६ तक निराला ने पाँच छ वर्ष गेय गीतों की रचना की जो 'गीतिका' नामक सग्रह मे १९३६ मे प्रकाशित हुए। यह निराला जी का प्रथम गीत-सग्रह है। 'गीतिका' के गीतो म भाव प्रवणता और सगीत-माधुर्य खूब है। 'वर दे वीणावादिनि वर दे', 'भारति जय विजय करे', 'यामिनी जागी', 'सोचती अपलक आप खडी', 'सूखी री यह डाल वसन वासन्ती लेगी', 'मौन रही हार', 'सखी वसत आया', 'छोड दो जीवन यो न मलो', 'देख दिव्य छवि लोचन हारे' आदि इस सग्रह के श्रेष्ठ गीत हैं। कुल गीतो की सख्या १०१ है। 'परिमल' की स्वच्छन्द रचनाओ से जहाँ निराला ने मुक्त छन्द की सफल प्रतिष्ठा की, वहाँ 'गीतिका' आदि रचनाओ के छन्दोबद्ध सगीतात्मक पदो द्वारा हिन्दी गीत शैली को अधिक प्रौढ और अधिक प्रशस्त किया। 'गीतिका' के पदो मे दार्शनिकता ('कौन तम के पार रे कह' आदि गीत) और मुख्यत प्रेम शृगार की सूक्ष्म एव रहस्यात्मक अभिव्यक्ति हुई है। छायावादी-रहस्यवादी प्रवृत्ति का चरम विकास 'गीतिका' के गीतो मे दिखाई देता है। 'अस्ताचल रवि जल छलछल छवि'—जैसे पदों मे रहस्यमय वाता-

वरए, 'हुआ प्रात प्रियतम तुम जाओगे चले'—जैसे पदों में प्रेम-रहस्य की अभिव्यक्ति, 'देकर अन्तिम कर रवि गए अपर पार'— जैसे सध्यावर्णन आदि के पद में प्रकृति के रहस्यमय सौन्दर्य और भावभंगिमा का चित्रण तथा 'सूखी री यह डाल वसन वासंती लेगी'—जैसे गीतों में प्रतीकात्मक शैली में जीवन-दर्शन का रहस्यमय उद्घाटन निराला को मूलतः छायावादी-रहस्यवादी कवि सिद्ध करते हैं.। कई गीतों में परोक्ष सत्ता के प्रति प्रार्थनापरक भावाभिव्यक्ति भी हुई है। 'भारति जय विजय करे' जैसा राष्ट्रगीत भी इस गीत-संग्रह की शोभा-वृद्धि कर रहा है।

कला की दृष्टि से भी 'गीतिका' के गीतों में कवि की कला-साधना का उत्कर्ष दिखाई देता है। 'परिमल' की स्वच्छन्द रचनाओं की अपेक्षा इन गीतों में कला-सज्जा और अलकरण अधिक है। पाश्चात्य .कला-शिल्प और संगीत का प्रभाव भी इन गीतों में लक्षित होता है।

कवीन्द्र रवीन्द्र की तरह निराला भी लौकिक सोन्दर्य, ससीम प्रकृति-मानव-प्रेम आदि को अलौकिक सस्पर्श और दार्शनिक अतीन्द्रिय परिणति प्रदान करते हैं। 'रहस्यवाद' प्रकरण में आगे हमने 'गीतिका' में निराला जी की रहस्यवादी प्रवृत्ति पर विस्तृत प्रकाश डाला है। 'गीतिका' की मुख्य प्रवृत्ति रहस्यवाद ही है। 'गीतिका' के गीत न केवल निराला के सर्वश्रेष्ठ गीत हैं, अपितु छायावाद-रहस्यवाद काल की श्रेष्ठ गीत-रचनाएँ माने जा सकते हैं। छायावादोत्तर काल के गीत-काव्य का मूल उत्स भी इनमें देखा जा सकता है।

: २ :

अनामिका

'गीतिका' के बाद जनवरी १९३८ मे निराला का 'अनामिका' (द्वितीय) काव्य संग्रह प्रकाशित हुआ। इसमें कुछ कविताएँ तो 'परिमल' काल की छूटी हुई ही हैं। कुछ अनूदित रचनाएँ हैं, और 'सरोज स्मृति', 'मित्र के प्रति', 'वनबेला' आदि कुछ दीर्घ प्रगीत रचनाएँ है। निराला की प्रसिद्ध 'आख्यानक रचना' 'राम की शक्ति पूजा' भी इसी काव्यसंग्रह की शोभा है। कुल ५६ रचनाए हैं।

'परिमल' की तरह 'अनामिका' निराला का दूसरा प्रतिनिधि काव्यसंग्रह है। 'परिमल' की तरह इसमे भी प्रवृत्तियो का वैविध्य पाया जाता है। इसमे छायावाद-काल की कवि की वे समस्त कविताए सकलित हैं जो 'परिमल' मे नही आ पाई थी। निराला का पूर्ण रूप अपने उदात्ततम रूप मे 'अनामिका' मे प्रकट हुआ है। एक तरह 'अनामिका' 'परिमल' संग्रह से भी अधिक कवि की प्रतिनिधि रचना है। परिमल' में निराला का व्यग्यकार कुछ सोया हुआ था जबकि 'अनामिका' की 'दान', 'वन बेला', 'मित्र के प्रति' जैसी रचनाए व्यग्य काव्य का श्रेष्ठ उदाहरण प्रस्तुत करती हैं।

'अनामिका' मे एक ओर स्वच्छन्द प्रेम और सौन्दर्य की व्यजक 'प्रेयसी'-जैसी रचना है, तो दूसरी ओर महाकाव्य के औदात्य से ओतप्रोत निराला का प्रसिद्ध ओजपूर्ण दीर्घ प्रगीत या खण्ड काव्य 'राम की शक्ति पूजा' है। 'राम की शक्ति-पूजा' का कुछ विस्तृत अध्ययन हमने अगले पृष्ठो मे किया है। निराला का प्रसिद्ध शोक-गीत (दीर्घ प्रगीत) 'सरोज स्मृति' भी इसी संग्रह को उत्कर्ष प्रदान करता है। निराला की वैयक्तिक करुणा इस कविता मे साकार हो गई है। साथ ही उनकी सामाजिक करुणा भी 'दान' के मृतप्राय ककाल शेष भिक्षुक के करुणचित्र तथा 'तोड़ती पत्थर' 'सेवा प्रारम्भ' जैसी कविताओ मे अपने उदात्ततम रूप में व्यजित हुई है। निराला के सामाजिक व्यग्यो की छटा भी सर्वप्रथम यहां ही दिखाई दी। 'दान' कविता में धार्मिक ढोंग और मनुष्यता के ह्रास पर जो व्यग्य किया गया है, 'तोड़ती पत्थर' में आर्थिक विषमता और निम्नवर्ग की विवशता का जो चित्रण हुआ है, 'वन बेला' में निराला जी ने स्वार्थी, अवसरवादी राजपुत्रो, धनिकपुत्रों, पूजीपतियों, सम्पादकों, टके पर बिक जाने वाले कवियों, थोथे साहित्य-संस्थानों आदि पर जो चुभते व्यग्य किये हैं,

वे कवि की विकसित सामाजिक चेतना के परिचायक हैं। भारत में प्रगतिवाद के जन्म से कई वर्ष पूर्व ही निराला जी जीवन की सच्ची प्रगति के गायक बन गये थे, यह तथ्य 'परिमल' की 'भिक्षुक', 'विधवा', 'कण', 'बादल राग' आदि तथा 'अनामिका' की 'उद्बोधन', 'दान'—जैसी कविताओं से स्पष्ट विदित होता है। 'उद्बोधन' कविता तो 'परिमल' के 'बादलराग' की ही पूरक है। इसमें भी घन को नव्य क्रांति का अग्रदूत बनाया गया है। बादल का राग गाने वाले कवि की एक दो और रचनाओं में बादल को विश्वमंगल हेतु पुकारा गया है।

'अनामिका' की कविताओं में जैसी भाव उदात्तता पाई जाती है, वह भी अन्य संग्रहों में अपेक्षाकृत कम ही है। 'दान', 'तोड़ती पत्थर' जैसी कविताओं के अतिरिक्त सेवा-प्रारम्भ'—जैसी उदात्त भावप्रवण रचनाएं 'अनामिका' को निराला का स्थायी महत्त्व का काव्यसंग्रह सिद्ध करती हैं।

सरस्वती के अमर पुत्र निराला ने 'अनामिका' की भी 'वीणावादिनी', 'प्रिया से' जैसी रचनाओं में सरस्वती और कविता की देवी का स्तवन वंदन किया है।

अतीत दर्शन और अतीत-गौरव गान की प्रवृत्ति भी 'अनामिका' की 'दिल्ली', 'खण्डहर के प्रति', 'राम की शक्ति-पूजा' जैसी सशक्त कविताओं में अवलोकनीय है। कवि ने वर्तमान दुर्बल स्थिति से खिन्नता और अतीत गौरव की भावना को इन रचनाओं में बड़ी कुशलता से प्रकट किया है।

बादल के प्रतीकात्मक क्रांतिकारी और मंगलकारी रूप-चित्रण के अतिरिक्त निराला जी ने उसके 'वारिदवंदना' में प्रिया के रूप तथा अन्य वर्षा-वसंत आदि ऋतुओं, प्रातःकाल आदि के वातावरण के सुन्दर प्रकृति-चित्र भी इस संग्रह में प्रकट किये हैं। 'खुला आसमान' जैसी यथातथ्यपूर्ण प्रकृति-रचनाएं निराला के ग्राम प्रकृति और ग्रामीण जनजीवन की ओर झुकाव की द्योतक हैं। बाद की रचनाओं और गीतों में यह प्रवृत्ति और बढ़ी। 'वसन्त की परी के प्रति' जैसी कविताओं में प्रकृति के मानवीकरण और उसमें प्रणय भावों के आरोपण की प्रवृत्ति है।

'परिमल' और 'गीतिका' की परम्परा में कवि की दार्शनिक एवं रहस्यवादी प्रवृत्ति, अलौकिक प्रेम भावना और जिज्ञासा आदि भी 'अनामिका' के कई गीतों और कविताओं में पाई जाती है। 'प्याला' कविता में सहज जिज्ञासा है कि मृत्यु-निर्माण और जीवन का यह नश्वर प्याला बार-बार कौन भर देता है? कौन नित्य नये-नये दृश्य रचता है? किसके इशारे पर ये ग्रह, तारा-मण्डल, यह धरती नाचती और घोरती है? प्रातःकाल और फिर विधुमुखी मधुरात कौन लाता है?—

मृत्युनिर्माण प्राणनश्वर
कौन देता प्याला भर भर?

'प्राप्ति' कविता में थके-रुके कवि का हृदा के रूप में वह अज्ञात प्रियतमा मिली, जिसे वह खोजता फिरता था। उसकी कृपापूर्ण गोद और भरपूर चुम्बन पाकर

के निर्झर भरे, गिराए रक्तवाह से सशक्त हो गई । 'उक्ति' कविता मे भी कवि ने अपनी रहस्यमयी प्रिया से पास रहने और हाथ गहने की मनुहार की है। कवि कहता है कि 'यदि दुख के बादल सर पर छाये रहे, जीवन मे कुछ भी सुख लाभ न हो तो भी कोई गम नही, यदि तुम पास रहो। अधर हँसते रहेंगे, यदि कठिन पथ पर तुम हाथ गहे रहे।'

कुछ कविताओ मे हताश-निराश जीवन की कटु वेदना का भाव भी है। कवि का 'जीवन चिरकालिक क्रन्दन' रहा है। सरोज स्मृति' मे भी इस हताश दशा की 'दुख ही जीवन की कथा रही'—जैसे उद्गारो मे अभिव्यक्ति हुई है। किन्तु अवसाद का यह भाव वह विरामस्थल ही है, जहा रुककर निराला का वज्र व्यक्तित्व नवसघर्ष के लिए शक्ति-इधन का सचय करता है। यह जीवन दीर्घकाल आतप मे जला है, सारा आमोद, सब मधु गुजार समाप्त हो गया, माधवियां चली, कुज निकुज धूलि-धूसर हो गए पर कवि फिर भी निराश और हताश नही हुआ, क्योकि उसे नीलनभ में आशा की मेघमाल सदा दिखाई देती रही

जला है जीवन यह आतप मे दीर्घकाल,
सूखी भूमि सूखे तरु, सूखे सिक्त आलबाल,
बन्द हुआ गुज, धूलिधूसर हो गए [illegible]ज
किन्तु पडी व्योम उर बधु नील मेघमाल। —उक्ति

कवि का 'अन्तर वज्र कठोर' है तभी तो 'हताश' होकर भी कवि 'उत्साह' और 'उद्बोधन' के गान गा सका है।

विषय की इस विविधता, भावो की विपुल उदात्तता के साथ ही 'अनामिका' मे बन्ध-छन्द-शैली की भी विविधता पाई जाती है। मुक्त छन्द, सान्त्यानुप्रास छन्द, 'क्या गाऊ,' 'आवेदन' आदि लघुगीत, 'सरोज स्मृति', 'वनवेला', 'नाचे उस पर श्यामा' आदि दीर्घ प्रगीत, 'प्रिया के प्रति', 'मित्र के प्रति' 'खण्डहर के प्रति' आदि सम्बोध गीत, 'सरोज-स्मृति' जैसी श्रेष्ठ शोकगीति, 'राम की शक्ति पूजा' जैसा उदात्त आख्यानक काव्य आदि विविध प्रकार की रचनाए सम्मिलित हैं। 'गीतिका' के कलात्मक शास्त्रीय सगीतपूर्ण गीतो जैसे गीत भी इस सग्रह मे है, जैसे 'वीणावादिनी', 'क्या गाऊँ' आदि और आगामी 'अर्चना' 'आराधना', 'गीतगुज' और 'साध्यकाकली' के सरल, सहज गीतो का सारूप्य लिये 'खुला आसमान' जैसा गीत भी इस सग्रह मे पाया जाता है। कुल मिलाकर निराला का यह सग्रह वैविध्यपूर्ण प्रतिनिधि काव्यसग्रह है।

राम की शक्ति-पूजा

'राम की शक्ति-पूजा' एक लघु कथा-काव्य है। इस लघु काव्य को निराला ने महाकाव्य की उदात्त गरिमा प्रदान करने का प्रयास किया है। प्राचीन गाथा-परम्परा में अलौकिक तत्त्वों, लोक विश्वासों तथा अतिरंजनापूर्ण वर्णनों का समावेश रहता है। गाथाकाव्य की ये सब बातें 'राम की शक्ति-पूजा' में भी विद्यमान हैं, और साथ ही इसमें महाकाव्य का सा गाम्भीर्य भरने की चेष्टा की गई है। पर न तो कथा-विन्यास और कार्य व्यापार ही महाकाव्योचित हो पाया है और न वैसा भाव-विस्तार ही है। केवल असाधारण शैली (ग्रैंड स्टाइल) और वीर भावना से औदात्य उत्पन्न किया गया है।

इसमें राम की मनोदशा का मनोवैज्ञानिक चित्रण किया गया है। राम के मन में रावण से होने वाले आगामी युद्ध की भयंकरता के विषय में चिंता और निराशा का भाव उत्पन्न होता है। रावण की प्रचण्डशक्ति से आतंकित हो वह अपने सहयोगियों से परामर्श करते हैं। प्रारम्भ में निराला जी ने युद्ध की विभीषिका का वर्णन करके राम की चिंता दर्शायी है। प्रकृति भी अन्धकारमयी बनी हुई नैराश्य-नैश बन जाती है और रावण की अपराजेय शक्ति घटाटोप अन्धकार सी प्रतीत होती है। राम की पूर्व स्मृति सहसा विद्युत सी चमकती है और उन्हें पुष्पवाटिका मिलन, सीता-स्वयंवर समय की याद आती है। क्षणिक आलोक पा वे नव उत्साह का संचार करते ही हैं कि दूसरे क्षण उन्हें रावण का युद्धकाल का अट्टहास स्मरण हो आता है। वह पुनः खिन्न हो उठते हैं और उनकी आंखों से आंसू की दो बूंदें गिर पड़ती हैं। कवि ने राम के मानसिक संघर्ष का सुन्दर उद्घाटन किया है।

इसके बाद हनुमान के क्षोभ और अलौकिक चमत्कार का वर्णन है। राम के आंसुओं से उद्विग्न होकर हनुमान क्षुब्ध और उत्तेजित हुआ सृष्टि का ही नाश करने पर उतारू हो उठता है। वह इस हेतु आकाश में छलांग लगाते हैं, पर तभी माता की फटकार सुनकर पुनः पृथ्वी पर उतर आते हैं। हनुमान के इस क्रिया-कलाप में अलौकिक चमत्कार पौराणिक या प्राचीन गाथा काव्यों जैसा ही है।

आधार— साथियों की सलाह से राम विजय प्राप्ति हेतु शक्ति-पूजा का अनुष्ठान करते हैं। यह शक्ति-पूजा मूलतः एक धार्मिक विश्वास पर आधृत है, जिसका

आधार देवी भागवत आदि पौराणिक एवं धार्मिक रचनाएं हैं। 'देवी भागवत' मे वर्णन है कि राम-रावण के अन्तिम निर्णायक युद्ध से पूर्व राम ने नारद के कहने से नव-रात्रि व्रत लिया और देवी की उपासना की। 'शिव महिम्न स्तोत्र' मे विष्णु द्वारा शिव आराधना का उल्लेख है। इसमें विष्णु एक सहस्र कमल पुष्पों से शिव की पूजा करना चाहते हैं, पर एक कमल कम रह जाता है। विष्णु चिंतित होते हैं। पुण्डरीकाक्ष होने से वह इस कमी को अपनी एक आँख भेंट कर पूरा करने को तत्पर हो जाते हैं। इस निष्ठा को देख शिव प्रसन्न हो जाते हैं। पौराणिक-धार्मिक रचनाओं में अन्यत्र भी कई देवों-राक्षसों को घोर तपस्या करने पर शक्ति द्वारा वरदान प्राप्त करने के उल्लेख मिलते हैं। इन्हीं धार्मिक एवं पौराणिक कथा-सदर्भों पर 'राम की शक्ति पूजा' का कथा-सूत्र आधारित है। 'राम की शक्ति पूजा' मे 'देवी भागवत' के नारद का कार्य जामवन्त करता है। वह ही राम को शक्ति-आराधना का परामर्श देता है।

शक्ति पूजा की कल्पना का आधार बंगाल में प्रचलित शक्तिपूजा भी है। बंगाल ही क्या उत्तर भारत में भी आश्विन मास के नवरात्रों में शक्तिपूजा की प्रथा प्रचलित है। बंगाल मे शक्ति असुर विनाशिनी प्रचण्ड शक्ति के रूप मे मान्य है। स्वामी विवेकानन्द के अम्बास्तोत्र में तथा 'काली मदर' नामक उनकी अंग्रेजी कविता में शक्ति की देवी काली के रूप मे मान्यता हुई है। निराला की शक्ति कल्पना भी वैसी ही है। पर्वत के रूप मे देवी शक्ति की कल्पना की गई है, चरणों मे गरजता सागर है, जो सिंह-गर्जना का प्रतीक है। शक्ति सिंहवाहिनी है। दस दिशाएँ उसकी दश भुजाएँ हैं—

> सामने स्थित जो यह भूधर
> पार्वती कल्पना है इसकी, मकरन्द बिन्दु,
> गरजता चरण प्रान्त पर सिंह वह, नहीं सिंधु,
> दशदिक-समस्त हैं हस्त, और देखो ऊपर,
> अम्बर में हुए दिगम्बर अर्चित शशि शेखर,

निराला ने इसमें योग-साधना के तत्वों को जोडकर इसे उच्चतर मानसिक भूमिका प्रदान करने का प्रयास किया है। साधना के छठे दिन राम का मन त्रिकुटी पर पहुँचता है। साधना की अंतिम स्थिति मे राम का मन जिस सहस्रार को पार करता है, वही योगियों का सहस्रदल कमल माना जाता है।

अंत मे १०८ पुष्पों की भेंट-पूजा मे एक कमल पुष्प गिनती मे कम रह जाता है। राम पुनः हताश हो जाते हैं। 'राजीवलोचन' राम कमल के स्थान पर अपनी एक आँख निकाल कर भेंट चढ़ाने को उद्यत हो जाते हैं। कवि ने इस स्थिति को भी सुन्दर नाटकीय और भावात्मक रूप प्रदान किया है। अंत मे देवी के प्रकट होने और आशीर्वाद देने के साथ रचना की समाप्ति होती है। यह अन्तिम अंश भी अलौकिकता पूर्ण है। इस साधना का प्रतीकार्थ यही है कि राम ने अपनी अन्तर की गुप्त या

सुप्त शक्ति को जाग्रत किया और अततः समस्त शक्ति राम मे विलीन हो गई। अद्वैत दर्शन के अनुसार भी आत्मा मे ही समस्त शक्तियों का वास होता है।

काव्य-कला की दृष्टि से 'राम की शक्ति-पूजा' निराला की श्रेष्ठ रचना है। इसमे भावो का औदात्य महाकाव्योचित है। वीररस की ओजपूर्ण व्यजना हुई है। निराला की विराट् चित्र-चित्रण-शक्ति, मूर्त्त-विधान, बिम्बयोजना, भावानुरूप शब्द-योजना आदि शैलीगत विशेषताएँ भावोदात्तता के साथ साथ निराला की भाषा शैली को भी उदात्त बनाती हैं। भाव गभीरता व उदात्तता के साथ विराट् चित्र-चित्रण-शक्ति का एक उदाहरण देखिए :

है अमा निशा, उगलता गगन घन अंधकार,
खो रहा दिशा का ज्ञान, स्तब्ध है पवनचार।
अप्रतिहत गरज रहा पीछे अम्बुधि विशाल,
भूधर ज्यों ध्यान मग्न, केवल जलती मशाल।
स्थिर राघवेन्द्र को हिला रहा फिर फिर सशय,
रह रह उठता जग-जीवन मे रावण-जय-भय।

यहाँ बाह्य प्रकृति और अन्त प्रकृति का कैसा सुन्दर सामञ्जस्य है! कवि ने कैसा विराट चित्र उपस्थित किया है!

'शक्ति पूजा' मे परुष भावो के साथ-साथ कोमल भाव-व्यजना भी हुई है। पुष्पवाटिका मे सीता से प्रथम मिलन की मधुर स्मृति के कोमल भाव की व्यजना मे कवि ने मधुर कोमल शब्दावली—'लतान्तराल किसलय पराग मलय-वलय' आदि का सुन्दर प्रयोग किया है। प्रलय एव विक्षुब्ध वातावरण का चित्रण करने मे 'शत घूर्णावर्त्त तरग भग उठते पहाड़' जैसी अनुकूल परुष शब्दावली का प्रयोग किया गया है। वीररस व्यजक शब्दावली बड़ी ही ओजपूर्ण है।

कवि की बिम्ब विधान-शक्ति का इस रचना में अपूर्व परिचय मिलता है। राम के घनों पर फैले हुए खुले बालो की उपमा पर्वत पर उतरते हुए रात्रि के अन्धकार से दी गई है जो एक विराट् चित्र या बिम्ब प्रस्तुत करती है। आरम्भ की समास गुम्फित शैली बाण भट्ट की सामासिक शैली की याद दिलाती है।

इस रचना मे निराला के परुष-ओजस्वी व्यक्तित्व और आध्यात्मिक तथा दार्शनिक दृष्टि के साथ रोमाटिक या स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति के एक साथ दर्शन होते हैं। इसमे महाकाव्योचित गाभीर्य और औदात्य है। किन्तु इसे महाकाव्य नही कहा जा सकता, हम इसे महाकाव्य का एक सर्ग तो कह सकते हैं, पर महाकाव्य नहीं। इसमे कथानक अत्यन्त सक्षिप्त है, महाकाव्य जैसी जीवन की सम्पूर्णता के इसमें दर्शन नही होते। निःसन्देह भाव-गांभीर्य एव औदात्य तो इसमे है, पर महाकाव्य जैसा भाव-विस्तार इसमें बिल्कुल नहीं। इसमें जीवन का केवल खण्ड चित्रण है। इसी से इसे एक लघु खण्ड काव्य ही कहा जा सकता है। हाँ इतना अवश्य है कि इस खण्ड चित्र मे ही निराला ने महाकाव्योचित गाभीर्य और औदात्य भरने मे कोई कसर नहीं छोड़ी।

निस्सदेह यह रचना छायावाद की एक सफल लघु खण्ड काव्य कृति है। यह प्रगीत रचना नहीं क्योंकि प्रगीत में कवि की चेतना एक क्षण पर सघन रूप से केन्द्रित रहती है, जबकि इसमें काल का गति विस्तार है, कथाक्रम है।

उदात्त रसभावों की व्यञ्जना ही इस कविता की भी प्रमुख शक्ति का रहस्य है। इसमें वीर, शृंगार और भक्ति रस की त्रिवेणी प्रवाहित हुई है। वीरता और ओज के बीच राम के स्मृति शृंगार का उदात्त चित्रण इस कविता का कोमलतम उदात्त अश है। युद्ध विजय की चिन्ता में बैठे राम को सहसा जनक वाटिका में सीता से लतान्तराल प्रथम स्नेह मिलन याद आता है वह नयनो का नयनो से गोपन प्रिय सभाषण, पलकों का नव पलकों पर प्रथमोत्थान पतन, जानकी के कमनीय नयनों का वह कम्पन बिजली सा हृदय मे कौंध जाता है। क्षण भर को राम का मन खो सा जाता है, तन सिहर उठता है, पुनर्वार धनुर्भग की भुजाएँ फडक उठती हैं। सुध लौटी तो सीता ध्यान-लीन राम के अधरों पर मुस्कान दौड जाती है। प्रिया स्मरण अब उनके हृदय में विजय की द्विगुणित भावना भर देता है। कितना उदात्त है यह शृंगार जो एकान्त आनन्द मे नही डूबता, हताश निराश दुखी नही करता, अपितु विजय का उत्साह भरता है। इस शृंगार चित्र मे आलम्बन, लता-तराल एकात उपवन का उद्दीपन, नेत्र पात, मौन सम्भाषण, कम्पन, अपलक निहारना आदि अनुभाव तथा लज्जा, हर्ष, औत्सुक्य आदि सचारियों से परिनिष्ठित शृंगार की पूर्ण योजना है। साथ ही उसकी विजय उत्साहवर्द्धक प्रतिक्रिया उसे उदात्त बना रही है। शृंगार का ऐसा उदात्त चित्र काव्यो मे विरल ही होता है।

समासयुक्त ओजपूर्ण पदावली में युद्ध का यह वर्णन कितना फडका देने वाला है

> 'तीक्षण शर विधृत क्षिप्र-कर, वेग प्रखर,
> शतशेल सम्वरणशील नील नभ गर्जित स्वर,
> प्रतिपल परिवर्तित व्यूह,—भेद—कौशल—समूह
> राक्षस विरुद्ध प्रत्यूह,—क्रुद्धकपि विषम हूह,
> विच्छुरित वह्नि—राजीवनयन हत लक्ष्य-बाण, आदि

वीर रस—वीर रस का विस्तार रचना में प्राधान्य है। वीर के अन्तर्गत चिन्ता, आशका, मति, धृति, आशा, निराशा, स्मृति, ग्लानि, घृणा, क्रोध आदि अनेक सचारी भावो का इसमें प्रसार पाया जाता है। रावण के साथ युद्ध अपराजेय रहने से न केवल राम अपितु समस्त वानर-वाहिनी खिन्नता से भर जाती हैं। राम लक्ष्मण चिन्तातुर हो उठते हैं। कवि ने इस चिन्तापूर्ण हताश अवस्था का मानसी एव प्रकृतिगत सच्चा वातावरण चित्रित किया है। स्मृति सचारी के रूप मे राम को अपने उन दिव्य अचूक शरो की याद आती है, जिन से उन्होंने ताड़का, सुबाहु, विराध, खरदूषण आदि राक्षसों का वध किया था। पर इस सुखद पूर्व स्मृति की तुलना मे आज की कटु यथार्थता राम को बेचैन बना देती है। आज के युद्ध म रावण की अपराजेय शक्ति,

उसका खल अट्टहास राम की आँखों के सामने नाच उठते हैं। राम की चिंता, आशंका, करुणा से पूर्ण आंखों से दो आंसू टपक ही तो पड़ते हैं। इसी प्रसंग में निराला जी ने हनुमान के भक्ति भाव और अलौकिक वीरता का प्रदर्शन किया है। राम के आंसू देखकर :

"ये अश्रु राम के" आते ही मन में विचार,
उद्वेल हो उठा शक्तिखेल-सागर अपार,

उत्तेजित हनुमान दिग्विजय के लिए आकाश में उछल पड़ा।

स्वतंत्रता-सेनानी वीर महाराणा प्रताप के मन में एक बार महाशक्तिशाली अकबर से युद्ध करते हुए शिथिलता का भाव आया था। तब एक वीर कवि की अमर वाणी ने महाराणा को उद्बोध दिया था। यहाँ विषण्णानन राम को विभीषण कुछ इसी प्रकार टोकते हैं 'हे रघुवीर, आज क्या बात है, खिन्न क्यों हो? तुम्हारा वही दलबल है, वही वक्ष, वही रण-कुशल हस्त है, मेघनाद जित लक्ष्मण जैसा वीर भाई सहायक है, वानरराज सुग्रीव, हनुमान् मल्लपति जाम्बवान आदि सब साथ हैं, फिर कैसे यह अनमना भाव उदित हुआ ?—

फिर कैसे असमय हुआ उदय यह भाव-प्रहर ?
रघुकुल-गौरव, लघु हुए जा रहे तुम इस क्षण,
तुम फेर रहे हो पीठ, हो रहा जब जय-रण!
कितना श्रम हुआ व्यर्थ! आया जब मिलन समय,
तुम खींच रहे हो हस्त, जानकी से निर्दय!

अब जबकि विजय दो चार हाथ ही है, जानकी से मिलन का समय आने ही वाला है, यह मुँह मोड़ना, पीठ दिखाना कैसा? जरा सोचो तो दुष्ट खल, पापी रावण, जिसने भला कहते मुझे पाद-प्रहार से अपमानित किया, अपनी विजय के नशे में सीता को कितना कष्ट देगा, कितना अपनी विजय का डंका पीटेगा! और तुमने तो मुझे लंकापति बनाया था, मुझ लंकापति को धिक्कार है! राघव, धिक्कार है!!

"मैं बना किन्तु लंकापति, धिक्, राघव, धिक् धिक्!"

इन पंक्तियों में वीर भावनाओं की कैसी अनूठी व्यंजना है। विभीषण के मन में रावण के प्रति घृणा, अपमान का क्षोभ, राम की भर्त्सना, सीता के प्रति सहानुभूति, लंकापति बनने की आत्मग्लानि आदि कितने ही संचारी भाव एक साथ संचरण कर रहे हैं।

अप्रतिहत राम विभीषण के ओजपूर्ण शब्दों को सुनकर अपनी जो करुण-विवशता प्रकट करते हैं, उससे दैवी-अन्याय के प्रति क्षोभ उत्पन्न होता है। राम बताते हैं कि हम युद्ध में कैसे जीत सकते हैं? स्वयं दैवी शक्ति रावण की रक्षिका बनी हुई है। आह! यह कैसा दैवी विधान है - मैं धर्मरत पराया हो गया और अधर्मी रावण दैवी शक्ति का अपना बना हुआ है! मैंने जितने भी विश्व विजयकर दिव्य तोरण द्वार योजित किए—ऐसे पुनीत द्वार जिनके संधान में सृष्टि की रक्षा का

विचार और असुर संस्कृति का संहार अन्तर्निहित था—'वे पार हो गये आज रण में श्रीहत, खण्डित !' तब मैंने 'देखा है महाशक्ति रावण को लिये अंक।'

जामवंत के सुझाव पर तब राम शक्ति की आराधना करते हैं। शक्ति की यह पूजा स्वयं वीरभाव की परिचायक है। फिर भी इसमें भक्ति रस का स्वतन्त्र परिपाक हुआ है। राम जिस तन्मयता से शक्ति दुर्गा का जाप आराधन करते हैं और एक पुष्प के कम पड़ने पर अपना कमल-नयन भेंट करने को सोत्साह उद्यत हो जाते हैं, वह उनकी भक्ति का अपूर्व उदाहरण है। निम्न पंक्तियों में भक्ति रस की छटा देखिए

(१) "मात दशभुजा, विश्व ज्योति, मैं हूँ आश्रित,
हो विद्ध शक्ति से है खल महिषासुर मर्दित,
जनरंजन चरण-कमल तल, धन्य सिंह गर्जित !"

(२) "दो नील कमल हैं शेष अभी, यह पुरश्चरण
पूरा करता हूँ देकर मात एक नयन।"

इस प्रकार 'राम की शक्तिपूजा' में उदात्त भाव रस-सृष्टि उसे महान् रचना सिद्ध करती है।

: ४ :

तुलसीदास

सन् १९३८ में ही निराला की सर्वश्रेष्ठ रचना उनका प्रसिद्ध खण्ड काव्य 'तुलसीदास' प्रकाशित हुआ। 'राम की शक्तिपूजा' की तरह 'तुलसीदास' भी आख्यानक काव्य है। इसमें १०० बधों में ६०० पंक्तियाँ हैं। इसमें भी निराला जी ने महाकाव्योचित औदात्य और गाभीर्य उत्पन्न करने का प्रयास किया है। कथा या घटनाक्रम इसमें भी अत्यन्त स्वल्प है, केवल तुलसीदास के आत्ममन्थन पर ही केन्द्रित है।

प्रारम्भिक दस बधों में निराला जी ने तुलसीदास के आविर्भावकाल की राजनीतिक दशा का वर्णन किया है। इस्लाम की शक्ति और सभ्यता से समूचा देश आक्रांत और दलित हो चुका था। नैराश्य और निष्क्रियता से देश जड़ बन गया था।

इस भूमिका के पश्चात् राजापुर में शास्त्राध्ययन में लीन युवक तुलसी का उल्लेख किया गया है। एक दिन युवक तुलसी मित्रों के संग चित्रकूट यात्रा को निकलते हैं। वे एक ओर गिरिशोभा से मुग्ध होते हैं, दूसरी ओर राम के इस परम धाम की अधोगति पर खिन्न होते हैं। तुलसी ध्यानस्थ हो अपने मन को ऊर्ध्वगामी करते हैं। परन्तु भारत की पतित एवं दरिद्रावस्था का अंधकार उनके अन्तःचक्षुओं के सम्मुख उपस्थित हो जाता है। तुलसीदास देश की अधोगति पर चिंतारत होते हैं। वह एक ज्योतिर्लोक की कल्पना करते हैं जिसमें राम का आदर्श चरित्र मुक्ति का आलोक बना जीवन का भव्य संदेश देता है। इस संकल्प के साथ ही उन्हें अपनी पत्नी रत्नावली का स्मरण हो उठता है। क्षण भर में ही तुलसी प्रिया-मोह की अध-भूमि पर उतर आते हैं।

वह पुनः अपने मित्रों के साथ तीर्थ दर्शन आदि के पश्चात् घर लौटते हैं। अब तुलसी रत्नावली प्रेम का वर्णन होता है।

पत्नी के प्रेम-मोह में ग्रस्त तुलसी एक बार भी अपनी पत्नी को नैहर नहीं जाने देते। रत्नावली के माता पिता के सब बुलावे टाल देते हैं। एक दिन रत्नावली का भाई बहन को तुलसीदास की अनुपस्थिति में ले ही तो जाता है। अगले ही दिन तुलसीदास पत्नी के पीछे पीछे ससुराल पहुँच जाते हैं। उनकी पत्नी पति के इस लोक-लाजरहित मोह पर दुखी हो उनकी भर्त्सना करती है। पत्नी के कटु वचनों से प्रबोध

पाकर कवि तुलसीदास का संस्कार जाग उठता है। काम-वासना भस्म हो जाती है। वह पत्नी के स्थान पर शारदा के दर्शन करते हैं। भारती की दृष्टि से आकृष्ट हुआ कवि भावलोक की ऊँचाइयों को पार करता आनन्द लोक में विचरण करता है। उसे देशकाल का मायावी ज्ञान नहीं रहता। थोड़ी देर में जब देहात्म-बोध होता है तो भी कवि देहबंधनों से ऊपर उठकर विशुद्ध आत्मरूप की स्थिति प्राप्त किये रहता है और जड़ के विरुद्ध चेतन के संघर्ष को देखने के लिए प्रस्तुत हो जाता है। सभी सांसारिक स्वर लुप्त हो जाते हैं, अलौकिक गीत फूटने को होता है। तुलसीदास सब सांसारिक बन्धन त्याग कर राम की महिमामहिम मूर्ति अपने अन्तर में स्थापित कर लेते हैं। एक नये आलोक का उदय प्राची में होता है।

स्पष्ट है कि इस रचना में आख्यान नाम मात्र को है। एक तरह यह मानवीय मानसिक ऊर्ध्वगमन का विवरण है। इस रचना की बड़ी शक्ति है इसमें उदात्त भावों कल्पना-प्रवण विराट् बिम्बों तथा अनूठे अप्रस्तुतों की योजना।

'राम की शक्ति-पूजा' की तरह 'तुलसीदास' भी निराला की श्रेष्ठतम काव्य-कृतियों में गिनी जाती है। यह 'कामायनी' की तरह छायावाद की अप्रतिम प्रबंधरचना है। 'कामायनी' जैसी वृहदाकार न होने से इसे चाहे महाकाव्य का दर्जा न दिया जाय तथापि महाकाव्योचित औदात्य से ओतप्रोत यह छायावाद का एक अमूल्य खण्ड काव्य है।

युग-बोध

(क) सांस्कृतिक उद्बोध : 'राम की शक्ति पूजा' की तरह इसमें भी निराला की अतीत-दर्शन और अतीत से राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक प्रेरणाएँ ग्रहण करने की प्रवृत्ति पाई जाती है। कवि ने तुलसी के युग की परिस्थितियों के उद्घाटन से इस युग की समानान्तर सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय ह्रास की परिस्थितियों का बोध कराया है। इस तरह अतीत के संदर्भ से निराला ने वर्तमान को प्रेरित किया है। रचना में सबसे पहले देश के सांस्कृतिक ह्रास और उसके कारण कवि की खिन्नता का भाव सामने आता है।

प्रारम्भ में मुसलमानों (विदेशियों) के आक्रमण के फलस्वरूप भारतीय संस्कृति के ज्योतिर्मय सूर्य की प्रभा के धूमिल होने का अवसाद-भरा चित्र अंकित किया गया है। विदेशी आक्रांता (*यहाँ उस युग में मुसलमानों और इस युग के अंग्रेजों दोनों का बोध स्पष्ट है*) हमारी छाती पर आसन लगाकर हम पर शासन कर रहे हैं। भारतीय जन-जीवन का महासरोवर विक्षोभ की हलचल से दूर है। कवि ने इस वर्णन में जो विराट् और उदात्त एवं चित्रमय रूपक बाँधे हैं, वे उसकी अद्भुत कवित्व शक्ति के परिचायक हैं। सांस्कृतिक पराभव की यह सन्ध्या भारत के भाग्या-काश में वैसे ही छा गई जैसे दुर्दिन में दुरन्त मेघ आकाश में छा जाते हैं। अतीत के व्यतीत शौर्य और वैभव पर खिन्नता प्रकट करता हुआ कवि कहता है, जो बुन्देले शत्रु का वैसे ही मर्दन कर डालते थे जैसे सूर्य की प्रखर किरणें अंधकार का नाश कर

देती है, वही बुंदेलखंड आज आभाहीन हुआ जड़ बन गया है। वह टहनी पर लगे निष्प्राण गंधहीन केतकी के पुष्प जैसी दशा को प्राप्त हो गया था। वह बीते उत्सव का सन्नाटा जैसा रह गया था, अथवा उसकी किसी तरु-मूल के नीचे लुण्ठित शिथिल छाया जैसी निरुपाय दशा हो गई थी

रिपु के समक्ष जो था प्रचंड,
आतप ज्यों तम पर करोद्दण्ड।
निश्चल अब वही बुंदेलखण्ड आभागत,
निःशेष सुरभि कुरबक समान,
संलग्न वृन्त पर, चिन्त्य प्राण,
बीता उत्सव ज्यों चिन्ह म्लान छाया श्लथ

यहां निरालाजी ने 'आतप ज्यों तम पर', निःशेष सुरभि कुरबक, बीते उत्सव, श्लथ छाया की सुन्दर उपमान माला से भारत के अतीत शौर्य और वर्तमान अधोगति का बड़ा ही मार्मिक चित्र उपस्थित कर दिया है।

आगे कवि कहता है 'शनैः शनैः इस्लामी (विदेशी) संस्कृति का सम्मोहन बढ़ने लगा। लोग पराजय और दासता के दुख को भूल सुखपूर्ण जीवन के मादक नशे में डूबने लगे।" (९) स्पष्ट है कि इस कथन मे वर्तमानकालीन पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव की ओर भी संकेत है।

अनूठे अप्रस्तुत विधान से युक्त एक और चित्र देखिए. जैसे लहरों के थपेड़ो मे पड़ा उल्लसित फूल यह नही समझता सोचता कि वह किसी तट की ओर भी जा रहा है या नहीं, उसी प्रकार इस्लामी सभ्यता के प्रवाह मे भारतीय जनजीवन दिग्भ्रांत था। वह जल 'छल छल' ध्वनि कर मानो चेतावनी दे रहा था कि 'यह छल है, धोखा है', पर सम्मोहित भारतीयों को उसका 'छल छल' भी 'कल कल' प्रतीत हो रहा था। (१०)

इस प्रकार कवि का सांस्कृतिक चित्रण नव युग के लिए नव सांस्कृतिक जागरण का प्रेरक है। भारतीय संस्कृति के नवोत्थान की आकांक्षा और विदेशी आक्रांताओं से देश के भाग्यगगन को निर्मेघ करने की प्रेरणा इससे प्राप्त होती है। अतः इसका राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक महत्व अक्षुण्ण है।

(ख) नारी और प्रकृति का प्रेरक रूप नारी और प्रकृति की प्रतिष्ठा भी इस युग की एक महती प्रवृत्ति रही है। समस्त छायावादी काव्य मे नारी प्रकृति की ही प्रतीक बनी हुई है। पुरुष का प्रकृति अथवा नारी के प्रति दृष्टिकोण बदला। कवियों ने इन दोनों के प्रेरक एवं शक्ति-रूप की उद्भावना की। तुलसीदास' मे दोनों प्रेरणाशक्ति बनी हुई हैं। कवि तुलसीदास अपने मित्रों के साथ चित्रकूट पर्वत देखने जाते हैं। वहां पवित्र वन-शोभा का अवलोकन कर—प्रकृति की उस सुरम्य, शांत और सात्विक रूप-छटा को देख तुलसी के हृदय में एक नवीन ज्ञान का उन्मेष होता है। उनकी सुप्त चेतना उद्बुद्ध हो गई। प्रकृति की यह प्रेरणा, यह ज्ञानालोक पाकर कवि

विस्मित रह गया। प्रकृति भी अपने सत्पुरुष को पाकर पुलक-विभोर हो उठी और उसने अपने पलक-पावडे कवि के स्वागत में बिछा दिये। आज ये लता-गुल्म, पुष्प-वृक्ष वायु के उल्लास भरे झकोरों से हिलते ऐसे प्रतीत हो रहे थे जैसे प्रकृति ने कवि को आलिंगनबद्ध करने के लिए अपनी बाँहें फैला दी हों (१६)। प्रकृति का प्रत्येक अंग तुलसीदास (पुरुष) को सम्बोधन करता हुआ कहता है "हे चिन्मय बन्धु! अब तक तुम प्रकृति को विस्मृत किये थे। आज तुम्हें पा यह धन्य हो गई है। तुम इसकी धूलि धूसरित छवि को ओर तो देखो कितनी निष्प्रभ हो गई है! इसे ह्रास से बचाओ।" (१७)।

निरालाजी के काव्य का सूक्ष्म अध्ययन करने से स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने यहाँ तथा अन्यत्र भी कई जगह प्रकृति को भारत माता या भारतीय संस्कृति का प्रतिरूप भी बनाया है। यहाँ प्रकृति से स्पष्ट अभिप्राय है राम की कथा से सम्बद्ध चित्रकूट की पवित्र प्रकृति और भारतीय संस्कृति। निराला जी ने नारी रत्नावली में भी इसी प्रकृति एवं शारदा भारती का आरोप किया है। अतः निराला जी की प्रकृति, नारी, भारतीय संस्कृति और भारत-भारती सब यहाँ अभिन्न हो गई हैं। प्रकृति के रूप में पददलित भारतीय संस्कृति ही यहाँ तुलसीदास का आवाहन करती है "हे मुक्ति विहग! तुम ऐसा सुरीला गीत गाओ जिसे सुनकर सृष्टि का कण कण चेतना स्पंदित हो जाये।" १८। हे कवि! अपने चेतन स्पर्श से इन जड पाषाण खण्डों में प्राण फूँक दो। २०। मुसलमानी (विदेशी) विषय-विलासमयी सभ्यता ने सत्य ज्ञान के प्रकाश को "धूमिल कर रखा है, (उस कोहरे को दूर करो)"। २१।

प्रकृति का यह उद्‌बोधगीत सुनकर तुलसीदास का मन वैसे ही उन्मन हो उठा जैसे सुरभित वायु का झोंका अपनी महक से वन प्रांत को आकुल कर जाता है। शाखाबद्ध पक्षी जैसे अकस्मात् मुक्त हो असीम आकाश में ऊँची से ऊँची उडान भरने निकल पडता है, वैसे ही तुलसी की उन्मुक्त आत्मा (पार्थिवता से मुक्त हुई) चेतना के उच्चतम सोपानों पर चढती गई। २२। चेतना और ज्ञान के सर्वोच्च बिन्दु पर पहुँचकर कवि ने एक श्रीहीन, म्लानमुख छवि देखी जो राहु या अंधकार से ग्रस्त सूर्य या चन्द्र के सदृश थी। वह छवि थी देश की दुरवस्था की करुण-कातर तस्वीर।२४। कवि संकल्प करता है यह अंधकार दूर करना ही होगा। इसके आगे ज्ञान सूर्य के प्रकाश से सत्य का द्वार खोलना है। इस प्रचण्ड जीवन-ज्वार के बीच से उस पार सत्य के कूल पर पहुँचना होगा। चाहे इसके लिए कैसी ही बाधाओं से जूझना क्यों न पडे। २५।

प्रकृति प्रदत्त इस प्रेरणा-जैसी ही प्रेरणा तुलसीदास को अपनी पत्नी रत्नावली से मिलती है। अपनी पत्नी रत्नावली के सौन्दर्य प्रेम के मोहजाल में बँधा तुलसीदास ज्ञान के ऊर्ध्व लोक से पतित हो जाता है। वह अपनी पत्नी को एक पल के लिए भी अपने से दूर नहीं करना चाहता। उसे एक बार भी नैहर नहीं जाने देता और जब उसकी अनुपस्थिति में उसकी पत्नी का भाई रत्नावली को नैहर ले जाता है तो

तुलसीदास पीछे पीछे वहीं पहुँचते हैं। पति के इस लज्जापूर्ण मोह से रत्नावली खिन्न हो उठती है। वह मूर्तिमतिमहिमा पति के पास आ खड़ी हुई और अपने तीव्र स्वरों में जीवन की सम्पूर्ण चेतना भरती हुई बोल उठी धिक्कार है तुम्हें जो तुम बिना बुलाये ही या दौड़े चले आये! ऐसा कर तुमने निश्चय ही अपने श्रेष्ठ एवं पवित्र कुल धर्म को डुबा दिया है! तुम अपने को भगवान् राम के गुण-गायक कहते हो। पर तुम तो राम के नहीं, काम के दास हो! जिस रूप पर यों बिना दाम बिके हो, वह अस्थि-चर्म के सिवा और क्या है? यह तुम्हारी कैसी शिक्षा है? क्या ज्ञान है? जीवन यात्रा का यह कौनसा विराम है?—

'धिक्! धाए तुम यों अनाहूत,
धो दिया श्रेष्ठ कुलधर्म धूत,
राम के नहीं, काम के सूत कहलाए!
हो बिके जहाँ तुम बिना दाम,
वह नहीं और कुछ—हाड़-चाम!
कैसी शिक्षा, कैसे विराम पर आए।"—तुलसीदास ८५

पत्नी की प्रेरणा भरी वाणी सुनते ही कवि तुलसीदास का चमत्कार प्रबलता से जाग उठा, काम वासना भस्म हो गई। रत्नावली नारी के स्थान पर वह अग्नि की ऐसी प्रज्वलित प्रतिमा-सी दिखाई दी, जिसने मोहादि विकारों को जला डाला। सर्वत्र ज्ञानालोक दिखाई देने लगा। सांसारिक जड़ता, अज्ञानता नष्ट हो गई। ८६।

तुलसी को अपनी पत्नी साक्षात् सृष्टि की जिह्वारूपा नीलवसना वरदायिनी शारदा दिखाई दी

देखा, शारदा नीलवसना,
हैं सम्मुख स्वयं सृष्टि-रशना,
जीवन-समीर-शुचि निःश्वसना, वरदात्री,

उसका मुख ही वीणा बना हुआ था और उससे निस्सृत वचन अमृत-स्वर झर रहे थे। और यह विश्व ही हंस था जिस पर उसके श्रीचरण शोभायमान थे।

वीणा वह स्वयं सुवादितस्वर,
फूटी तर अमृताक्षर-निर्झर,
यह विश्व हंस, हैं चरण सुघर जिस पर श्री। ८७।

इस भारती रत्नावली के दर्शन से प्रेरित हुआ कवि तुलसीदास का मन अब पुनः चेतना के ऊर्ध्वतम स्तर को प्राप्त कर गया, जहाँ उन्हें ज्ञान की एक ज्योति दिखाई दी जिसके सात्विक नीलाभ प्रकाश में रत्नावली रूपी शारदा मिल गई। ८९।

इस प्रकार कवि ने नारी रत्नावली का प्रेरणा शक्ति के रूप में प्रकट किया है। नारी को शारदा, ज्ञान की ज्योति, प्रकृति और आदिशक्ति का प्रतीक बनाया गया है। वह रत्नावली प्रिया मात्र न थी तुलसी को सन्मार्ग पर लाने वाली सत्य की सृष्टि थी। वह श्रद्धा की मूर्त समष्टि थी। जैसे दीपदशा पर गाये हुए भगवान्

विष्णु को उनकी पराशक्ति योगनिद्रा जागरणकाल तक अपने में परिबद्ध किये रहती है वैसे ही रत्नावली रूपी शक्ति मायापन में पहले तुलसी को अपने में समाहृत किये थी। ५८। अब उचित समय पर उसने ही तुलसीदास को जगा दिया है। रत्नावली की भर्त्सना में शांत रस के सचारी रूप में क्षोभ, घृणा, निंदा आत्मग्लानि आदि अनेक भाव व्यक्त हुए हैं। रसानुभूति की दृष्टि से यह समस्त प्रसग शात रस से ही *सम्बन्धित है।*

(ग) **निम्न वर्ग और निम्न वर्ण की दुर्दशा का चित्रण**—'तुलसीदास' में कवि निराला ने तुलसी-युग से बहुत आगे आधुनिक युग का भाव बोध प्रकट किया है, इसका और भी ज्वलन्त प्रमाण यह है कि उन्होंने तुलसी युग में निम्नवर्ग और निम्न-वर्ण की दुर्दशा का जो मार्मिक चित्रण किया है, वह तुलसी के मानसिक सस्कारों की पहुँच से परे था, *ऐसा चित्रण आधुनिक तुलसीदास ही कर सकता था।*

चेतना की बुलंदियों पर पहुँचकर तुलसीदास ने भारत के सास्कृतिक ह्रास को देखा। क्षत्रिय, ब्राह्मण और वैश्य सब पथ-भ्रष्ट हो गये थे। पर्णकुटियों के वासी निम्नवर्ग और निर्धन लोगों की दशा शोचनीय हो गई थी। वे उच्च वर्णों के अत्याचारों और शोषण से पीड़ित थे। ??। चेतनाहीन शूद्रजन सवर्ण समाज द्वारा वैसे ही कुचले जा रहे थे जैसे युद्धकाल में हरे भरे खेत घोड़ों की टापों तले कुचले-रौंदे जाते हैं। वे शूद्र सर्वथा साधन सम्बलहीन थे। जीवन की तुच्छ आवश्यकताएँ भी वे अभागे पूरी नहीं कर सकते थे। अपने अरमानों की जीवित समाधि बने हुए उन शूद्रों का जीवन एक दारुण अभिशाप था। वे जीवन के नाम पर श्वास-शेष थे। अपनी दारुण दशा बताने के लिए मुँह खोलने पर उन्हें सवर्णों की लातों के प्रहार सहने पड़ते थे। ऐसी स्थिति में वे यही सोचकर रह जाते थे कि उनके भाग्य में तो आजन्म सवर्णों का मुख-ग्रास और दास बनना ही बदा है। २८-२६।

स्पष्ट है यह वर्णन आधुनिक युग का भाव बोध है, तुलसी युग का कवि बोध *या कम से कम ब्राह्मण-सस्कारों वाले तुलसीदास का मानस बोध नहीं है।* उपर्युक्त दृष्टि से 'तुलसीदास' आधुनिक भाव बोध की महत्त्वपूर्ण रचना है। रस परिपाक की दृष्टि से निम्नवर्ग की दुर्दशा का यह चित्रण कवि की राष्ट्र सस्कृति-प्रेम की भावना का ही प्रतीक है। देश की अधोगति पर खिन्नता, दरिद्र निम्नवर्ग के प्रति करुणा आदि अनेक सचारियों *का यहाँ सचरण हुआ है।*

नारी-सौन्दर्य और शृंगार-रस—'तुलसीदास' में उदात्त नारी-सौन्दर्य और प्रेम का प्रकाशन भी बहुत भव्य हुआ है। चित्रकूट की यात्रा में अपनी पत्नी रत्नावली का स्मरण होने पर तुलसीदास उसके प्रेम में खो जाता है। *ध्यान में स्थित उसे चित्रकूट* की प्रकृति में भी अपनी प्राण प्रिया का ही रूप नजर आता है। ऊँचे उठे हुए पर्वतों में उसके पुष्टपीन उरोज दिखाई दिये, वृक्ष ही रत्नावली के कोमल बाहु थे, ऊपर लगे फलों के रूप में मानो वह स्नेह स्निग्ध दृष्टि से सबको फलदान कर रही थी। ४१। पक्षियों का मधुर कलरव, सरिताओं की कलकल ध्वनि मानो रत्नावली के ही कोमल

करों से झंकृत वीणा के स्वर थे। ४१-४२।

चित्रकूट की तीर्थ-यात्रा से लौटकर घर आते ही तुलसी अपनी प्रिया की रूप-छवि में ही भूल गया। वह उसके मुख-चन्द्र के लिए चकोर बन गया। उस प्रिया के दो चचल लोचन दीपो-से निर्मल आभा विकीर्ण करते हैं। वे दोनो मानो प्रणय और विभ्रम के निलय हैं। वे घर के प्रकाश हैं, जीवन के नेत्र हैं।' इस प्रकार तुलसीदास अपनी पत्नी रत्नावली के सौन्दर्य और प्रेम मे इतने मुग्ध हो गए कि पत्नी के नैहर चले जाने पर वे एकदम वियोग व्यथा से विचलित हो उठे : जब तुलसी ने देखा कि उनकी प्राणवल्लभा घर पर नही है, वे दुखी हो गए। उन्हें उसके बिना घर भी अवसाद मे डूबा प्रतीत हुआ, सूना-सूना लगा। घर के सब सौन्दर्य उपादान उन्हें विरस और विद्रूप लगे। गृह श्री के बिना घर श्रीहीन हो गया है। उसकी दशा तुषार हत सुरभि-हीन कमल जैसी हो गई थी। ७१। जो घर उसके सुरीले कठ से निस्सृत गीतो एव उसके बजते हुए नृत्य-रत नूपुरो की गुजार और झकार से निनादित रहता था, उसकी मन्द-मधुर चाल और अरुण चरणतल से जिसके आगन मे लालिमा बिखरी रहती थी, वही आज सूना-सूना, फीका फीका लग रहा था। ७२॥

इस प्रकार स्मृति-वियोग मे डूबे तुलसी उन्मन हो गये। वह रागिनी दूर चली जाने से और भी मधुर हो गई थी। उसे सुनने के लिये तुलसी का रोम-रोम आकुल हो उठा। वह प्रेम मे अंधे हुए कुल-मर्यादा, लोकौचित्य का विचार त्याग कर उसी मार्ग पर चल पडे। ७३॥

इसके आगे दो छन्दो मे निराला ने प्रकृति का शृगारिक चित्रण किया है। मार्ग मे जाते हुए तुलसी की समस्त प्रकृति शृगार-भाव मे रगी प्रतीत हुई। वृक्षो की डाल-डाल पर कोयलो ने मस्तानी तान छेड रखी थी। तुलसी ने देखा—वृक्ष रग-बिरगे फूलो से लदे थे जैसे उनकी प्रियाओ ने फूलमालाएँ पहना दी हों। वायु की हर ताल पर नृत्य करती झूमती लताएँ शोभा पा रही थीं। उन पर सूर्य की किरणें ज्योति के स्वर्ण निर्झर-सी झर रही थी। वायु भी पुष्प-रस-पान से मस्त अनुराग भरी झूम रही थी और पुष्प लताओ से आलिंगन करती मदहोश बह रही थी। ७४।

यहा भी निराला का प्रिय विषय स्मृति शृगार 'यमुना के प्रति' कविता की याद दिला देता है। तुलसी ने मार्ग मे गायों को चराते धूलि-धूसरित ग्वाल बालो को देखा। धरती हुई और हाकी गई गायें चपलता से इधर-उधर भाग रही थी। तुलसी को यह दृश्य देखकर सहसा व्रज मे श्याम के वशीवादन और गो-चारण की याद आई। उस यमुना के तट की याद आई, जहाँ कदम्ब के पेड तले श्याम की मुरली का मधुर स्वर सबको मोहित करता था। उस सुरम्य वृन्दावन की याद आई जहाँ कृष्ण रास लीला आदि लीलाएँ रचाते थे। बिजली की कौंध से दीप्त वह मेघमण्डित आकाश याद आया जब इन्द्र के कोप से कृष्ण ने व्रजमडल को बचाया था। कितनी मुग्धकारी रही होगी वह वनश्री जो गोपियों के तन यौवन को आकर्षित करती थी ! ७५।

एक पद मे कवि ने सत्रमो

सुखोपम न का वर्णन किया है। प्रियतमाओं के नयन अपने प्रियों के नयनों से जुड़े स्नेह-सुरा का पान कर मदहोश थे। सुन्दरियों के प्रणय विस्फारित नयनों से प्रेम का राग मुखरित था। उनका प्यार सुहाग का पहला सुनहला प्यार था। जैसे सरोवरों में नील लाल नाना रंगों के कमल खिले रहते हैं, वैसे उन नयनों में स्नेह के मधुर मादक रंगीन सपने खिले थे। ८०।

ससुराल में रत्नावली से भेंट का बड़ा ही मनोहर वर्णन हुआ है रत्नावली की केशराशि खुली थी। उसकी बिखरी हुई लटें मछली-सी उन्मुक्त पीठ पर लहरा रही थीं। नयन कमल अपलक निस्पन्द थे। ८१। जैसे आकाश में पवन प्रेरित नील कादम्बिनी सहसा पर्वत के पास आ ठहरती है वैसे ही अपने सघन श्यामल कोमल केशभार में लहराती तथा अपनी अपूर्व कान्ति से दामिनी द्युति को भी लज्जित करती हुई रत्नावली तुलसी के पास आ खड़ी हुई। उस अपूर्व सौन्दर्य छटा को निहार तुलसी ठगे-से रह गये। उस नील अलका घन घटा को देखकर तुलसी का मन-मयूर अपने चन्द्रांकित पुच्छ फैला कर अर्थात् उमग से भर कर नाच उठा। ८२।

इस प्रकार 'तुलसीदास' में सौन्दर्य और शृगार का भी बड़ा भव्य प्रकाशन हुआ है। सयोग और वियोग दोनो के मधुर संश्लिष्ट चित्र अत्यन्त मोहक हैं। प्रकृति का शृगार उद्दीपनकारी चित्रण सर्वत्र हुआ है।

वियोग वात्सल्य—'तुलसीदास' की रस माधुरी में वियोग वात्सल्य भी अपूर्व रस घोल रहा है। जब अपनी पत्नी रत्नावली को तुलसीदास विवाह के बाद एक बार भी नैहर नही जाने देते तो रत्नावली के माता पिता भाई भाभी रत्नावली से मिलने को तड़प उठते हैं। रत्नावली का भाई जिस मर्म व्यथापूर्ण वाणी में माता-पिता की यह तड़प व्यक्त करता है, वह मन्न हृदय को भी पिघला देने वाली है। भाई कहता है, 'बहन! आँखों मे आँसू भर रुधे कठ से माता ने कहा है—क्या तुझे अब माँ की बिल्कुल याद नही आती, क्या तेरे मन मे माँ की बिल्कुल ममता नहीं रही जो तू उससे कभी मिलने नही आती ?' बापू ने कहा है—मैं तो अब कुछ दिन का ही मेहमान हूँ। नदी-तट के वृक्ष की भाँति कोई भरोसा नही, कब ढह पड़ूँ, कब बह जाऊँ। यदि तू अब भी न आई तो फिर कभी अपने बापू का मुँह न देख सकेगी।' ६३।

इस प्रकार तुलसीदास में उदात्त एवं सुन्दर रस भावो की छटा आद्यत पाई जाती है। उदात्त राष्ट्र-संस्कृति प्रेम उदात्त शांत रस, उदात्त प्रेम एवं वात्सल्य रस, उदात्त प्रकृति चित्रण आदि अनेक भाव रसो का इसमे प्रसार है, जो आरम्भ से अंत तक पाठक को रसमुग्ध करता रहता है। इसके साथ ही कला की अनूठी चित्रकारी निराला की काव्य कला ममज्ञता की परिचायक बनी हुई है। उपर्युक्त सब प्रकार के वर्णन चित्रण में निराला ने अनूठी उपमान योजनाओं, सचित्र रूपों एवं लाक्षणिक-मूर्तिमत्ता से अभिव्यंजना को अत्यधिक सशक्त और मार्मिक बना दिया है। उदात्त भाव-शक्ति और उदात्त विराट कला सज्जा का ऐसा अनूठा सामंजस्य साहित्यिक

रचनाओं मे बहुत कम पाया जाता है। इस रचना मे 'राम की शक्ति पूजा' से भी दीर्घ छन्दो का सफल प्रयोग किया गया है।

'तुलसीदास' की महानता उसके उद्देश्य की महानता मे निहित है। निराला जी ने उदात्त भाव वृत्तियो को जगाया है। आत्मबोध, जाति बोध, संस्कृतिबोध और राष्ट्र-जागरण की इसमे सशक्त अभिव्यक्ति कहाँ मिलेगी? तुलसी के आत्मबोध का जैसा कलात्मक साथ हो जैसा उदात्त और ओजस्वी चित्रण उन्होंने किया है, वह इस रचना को महाकाव्योचित औदात्य प्रदान करता है, कवि कहता है—

जागो जागो आया प्रभात
बीतो वह बीती अघरात,
झांयो बांधो किरणें चेतन,
तेजस्वी, हे तमजिज्जीवन;
आती भारत की ज्योतिर्धन महिमाबल।

भारत की गौरव-महिमा पुन लौटने वाली है, उसकी ज्ञान ज्योति की महिमा अब ससार देखेगा। जड़ से चेतना का दुर्धर्ष सग्राम होगा। दैवी और आसुरी शक्तियों का सघर्ष होगा जिसमें भारत की देवी सस्कृति विजयी होगी। तुलसी की कला बिखरे हुए ज्योतिकणो को सगठित करेगी। ६४।

इस प्रकार आशा की एक नई ज्योति जगाकर कवि ने रचना समाप्त की है।

छायावादोत्तर मोड़

निराला की उपर्युक्त काव्य कृतियों के अध्ययन से स्पष्ट हुआ होगा कि यद्यपि आरम्भ से ही निराला जी ने विविध प्रवृत्तियों को अपनाया, तथापि सम्पूर्ण छायावाद युग (१६१६ से १६३७ ई० तक) मे उन्होंने मुख्यत छायावादी प्रवृत्ति को अपनाये रखा और छायावादी काव्य को अपनी प्रतिभा की अपूर्व मणियाँ प्रदान कीं। इस काल की उनकी प्रगतिशील रचनाएं भी भावना और अभिव्यक्ति की दृष्टि से प्रगतिवाद की उग्र यथार्थता की अपेक्षा छायावादी काव्य के जीवन-बोध के ही अधिक निकट हैं। इसी प्रकार भक्ति-भावना और प्रशात प्रवृत्ति भी जो इन बीस-बाईस वर्षों के समय में रची गयी कुछ कविताओं मे पाई जाती है, वह भी उनकी छायावादी रहस्यात्मक प्रमुख प्रवृत्ति का ही अग बनकर प्रकट हुई है। तात्पर्य यह है कि छायावाद युग में निराला ने पूरी तन्मयता से छायावाद का साथ दिया और उनकी प्रमुख प्रवृत्ति इस काल में छायावाद रही।

छायावाद के अन्त के साथ ही निराला की प्रमुख काव्य प्रवृत्ति में भी परिवर्तन हुआ या यों कहना चाहिए कि सन् १६३८ से १६४६ तक निराला की काव्य-साधना का जो दूसरा चरण सामने आया, उसने पूर्ववर्ती छायावाद युग की समाप्ति और नवीन यथार्थोन्मुख प्रगतिवादी प्रगति का बिगुल बजाया। इस काल में निराला की प्रमुख काव्य प्रवृत्ति यथार्थ प्रगतिवादी काव्य रचने की रही। इस समय की रचनाओं के उनके चार सग्रह 'कुकुरमुत्ता' 'अणिमा', 'बेला' और 'नये पत्ते' प्रकाशित हुए।

: ५ :

कुकुरमुत्ता

१९४२ ई० में प्रकाशित 'कुकुरमुत्ता' निराला जी की हास्य-व्यंग्य की एक ऐसी लम्बी कविता है, जो आज तक हिन्दी आलोचना को चुनौती देती आ रही है। यह निराला की सर्वाधिक विवादास्पद रचना है निराला जी की यथार्थवादी प्रवृत्ति, व्यंग्य-वृत्ति, नई प्रगतिशील सामाजिक चेतना की यह परिचायक है। उसके मर्मभेदी व्यंग्यों को केवल दांत निकालने (हँसने) से नहीं समझा जा सकता। यह वह व्यंग्य है जो हँसी में नहीं उड़ाया जा सकता, क्योंकि वे व्यंग्य अनेकमुखी हैं। उनकी जद से बच पाना आसान नहीं। वे दोधारी तलवार हैं जो लक्ष्य अलक्ष्य, स्व-पर, दायें-बायें, पीछे आगे सब ओर बरसती हैं, सब पर प्रहार करती हैं ?

काव्यार्थ रूप से कुकुरमुत्ता' की कहानी यही है एक नवाब थे—बड़े ठाठ वाले। उन्होंने अपनी बाड़ी में बहुत से देशी-विदेशी पौधे लगा रखे थे। उन्होंने फारस से गुलाब मँगाकर बाड़ी में लगवाये। बहुत से नौकरों-मालियों को उनकी देख-देखभाल के लिए रखा हुआ था। फूलों पौधों को ऐसे सजाया उगाया गया था जैसे गजनवी का बाग हो। जहाँ क्यारियों में फारस का गुलाब खिला था, उसी के बगल में नाले के पास स्वतः उग आने वाला देशी पौधा कुकुरमुत्ता सर ताने खड़ा था। डाल पर इतराते हुए गुलाब को कुकुरमुत्ता आड़े हाथों लेता है और उसकी सब शान झाड़ते हुए अपना रंग जमाता है। बाग के बाहर गंदे-तंग झोपड़ों में नवाब साहब के खादिम रहते थे। उन्हीं में एक बंगाली माली सोना था जिसकी मालिन को नवाब साहब ने अपने पास स्वैराचारपूर्वक आने का गौरव प्रदान कर रखा था। उस मालिन की बेटी गोली और नवाब की बेटी बहार हमजोलिनें थीं। एक दिन दोनों बाग में घूमने आईं। बहार गुलाबों की बहार देखने लगी, पर गोली कुकुरमुत्ता पर रीझ गई। बहार के पूछने पर गोली ने कुकुरमुत्ता का महत्त्व बताया और कहा कि इसका कबाब बड़ा स्वादिष्ट बनेगा। कुकुरमुत्ता तोड़ लिया गया। गोली की माँ ने अपने घर कबाब बनाया। इतनी देर दोनों सहेलियाँ खेलती रहीं—राजा-प्रजा का खेल। गोली डिक्टेटर बनी और बहार भुक्कड़ फॉलोअर-सी उसके पीछे पीछे। कबाब बहार को बड़ा स्वादिष्ट लगा। अपने घर आकर कुकुरमुत्ता के कबाब की प्रशंसा नवाब साहब से की। नवाब साहब ने माली को हुक्म दिया कुकुरमुत्ता लाओ कबाब बनेगा। माली

ने कहा—हुजूर कुकुरमुत्ता अब नहीं रहा, रहे हैं सिर्फ गुलाब।' नवाब साहब क्रोध से कांपते हुए बोले—जहाँ गुलाब उगाये हैं वहाँ कुकुरमुत्ता उगाओ, सबके साथ मैं भी उसी को चाहता हूँ। माली ने नम्रतापूर्वक कहा—खता मुआफ! कुकुरमुत्ता उगाया नहीं जाता, हुजूर!'

प्रश्न है, इस सारी प्रतीकार्थक कथा का वास्तविक कथ्य क्या है? कवि का लक्ष्य क्या है? एक बात तो साफ है कि निराला जी ने इस रचना मे ऐय्याश नवाबों, रईसों, पूंजीपतियो या ऐसे शासकों पर व्यग्य किया है जो स्वय ऐश्वर्य-विलास में डूबे रहते हैं, किसान-मजदूर-मालियों को नौकर रखते हैं, व्यभिचारी हैं, विदेशी पौधो-वस्तुओ से अपने घर-बाग सजाते हैं, अहवादी हैं, शोषक हैं। नवाब साहब का ऐश्वर्य-विलास ऐसा ही है। उन्हें फारस (विदेश) का गुलाब पसन्द है। अपने विनोद के लिए वे गजनवी-जैसा बाग लगवाते हैं और अनेक मालियो और नौकरों को सेवा के लिए रखते हैं। उन्हें गन्दी झोंपड़ियों ही रहने को मिलती हैं और सर्दी-गर्मी हर समय, हर मौसम कड़ा काम करना पड़ता है। समाज की यह विषम आर्थिक अवस्था कवि के व्यग्य का शिकार हुई है। नवाब साहब मालिन से व्यभिचार करते हैं—यह इन बड़े लोगों का एक प्रिय विनोद होता है। ऐसे नवाब-रईस अहवादी होते हैं। देश की रीति परम्परा स्थिति का उन्हें कोई ज्ञान नहीं। इतना भी नहीं जानते कि कुकुरमुत्ता स्वत उगने वाला देसी पौधा है, उगाया नहीं जाता। उनकी फरमाइश पूरी होनी चाहिये, आज्ञा मानी जानी चाहिये। ये धनकी लोग अपने स्वाद और स्वार्थ के लिए ही दुनिया की सब वस्तुएं जुटाते हैं। विदेशी-स्वदेशी किसी से इनका लगाव नहीं। ये अवसरवादी होते हैं, झट अपनी विचारधारा बदल देते हैं। किसी ने बता दिया कि देसी कुकुरमुत्ता विदेशी गुलाब से अच्छा है,तो गुलाब की जगह उसी की मांग हो गई। नवाब साहब से सम्बन्धित बातो का यही प्रतीकार्थ है।

बहार उच्च वर्ग की बच्ची है और गोली निम्नवर्ग की। विदेशी सस्कृति मे पली बहार को पहले विदेशी गुलाब ही अच्छा लगता है,इसके विपरीत भारतीय निम्न-वर्गीया गोली को देसी कुकुरमुत्ता प्रिय है। दोनों हमजोलिनें हैं और बच्ची हैं। इसी से दोनों में ऊँच नीच की दूरी नहीं है। जहाँ बड़ो मे वर्ण भेद रहता है, बच्चे समता का पाठ सिखाते हैं। बहार और गोली दोनों एक साथ खेलती, खाती-पीती हैं, कोई भेद-भाव नहीं। उनके खेल-खेल मे निराला ने सकेत किया है कि एक (बहार) राजतन्त्र की परम्परा से सम्बन्धित है, दूसरी गोली सर्वहारा वर्ग के डिक्टेटरशिप को लाने वाली। भविष्य का सकेत यह दिया गया है कि बड़े ऊँचे पूंजीपतियो, नवाबो राजाओ को भी भविष्य मे सर्वहारा वर्ग के फॉलोअर बनना पड़ेगा। उनकी इच्छा और रुचि पर चलना होगा। जनजीवन से प्यार करना होगा, विदेशी या बुर्जुआ जहनीयत बदलनी होगी। गोली की प्रेरणा से बहार जो कुकुरमुत्ता को पसन्द करने लगी, उससे यही अभिप्राय है।

फारस का गुलाब उच्च शोषक वर्ग, बुर्जुआ मनोवृत्ति और विदेशी विचार

मूक, आत्महीनता से ग्रस्त किसान सर्वहारा का। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी या उनके प्रिय शिष्यों ने इसमें साम्यवाद या सर्वहारा वर्ग अथवा प्रगतिवाद के उपहास की जो ध्वनि पाई है, उससे हम सहमत नहीं। निराला जी की 'मास्को डायलाग्ज़'—जैसी एक-दो अन्य कविताओं में अवश्य ढोंगी साम्यवादियों पर फब्तियाँ कसी गई हैं, यहाँ कुकुरमुत्ता में ऐसी कोई बात नहीं है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी का कथन है—"इसमें गुलाब का ही परिहास नहीं, स्वयं कुकुरमुत्ता का भी उपहास है। वह अपने मुँह से अपनी जिन विशेषताओं का उल्लेख करता है, और जिस पद्धति से स्वयं संसार की श्रेष्ठतम वस्तुओं का जनक कहता है वे व्यंजना के द्वारा स्वयं उसे उपहास के केन्द्र में उपस्थित कर देती हैं। गुलाब और कुकुरमुत्ता का परिहास करते हुए निराला जी यह व्यंजित करते हैं कि न तो प्राचीन समाज व्यवस्था का प्रतीक गुलाब हमारा आदर्श है, और न कुकुरमुत्ता ही आधुनिक संस्कृति का प्रतीक बन सकता है।" (कवि निराला, पृष्ठ ५१)

हमारा नम्र निवेदन है कि यहाँ प्राचीन और आधुनिक संस्कृतियों की टक्कर का कोई प्रश्न ही नहीं है। न गुलाब पुरानी संस्कृति का प्रतीक है और न कुकुरमुत्ता आधुनिक संस्कृति का। वस्तुतः गुलाब सामन्तवादी पूँजीवादी शोषक संस्कृति का (यदि संस्कृति शब्द ही प्रयुक्त करना है तो) प्रतीक है और कुकुरमुत्ता सर्वसाधारण जन-जीवन या जन संस्कृति का। उन्होंने युग की आवाज के अनुसार कुछ चुने हुए ऊँचे लोगों की संस्कृति (?) के स्थान पर जन जीवन की प्रतिष्ठा चाही है। यहाँ जन संस्कृति की आदर्श रूप में प्रतिष्ठा का भी कोई सवाल नहीं है। जो लोग गुलाब को पंत जी या रवीन्द्रनाथ टैगोर का प्रतीक अनुमान करते हैं, वे भी भ्रांति में ही हैं। इस रचना में यदि निराला जी ने किसी कवि को अपने व्यंग्य का लक्ष्य बनाया है, तो वे हैं टी० एस० इलियट और उनके अंधभक्त अनर्गल प्रयोगवादी कवि।

कुकुरमुत्ता का अतिरंजनापूर्ण वर्णन ईलियट की 'वेस्टलैंड' की भांति सदर्भ-प्राचुर्य के लाने के लिए किया गया है। पर इसमें निराला को विशेष सफलता नहीं मिली। वे ईलियट का उपहास करके स्वयं अपने ऊपर भी हँस कर रह गए। निम्न पंक्तियों में 'कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा, भानमती ने कुनबा जोड़ा' वाली बात जहाँ ईलियट और उनके अन्ध अनुयायियों पर करारा व्यंग्य है,वहाँ निराला अंतिम पंक्ति में स्वयं अपने ऊपर भी हँसे हैं

कहीं का रोड़ा, कहीं का लिया पत्थर,
टी० एस० इलियट ने जैसे दे मारा,
पढ़ने वालों ने जिगर पर हाथ रखकर,
कहा, कैसा लिख दिया संसार सारा।

डा० रामविलास शर्मा प्रभृति आलोचकों का यह मंतव्य—कि "कुकुरमुत्ता

निराला के अद्वैतवाद की नकल हो सकता है क्योंकि ब्रह्म की तरह वह बलराम के हल से लेकर आधुनिक पैराशूट तक सभी में व्याप्त है"—सर्वथा भ्रामक है।

'कुकुरमुत्ता' की शैली मे भी प्रयोग का चमत्कार है। जैसे उसका विषय नया यथार्थवादी है, वैसे ही उसकी भाषा शैली उर्दू-अंग्रेजी के शब्दो से युक्त गद्यवत ही है। उसमे व्यग्य की ही विशिष्टता है। निराला ने इसमे 'तुलसीदास' या 'राम की शक्ति पूजा' जैसी रचनाओं के जैसे विराट् चित्र और बिम्ब प्रस्तुत नही किये। इसमें तो प्रतीकात्मक प्रयोगों द्वारा व्यग्य की ही बहार है।

: ६ :

अणिमा

'अणिमा' १९४३ ई० में प्रकाशित निराला जी की १९३७-३८ से '४३ तक की चुनी हुई ४५ रचनाओं का संग्रह है। यह रचना कवि की संधिकालीन रचना कही जा सकती है, क्योंकि इसमें कुछ गीत और कविताएं तो 'गीतिका' के ढंग की रहस्य-परक रचनाएं हैं, कुछ नए ढंग की यथार्थवादी व्यंग्यपरक प्रगतिवादी रचनाएं हैं। इस संग्रह से प्रमाणित होता है कि इस संधिकाल में कवि जहां नये यथार्थवादी सामाजिक धरातल पर उतर आया था, वहां पहली परिपाटी की रचनाएं भी लिखता रहा।

'अणिमा' के अधिकांश गीत भाव, भाषा, शैली-बंध आदि सभी दृष्टि से 'गीतिका' की गीत-परम्परा में आते हैं। ऐसे गीत प्रार्थनापरक, रहस्यवादी, प्रकृतिपरक तथा देश-प्रेम-सबन्धी हैं। कवि ने कई गीतों में अपने प्रिय प्रभु से प्रार्थना की है कि वह उसके, उसकी जाति और देश के जीवन को निरामय कर दे, सब का कल्याण हो :

धूलि में तुम मुझे भर दो।
धूलि-धूसर जो हुए पद
उन्हीं के वर वरण कर दो।
दूर हो अभिमान, संशय, वर्ण आश्रमगत महासय,
जाति जीवन हो निरामय, वह सदाशयता प्रखर दो।

सन् १९३९ का लिखा 'दलित जन पर करो करुणा' गीत भी बहुत सुन्दर प्रार्थनापरक गीत है जिसमें कवि ने प्रभु के प्रति दीनता का प्रकाशन करते हुए भी, स्वाभिमानपूर्वक उन्नत मन-मस्तक बने रहने की कामना प्रकट की है। प्रभु के चरणों में नत-शिर भक्ति, पर सांसारिक वैभव के आगे सीना ताने रखने की आकांक्षा प्रकट की है :

दलित जन पर करो करुणा।
दीनता पर उतर आये प्रभु, तुम्हारी शक्ति अरुणा।
× × × ×
देख वैभव न हो नत सिर, समुद्धत मन सदा हो स्थिर
पारकर जीवन निरन्तर रहे बहती भक्ति वरुणा।

'गीतिका' के गीतों की तरह निराला जी के इन गीतों पर भी कवीन्द्र रवीन्द्र के ऐसे ही गीतों का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। पथ पर बैठे साधक को प्रभु-दर्शन और मिलन की रहस्यानुभूति कराने वाला यह गीत ऐसा ही है —

मैं बैठा था पथ पर तुम आये चढ़ रथ पर
हँसे किरण फूट पड़ी, टूटी जुड़ गयी कड़ी,
उतरे, बढ़ गही बाँह, पहले की पड़ी छाँह,
शीतल हो गई देह, बीती अविनश्य पर।

इसी प्रकार 'सुन्दर हे, सुन्दर! दर्शन से जीवन पर बरसे अविनश्वर स्वर। रहस्यवादी गीत पर रवीन्द्र के 'एहो लोभिनु सम तव, सुन्दर हे, सुन्दर!' गीत का स्पष्ट प्रभाव है। निराला जी ने सारा रवीन्द्रकाव्य कंठस्थ कर रखा था, अत: भाव, भाषा शैली का यह प्रभाव स्वाभाविक ही था। देश-प्रेम-सम्बन्धी प्रसिद्ध गीत वह है जिसमे निराला जी ने भारत को 'जीवनधन' कहा है :

भारत ही जीवन धन,
ज्योतिमय परम रमण, सर सरिता वन-उपवन!

इस संग्रह की प्रार्थनापरक आध्यात्मिक रचनाएँ 'गीतिका' की परम्परा से आगामी 'अर्चना' और 'आराधना' की कड़ी जोड़ती हैं। 'नूपुर के सुर मंद रहे, जब न चरण स्वच्छन्द रहे,' 'तुम चले ही गये प्रियतम'—जैसे शृंगारपरक गीत 'गीतिका' के अनेक गीतों की तरह आध्यात्मिक रंग में रंगे हुए हैं। 'अणिमा' के इन गीतों में 'गीतिका' की अपेक्षा सरल भाषा का प्रयोग हुआ है।

इस संग्रह में प्रकृति-प्रयोग के दोनों ही रूप मिलते है—एक पहले का कल्पना-रंजित, उद्दीपनकारी विराट् प्रकृति चित्रण और दूसरा प्रकृति का कल्पनारहित नया यथातथ्यपूर्ण सरल चित्रण। 'निशा का यह स्पर्श शीतल, भर रहा है हर्ष उत्कल' तथा 'बादल छाये' में पहला रूप लक्षित होता है और 'जलाशय किनारे कुहरी थी' कविता में प्रकृति का यथातथ्यपूर्ण चित्रण हुआ है। निराला अपने आगामी काव्य में अंत तक प्रकृति के ऐसे ही यथातथ्यपूर्ण वर्णन की ओर अधिक बढ़े। प्रकृति का रहस्यात्मक, शृंगारपरक और कल्पनारंजित विराट् चित्रण करना उन्होंने आगे कम कर दिया। प्रकृति के ऐसे यथातथ्यपूर्ण वर्णन करने की प्रवृत्ति 'अनामिका' की 'खुला आसमान' (१९३८ ई०) जैसी कविताओं से ही आरम्भ हो गई थी, जो निश्चय ही छाया-वादोत्तर काल की कवि-प्रवृत्ति है। प्रकृति प्रयोग का यह नया ढंग अंतिम 'सांध्यकाकली' तक बराबर बना रहा। 'अणिमा' से एक उदाहरण देखिए :

जलाशय के किनारे कुहरी थी,
हरे-नीले पत्तों का घेरा था
पानी पर आम की डाल आई हुई;
किनारे सुनसान थे, जुगनू के

बस चमके—यहाँ-वहाँ चमके,
नारियल के पेड़ हिले क्रम से,
ताड़ खड़े ताक रहे थे सबको,
पपीहा पुकार रहा था छिपा।...आदि।

इस सग्रह से ही कवि को अपने 'दिवस की सन्ध्यावेला' का भी आभास होने लगा था जो 'सांध्यकाकली' की 'पत्रोत्कंठित जीवन का विष बुझा हुआ है' कविता में सर्वाधिक भावसघनता से प्रकट हुआ है। विषाद वैयक्तिक पीडा की व्यजना इस संग्रह की कई कविताओ मे हुई है। कवि की थकी हुई वाणी का स्वर देखिए

मैं अकेला
देखता हूँ, आ रही मेरे दिवस की सान्ध्यवेला
पके आधे बाल मेरे, हुए निष्प्रभ गाल मेरे,
चाल मेरी मद होती आ रही, हट रहा मेला।

पर इस सान्ध्य वेला में भी असतोष की छटपटाहट नहीं है, सतोष की शांति है। कवि जानता है कि जो नदी-नाले झरने उसे पार करने थे, वे सब कर चुका है। अत यदि कोई नाव नही है, तो कोई चिंता की बात नहीं·

जानता हूँ, नदी-झरने जो मुझे थे पार करने,
कर चुका हूँ, हँस रहा यह देख, कोई नहीं भेला।

'स्नेह निर्झर बह गया है' मे भी विषाद की छाया है। 'गहन है यह अधकार' मे कवि ने जगत की स्वार्थमय प्रवृत्ति पर विषाद प्रकट किया है।

इस सग्रह मे कुछ प्रसिद्ध महापुरुषो और साहित्यकारो पर लिखी प्रशस्तियां वर्णनात्मक ही हैं। 'सन्त कवि रविदास जी के प्रति', 'श्रद्धांजलि' (आचार्य शुक्ल के प्रति), 'प्रसाद जी के प्रति', 'भगवान बुद्ध के प्रति', 'श्रीमती विजयलक्ष्मी पण्डित के प्रति', 'स्वामी प्रेमानन्द जी', 'महादेवी वर्मा के प्रति' आदि प्रशस्तिया अधिकतर सम्बोध गीत शैली पर रची गई हैं। निराला जी की उदार, विनम्र प्रकृति, बडो के प्रति सम्मान भावना आदि व्यक्तित्व की विशेषताओ के सिवा इन कविताओ मे उनकी काव्य-प्रतिभा के पनपने का विशेष अवसर नही था। सदा विरोधी बने रहने वाले आचार्य शुक्ल को भी निराला जी ने हिन्दी आलोचना की अमावस्या का चन्द्रमा कहा है। 'भगवान् बुद्ध के प्रति' कविता मे आज के भौतिक वैज्ञानिक जड विकास पर गहरी चोट की है

आज सभ्यता के वैज्ञानिक जड विकास पर
गर्वित विश्व नष्ट होने की ओर अग्रसर
× × ×
मिले राष्ट्र से राष्ट्र, स्वार्थ से स्वार्थ विचक्षण
हँसते हैं जडवादग्रस्त, प्रेत ज्यों परस्पर।

'अणिमा' मे 'सहस्राब्दि', 'उद्बोधन' और 'स्वामी प्रेमानन्दजी महाराज' तीन

दीर्घ प्रगीत है। 'सहस्राब्दि' निराला की सशक्त रचना है। इसमे उनकी की 'यमुना के प्रति' (परिमल) और 'दिल्ली' (अनामिका) आदि की अतीत दर्शन की प्रवृत्ति पुन प्रकट हुई है। कवि ने राष्ट्रीय गौरव एवं सांस्कृतिक चेतना को जगाया है। यह निराला की ऐतिहासिक चेतना की भी परिचायक है। अतीत गौरव का स्मरण करता हुआ कवि कहता है :

वह विजय शकों से अप्रमाद,
वह महावीर विक्रमादित्य का अभिनन्दन
वह प्रजाजनों का आवर्तित स्पन्दन-वन्दन''' आदि

नई व्यंग्यात्मक रचनाएँ भी 'अणिमा' में कम नही हैं। कवि की यथार्थपरक प्रवृत्ति का यहा पूर्ण परिचय मिलता है। प्रकृति के यथातथ्यपूर्ण यथार्थ चित्रण का उदाहरण हम ऊपर दे आए हैं। 'स्वामी प्रेमानन्द जी महाराज' कविता मे भी यह प्रवृत्ति अवलोकनीय है।

इसी प्रकार कवि निराला को अब ग्राम-जीवन और ग्राम-प्रकृति प्रिय लगने लगी है। गाँव के यथार्थ चित्र उसने कई कविताओ मे प्रकट किये हैं। ग्राम-प्रात और ग्राम प्रकृति का यथार्थ चित्र 'सडक के किनारे' की निम्न पंक्तियो मे देखिए :

''''''माल पर बैलगाडी चली ही जा रही है,
नीम फूली है, खुशबू आ रही है,
डालों से छन-छन कर राह पर किरनें पड़ रही हैं बाहु पर
बाहु लिये जा रहा है खेत में दाहनी तरफ किसान, रेत मे
बाईं तरफ चिड़िया कुछ बैठी हैं, खुली जडें सिरसे की ऐंठी हैं।

इस कविता मे ग्राम प्रात के अच्छे स्नेपशॉट है। निराला जी ने कल्पना की रंगीनियों को छोडकर 'अणिमा' की इन कविताओ मे यथार्थ का आँचल पकड़ा है। जीवन—विशेषत ग्राम-जीवन या निम्नजीवन जैसा है, वैसा का वैसा चित्रित कर देने के कारण यहाँ यथार्थ है। अच्छा होता यदि वर्णनात्मकता के स्थान पर इन यथार्थ रचनाओ में भाव-संवेदनाओ का भी स्पष्ट ध्वनन होता। निराला जी न तो यहा व्यंग्य को अच्छी तरह उभार सके हैं और न यथार्थ चित्रो को संवेदनात्मक बना सके हैं। 'यह है बाजार' कविता मे यथार्थ चित्रण के साथ-साथ व्यंग्य भी अच्छा उभरा है। इसमे कवि ने ग्राम-जीवन की एक यथार्थ झाँकी प्रस्तुत की है। गाँवो मे रखैल रखने का आम रिवाज है। ऐसी रखैलो के पुरुषों को नखरे भी सहने पडते हैं और उनके बारे मे यह संदेह भी बराबर बना रहता है कि कहीं यह व्यक्ति-विशेष को छोडकर दूसरे की रखैल न बन जाय। सुखिया दुखिया की ऐसी ही रखैल है। दुखिया उसकी नाजबरदारी के लिए विवश है। वह मन में सोचता है : 'बैठाली क्या जाने ब्याही का प्यार।' वह उसके व्यंग्यों, उसकी मास, तेल आदि वस्तुओं की फरमाइशों को जवाब भी तो नही दे सकता,क्योंकि कौन जाने कब वह दूसरे के घर बैठ जाय और तब उसे सिंह से स्यार बनना पड़ेगा।

यह है बाजार सौदा करते हैं सब यार।
दुखिया बोला मन में, "अरी सास की,
मौत सिखाता हूँ मैं तुझे, अभी रास की,
चोरी है याद मुझे, बात कौन घास की,
बैठाली क्या जाने ब्याही का प्यार ?"
दुखिया ने सोचा, 'इसके पीछे बिना पड़े भला,
बैठा ले दूसरा तो सिंह से हूँ, स्यार।"

इसमें गाँव की इस रखैल रीति पर जबरदस्त व्यग्य है। इसमें नारी की स्थिति भी हास्यास्पद होती है और पुरुष की भी। नारी स्वैरिणी-सी बन जाती है, समाज की नजरों में उसका सम्मान नहीं होता और पुरुष के मन में उसके प्रति खटका ही लगा रहता है। 'यह है बाजार, सौदा करते हैं सब यार' में यही अभिप्राय है कि यहाँ सब सौदेबाजी होती है। आज दुखिया ने सुखिया को रखैल बना रखा है, कल कोई और सौदा पटाकर उसे रख सकता है। सब-कुछ पैसे की तराजू पर तुलता है।

'दाना' कविता में निरालाजी ने पैसे का यथार्थ महत्त्व प्रकट किया है। जहाँ दाना अर्थात् पैसा है, वहीं दीन ईमान, राग रंग, महफिल आदि हैं

चूँकि यहाँ दाना है
इसलिए दीन है दीवाना है।
लोग हैं, महफिल है,
नग्मे हैं साज है दिलदार है और दिल है
शम्मा है, परवाना है, चूँकि यहाँ दाना है।

अपने घर के पश्चिम की ओर रहने वाली गरीब युवती के यौवन पर रीझने की यथार्थ स्थिति का अंकन भी निराला की इसी यथार्थपरक दृष्टि का परिणाम है। कवि निःसकोच अपनी बात यथार्थ रूप में कह देता है·

मेरे घर के पश्चिम ओर रहती है बड़ी बड़ी आँखों वाली वह युवती,
सारी कथा खुल-खुल कर कहती है चितवन उसकी और चालढाल उसकी।
पैदा हुई है गरीब के घर, पर कोई जैसे जेवरों से सजता हो
उभरते जोबन की मीड़ खाता हुआ राग साज पर जैसे बजता हो।

इन यथार्थ चित्रों में भाषा का सरलतम रूप है, पर है यह सपाट इतिवृत्तात्मक कोई संगीत नहीं, कोई लय-ताल नहीं। न अलकार हैं न कल्पना की रंगीनी। भाव-सवेदनाएँ भी कम उभर पाई हैं। इस दृष्टि से प्रवृत्तिगत ऐतिहासिक महत्त्व के सिवा इनका साहित्यिक महत्त्व विशेष नहीं।

'अणिमा' के गीतों की कला 'गीतिका' के गीतों-जैसी ही शास्त्रीय सगीत से पूर्ण अत्यन्त भव्य है। लय, गति, बंध आदि सभी दृष्टि से ये गीत उच्च कोटि की गीतकला के परिचायक हैं। इनकी भाषा 'गीतिका' के गीतों की अपेक्षा अधिक सरल

है। भक्तिपूर्ण प्रार्थनापरक गीत 'अर्चना' और 'आराधना' की भाव एवं कला-परम्परा का निर्माण करते हैं। कुल मिलाकर 'अणिमा' कवि के संधिकाल की ऐसी रचना है जिसमें एक ओर छायावाद युग की सभी परम्पराएँ रक्षित हैं : 'गीतिका' की गीत-शैली—वेदना गीत, रहस्यवादी गीत, अतीत-गौरव-स्मरण, प्रकृति का विराट् रहस्यात्मक विवरण, वैयक्तिक विषाद-वर्णन आदि छायावादी युग की प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं; दूसरी ओर उसमें आगामी 'अर्चना', 'आराधना' के आत्मसमर्पणपूर्ण भक्ति-गीतों, यथातथ्यपूर्ण प्रकृति-प्रयोगों, ग्राम-चित्रों तथा 'नये पत्ते' और 'बेला' की यथार्थपरक सामाजिक रचनाओं और गद्यवत भाषा शैली की भी भूमिका निर्मित हुई है।

: ७ :

बेला

जनवरी १९४६ मे प्रकाशित 'बेला' उर्दू शैली की गजलो और नये लय-गीतो का सग्रह है, जिसमे विभिन्न यथार्थवादी विषयों को अपनाया गया है। इसमे कुल ९५ कविताएँ हैं। 'बेला' के 'आवेदन' मे निरालाजी ने कहा है—'बेला' मेरे नये गीतों का सग्रह है। प्राय सभी तरह के गेय गीत इसमे हैं। भाषा सरल और मुहावरेदार है, गद्य करने की आवश्यकता नहीं। देश-भक्ति के गीत भी हैं। बढकर नई बात यह है कि अलग-अलग बहरों की गजलें भी हैं, जिनमें फारसी के छन्द-शास्त्र का निर्वाह किया गया है।''''''प्राय सभी दृष्टियो से फायदा पहुँचाने का विचार रखा गया है।"

कवि के 'निवेदन' से स्पष्ट है कि इस सग्रह मे उसने नये-नये प्रयोग किये हैं। भाषा-शैली, छन्द-बन्ध,लय-गति आदि अभिव्यक्ति पक्ष की नवीन प्रयोगात्मकता के साथ भाव और विषय की दृष्टि से भी नवीनता है। इसमे 'गीतिका' शैली के कुछ गीतों के सिवा अधिकतर गीत और गजलें उर्दू शैली मे रची गई हैं भाव और विषयपक्ष से भी अधिक विलक्षणता इस सग्रह के अभिव्यक्ति पक्ष मे है। इसकी बदली हुई उर्दू-शैली-मिश्रित भाषा और उर्दू-फारसी छन्द और बहरें इसे नई प्रयोगवादी रचना सिद्ध करते हैं। उर्दू-शैली की रचनाओं मे उर्दू मुहावरे और उर्दू तरजे-बयान पाया जाता है.

(१) चढ़ी हैं आँखें जहा की, उतार लायेंगी।
बड़े दुमों को गिराकर सँवार लायेंगी।
(२) साहस कभी न छोड़ा, आगे कदम बढ़ाये।
पट्टी पढ़ी कब उनकी, झासे मे हम कब आये?

फारसी की फऊलुन फऊलुन फऊलुन फऊलुन रुक्नों पर रची बहर का उदाहरण देखिए

किनारा वे हम से किये जा रहे हैं,
दिखाने को दर्शन दिये जा रहे हैं।
खुला भेद विजयी कहाये हुये जो,
लहू दूसरों का पिये जा रहे हैं।

उपर्युक्त पक्तियो मे पूँजीपति शोषको की खबर ली गई है। सर्वहारा वर्ग की सच्ची पुकार है। विषय प्रतिपादन प्रगतिवादी है और साथ ही फारसी बहर और उर्दू

मुहावरों—किनारा करना, लहू पीना आदि का भी सफल प्रयोग हुआ है। यहां भाषा बोल-चाल की हिन्दी या उर्दू है। न उर्दू-ए-मुअल्ला है, न संस्कृतगर्भित हिन्दी।

इसी प्रकार निम्न गजल फारसी की

फाइलातुन फाईलातुन फाइलातुन फाइलातुन वजन पर है।
गिराया है जमीं होकर छुड़ाया था समां होकर।
निकाला बुत मने-जां को बुलाया मेह रवां होकर।

दो-तीन कविताओं में निरालाजी ने कजली और लोकगीतों की तर्जें अपनाई हैं। निम्न गीत विषय और शैली दोनों ही दृष्टियों से निराला की नवीन काव्य-प्रवृत्ति का परिचायक है। कवि की यह एक सशक्त प्रगतिवादी रचना है। विषय है सन् १९४२ की संकटग्रस्त जनता, बंगाल का अकाल, महंगाई, राजनीतिक नेताओं का मुँह छिपा लेना, जनता की दीनहीन असहाय अवस्था—सब का चित्र इस गीत में उतर आया है :

काले काले बादल छाये, न आये वीर जवाहर लाल
कैसे कैसे नाग मंडलाये, न आये वीर जवाहर लाल
महँगाई की बाढ़ बढ़ आई, गांठ की छूटी गाढ़ी कमाई,
भूखे नंगे खड़े शरमाये, न आये वीर जवाहर लाल
कैसे हम बच पायें निहत्थे, बहते गये हमारे जत्थे,
राह देखते हैं भरमाये, न आये वीर जवाहरलाल।

उर्दू-शैली की गजलों में अधिकतर काफिया और रदीफ का निर्वाह अच्छा हुआ है, कहीं-कहीं अपवादस्वरूप निराला जी का काफिया तंग अवश्य हो गया है। पर हिन्दी की दृष्टि से तुकान्तता का यह कोई दोष नहीं।

निराला ने कुछ गजलों में हिन्दी और उर्दू के मिश्रण का सुन्दर प्रयोग किया है। कुछ आलोचकों को ये प्रयोग अटपटे-से लगे हैं, पर हिन्दी-उर्दू की वर्तमान मैत्री की जबरदस्त ऐतिहासिक भूमिका के निर्माण का महत्त्वपूर्ण प्रयास निराला ने किया था, इस बात में आज किसी को संदेह नहीं। ये प्रयोग अटपटे नहीं, सफल हैं.

निगह तुम्हारी थी दिल जिससे बेकरार हुआ।
मगर मैं गैर से मिलकर निगह के पार हुआ॥
अंधेरा छाया रहा रोशनी की माया में।
कहीं भी छाया का आंचल न तार तार हुआ।
कहीं भवोना सजो और, कहीं सजो बोना।
शराबो प्याले का अब तक न बहिष्कार हुआ।

विषय की दृष्टि से यह फारसी-उर्दू की आशिक-माशूक, शराबो प्याला के ढंग की शृंगारपरक रचना है। यह विषयगत प्रयोग भी नया है। निराला जी ने निस्सन्देह हिन्दी की शक्ति को नये-नये क्षेत्रों में परखा है।

निरालाजी की उर्दू-शैली की गजलों में कहीं-कहीं तो ठेठ हिन्दी का ठाठ है, जैसे—

हँसो के तार के होते हैं ये बहार के दिन
हृदय के हार के होते हैं ये बहार के दिन।

यहाँ हिन्दी-उर्दू का मैत्रीपूर्ण मेल है, जैसा ऊपर दिखाया जा चुका है। बहुत कम पंक्तियाँ ऐसी होंगी जहाँ संस्कृत और फारसी की बेमेल खिचड़ी दिखाई दे।

आधुनिक हिन्दी कविता में प्रयोगवाद का प्रारम्भ निराला से ही माना जाता है और निराला की भी 'बेला' और 'नये पत्ते' रचनाएँ इस दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। 'बेला' के नये प्रयोग हर क्षेत्र—विषय, भाव, भाषा, छन्द, संगीत आदि को छूते हैं। 'बेला' में विषय की दृष्टि से नवीनता का महत्त्वपूर्ण रूप है कवि का स्पष्टतम प्रगतिवादी रूप। प्रगतिशील तो वह प्रारम्भ (परिमलकाल) से ही था और प्रगतिवाद के जन्म के दस पद्रह वर्ष पूर्व 'भिक्षुक', 'विधवा', 'बादलराग' जैसी जनवादी सामाजिक रचनाएँ कर चुका था, अब वर्गसंघर्ष, सर्वहारा-वर्ग की प्रतिष्ठा, पूँजीपतियों के विनाश, ब्रिटिश साम्राज्यवादियों से मुक्ति, जाति-वर्ण-बंधन-मोचन आदि का खुलकर संघर्षमय चित्रण हुआ। असल में निराला का विद्रोही प्रचंड रूप 'बेला' और 'नये पत्ते' में ही खुलकर प्रकट हुआ। प्रगतिवादियों के स्पष्ट स्वर में कवि कहता है कि अमीरों की आज की हवेलियाँ कल को किसानों की पाठशालाएँ बनेंगी। धोबी, तेली, चमार आदि सब निम्न वर्ग के शोषित इकट्ठे होंगे, सब मिलकर टाट बिछाकर एक ही पाठ पढ़ेंगे

"आज अमीरों की हवेली, किसानों की होगी पाठशाला,
धोबी, पासी, चमार, तेली खोलेंगे अंधेरे का ताला,
एक पाठ पढ़ेंगे टाट बिछाओ।

ऐसी यथार्थपरक रचनाओं में भाषा-शैली अलंकाररहित गद्यवत है। उनमें पूँजीवाद के प्रति घृणा और किसानों-मजदूरों-गरीबों, निम्न वर्गों, शोषितों के प्रति सहानुभूति का भाव है। यही उदात्त भाव-संवेदना इनकी कुछ शक्ति है अन्यथा शैली शुष्क ही है।

कवि ने रक्त-क्रान्ति का और भी संघर्षपूर्ण चित्रण इन पंक्तियों में किया है

जग गई जनता हुए लुंठित मुकुट, जीवन सुहाये।
रुण्ड मुण्डों से भरे हैं खेत, चीलों से बिछाये।

कवि ने राजतंत्र, सामंतवाद, पूँजीवाद सबको 'बेला' में मृत्युदण्ड दिया है। वह क्रांति-दूत बनकर जनता का साहस बढ़ाता है और दूषित शिक्षा-पद्धति, दूषित इतिहास को बदल देने का आवाहन करता है :

'बदल शिक्षा-क्रम, बना इतिहास सच्चा, दम न ले।'

'बेला' में प्रगति और प्रयोग की उपर्युक्त प्रवृत्ति होते हुए भी कवि परम्परा को तिलांजलि नहीं दे सका है। इसमें 'गीतिका' आदि की परम्परा के शृंगार, अलौकिक प्रेम-भक्ति आदि के विविध प्रकार के गीत भी बहुत संख्या में हैं। आध्यात्मिक धारण और चिन्तन की दिव्य प्रतिक्रिया का वर्णन इस गीत में बहुत सुन्दर है :

नाथ तुमने गहा हाथ, वीणा बजी,
विश्व यह हो गया साथ, द्विविधा लजी।
खुल गये डाल के फूल, रंग गये मुख
विहग के, धुल मग की हुई विमल सुख;
झरण में मरण का मिट गया महा दुख
मिला आनन्द मय माथ; संसृति जगी।

इसी प्रकार किसी गीत में प्रिय की ध्वनि न सुनने को रहस्यानुभूति का वर्णन है, कहीं अपने प्रिय प्रभु की चरणध्वनि सुन लेने से जड़-चेतन सबके आनन्दित हो जाने की बात कही गई है :

शुभ्र आनन्द आकाश पर छा गया
रवि गा गया किरण गीत
श्वेत शत दल कमल के [अमल खुल गये,
विहग कुल-कंठ-उपवीत

इन गीतों पर रवि बाबू की 'गीतांजलि' का प्रभाव भी लक्षित होता है। इस परम्परावादी तर्ज के एक-दो गीत अत्यन्त अस्पष्ट और दुरूह से भी हो गये हैं जिनका असंगत प्रलाप निरर्थक ही प्रतीत होता है।

'तू कभी न ले दूसरी आड़' गीत साहस और प्रेरणा का गीत है। [निम्नगीत में कवि ने 'गीतिका' आदि के मंगल गानों की तरह प्रभु से देश-मंगल की कामना की है :

प्रतिजन को करो सफल।
जीर्ण हुए को यौवन, जीवन से भरो सकल
रंगे गगन, अन्तराल, मनुजोचित उठे भाल
छल का छुट जाय जाल, देश मनाये मंगल।

इस प्रकार बेला प्रयोग, प्रगति और परम्परा का अद्भुत त्रिवेणी-संगम है।

: ८ :

नये पत्ते

मार्च १९४६ मे प्रकाशित 'नये पत्ते' निराला का प्रसिद्ध व्यग्य-काव्य सग्रह है। इसमे भी कवि की यथार्थवादी प्रवृत्ति, सामाजिक व्यग्य-चित्रण, और उर्दू-शैली के नये ढग-प्रयोग पाये जाते हैं। इसमे कुल रचना-सख्या २८ है। पहले 'कुकुरमुत्ता' में संगृहीत ७ रचनाएं भी इसमे ही रख दी गई हैं। 'स्फटिक शिला', 'देवी सरस्वती' और 'खजोहरा' नये ढग के व्यग्य-प्रधान दीर्घ प्रगीत हैं। 'देवी सरस्वती' कविता इस सग्रह की उदात्त शैली की श्रेष्ठ रचना है। काल-क्रम से इस सग्रह की रचनाएं 'बेला' से पहले की हैं, पर प्रकाशन बाद मे हुआ।

'नये पत्ते' की प्रस्तावना में निरालाजी ने लिखा है—'नये पत्ते' इधर के (१९४० से ४६ तक) पद्यो का सग्रह है। सभी तरह के आधुनिक पद्य हैं, छन्द कई—मात्रिक सम और असम। हास्य की भी प्रचुरता। भाषा अधिकाश में बोल-चाल वाली। पढने पर काव्य-कुजों के अलावा ऊँचे-नीचे फारस के जैसे टीले। अधिक मनोरजन और बोधन की निगाह रखी गई है कि पाठको का श्रम सार्थक हो और ज्ञान बढ़े। वे अपनी भाषा की रूप-रेखायें देखें।"

'नये पत्ते' में आधी से अधिक रचनाए कवि की यथार्थपरक प्रगतिवादी दृष्टि की सूचक हैं। दस बारह कवितायें विविध प्रकार की हैं। इनमे दो कविताएं—'चौथी जुलाई के प्रति' और 'काली माता'—स्वामी विवेकानन्द जी की अंग्रेजी कविताओं का अनुवाद हैं। दो रचनाए श्रद्धाजलि या प्रशस्ति-रूप मे लिखी गई हैं—१. 'तिलाजली' जो नेहरूजी के बहनोई और विजयलक्ष्मी पडित के पति श्री आर० एस० पण्डित के निधन पर लिखित श्रद्धाजलि है, २ युगावतार परमहस श्री रामकृष्णदेव के प्रति है जिसमे कवि ने परमहस जी के प्रति अपनी श्रद्धा और प्रेम के पुष्प अर्पित किये हैं।

'देवी सरस्वती' निराला जी की 'परिमल', 'गीतिका' परम्परा की क्लासिकल रचना है। इसमे उन्होने षड्ऋतुओं के रूप मे सरस्वती के उदात्त चित्र प्रस्तुत किये हैं। ज्ञान की देवी सरस्वती को प्रथम आर्यों की देवी मानता हुआ कवि कहता है—'सामगीत गाये आर्यों ने तुम्हे मानकर'। आगे वर्षा आदि सभी रूपों में देवी का

अवलोकन करते हुए कवि ने ग्रामप्रकृति और जनजीवन के सुन्दर चित्र प्रस्तुत किये हैं :

हरीभरी खेतों की सरस्वती लहराई
मग्न किसानों के घर अमन्द बजी बधाई।
खुली चांदनी में डफ और मंजीरे लेकर
बैठे गोल बांधकर लोग बिछे खेतों पर,
गाने लगे भजन कबीर के, तुलसीदास के,
धनुषभंग के और राम के बनोवास के। ...आदि

कल्पनाप्रियता, भाषा शैली, सरस्वती-वदन आदि छायावादी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ होते हुए भी यह रचना परम्परा और प्रगति का अद्भुत सामंजस्य प्रकट करती है। इसमें भी सामान्य ग्राम-जीवन के प्रति निराला का रुझान, कृषकों तथा निम्न वर्ग के प्रति सहानुभूति, जमींदारों और शोषक महाजनों का विरोध आदि प्रगति-तत्त्व बीच बीच में स्पष्ट लक्षित होते हैं। शिशिर में जन जीवन भी सरिताओं के साथ जीर्ण-शीर्ण हो गया। वर्षा में जो थोड़ा-बहुत उपज से प्राप्त हुआ था, वह धन छीना गया, इसी से गरीबों के तन पर आधे वसन भी नहीं हैं। वे सर्दी में ठिठुरते कठिनाई का जीवन बिता रहे हैं। जमींदार और महाजन की बन आई है। ये धूर्त पिशाच सूद और मुफ्तखोरी से समाज में गण्यमान्य बने हुए हैं :-

जीर्ण हुई सरिताएं; साधारण जन ठिठुरे,
रहे घरों में जैसे हों बागों में गिठुरे।
छिना हुआ धन, जिससे आधे नहीं वसन तन,
× × ×
जमींदार की बनी, महाजन धनी हुए हैं,
जग के मूर्त पिशाच धूर्तगण गनी हुए हैं।

'कैलाश में शरत्' में निराला जी ने स्वामी विवेकानन्द के साथ कैलाश की काल्पनिक यात्रा का विवरण दिया है। इसमें कैलाश की भौगोलिक स्थिति भी त्रुटि-पूर्ण है और कल्पनाएँ भी असम्बद्ध हैं। कवि ने अपनी अवचेतना या अर्द्धचेतना को निर्बाध प्रवाहित होने दिया है। कवि यहाँ यथार्थ से दूर कल्पना और स्वप्न के लोक में विचरण करता है।

व्यंग्य काव्य—इन कुछ रचनाओं के सिवा अधिकांश रचनाएँ निराला की सामाजिक चेतना, इतिहास-दर्शन और प्रयोगवादी एवं प्रगतिवादी प्रवृत्ति की परि-चायक हैं। इन रचनाओं में निराला एक सफल व्यंग्यकार के रूप में आधुनिक हिन्दी काव्य में अपना अग्रतिम स्थान बनाए हुए हैं। निराला के व्यंग्य-काव्य और उनकी भाव संवेदनाओं पर हम आगे 'निराला के भाव-बोध' प्रकरण में भी प्रकाश डाल रहे हैं, यहाँ 'नये पत्ते' की ऐसी रचनाओं का परिचय देते हैं।

छायावाद रहस्यवाद का अपार्थिव सूक्ष्म या छद्म प्रेम यहाँ पार्थिव और

लौकिक 'प्रेमसंगीत' बन गया है। वह आदर्श के कल्पना-लोक से यथार्थ भूमि पर उतर आया है। बम्हन का लडका कहारिन के पीछे मरता है! कैसा जबरदस्त व्यंग्य है यहाँ जात-पात पर! वैसे तो ब्राह्मण हैं—जात के ऊँचे, अहीरों, कहारों—सबको नीच समझते हैं, पर काली किन्तु यौवन वाली कहारिन के पीछे मरते हैं!!

बम्हन का लडका मैं उससे प्यार करता हूँ
जात की कहारिन वह, मेरे घर की पनहारिन वह,
आती है होते तड़का, उसके पीछे मैं मरता हूं।

कैसी यथार्थ अभिव्यक्ति है! 'बम्हन का लडका' शब्दों में मार्मिक व्यंग्य छिपा है। 'स्फटिक शिला' कविता में भी कवि मांसलता पर मुग्ध हुआ है। अवचेतन में दमित काम-भावना को यहाँ खुलकर निकलने दिया है, कुंठा टूट गई है, पर चेतन हावी हो ही जाता है और कवि को सद्यस्नाता युवती जानकी सीता के रूप में पूज्या ही माननी पड़ती है—

खड़ा हुआ स्फटिक शिला में देखता ही रहा
आँख पड़ी युवती पर, आई थी जो नहा कर
गीली धोती सटी हुई भरी देह में, सुघर
उठे पुष्ट तन, दुष्ट मन को मरोड़कर,
बदन कहीं से नहीं काँपता, कुछ भी सकोच नहीं ढाँपता।
वर्तुल उठे हुए उरोजों पर पड़ी थी निगाह
चोंच जैसे जयन्त की, नहीं जैसे कोई चाह देखने की मुझे ओर।
कैसे भरे बिम्ब स्तन, हैं वे कितने कठोर।
मेरा मन काँप उठा, याद आई जानकी।
कहा राम राम को, कैसे दिये हैं दर्शन!

कितना यथार्थ प्रयोग है यह! यूरोप में अन्तश्चेतनवादियों और बिम्बवादियों ने ऐसे चेतन अवचेतन-संघर्ष के प्रयोग आरम्भ किये थे। हिन्दी कविता में सर्वप्रथम निराला जी ने इस क्षेत्र में पहल की। कथा-साहित्य में इलाचन्द्र जोशी आदि अपने उपन्यासों (जैसे सन्यासी' में) और कहानियों में ऐसे प्रयोग करने लगे थे। इस कविता में निराला ने "अपनी दृष्टि की जयन्त की चोंच से तुलना करके कल्पना में चेतना ही नहीं ला दी है, उन्होंने सारे धर्म-काव्य पर एक बड़ा व्यंग्य किया है।' (रामरतन भटनागर कवि निराला)

इस यथार्थपरक रचना में प्रकृति-वर्णन में भी कल्पना और भावोद्दीपन तथा आरोपण-अलंकरण से दूर यथातथ्य रूप धारण कर लिया है। 'वर्षा', 'देवी सरस्वती' आदि में प्रकृति का ऐसा ही यथार्थ वर्णन है। 'देवी सरस्वती' से उदाहरण ऊपर दिया जा चुका है, 'वर्षा' की कुछ पंक्तियाँ देखिए

काले-काले बादल हैं एक ओर गड़गड़ाते,
पुरवाई चलती है, जुही फूलों से भरी,

दूर तक हरियाली ज्वार की, अरहर के,
सन, मूंग, उडद और धानों के हरे खेत,
नदी नाले बहते हुए, नदिया तराई लिए घने कास उगे हुए।

बादल और वर्षा कवि के प्रिय विषय रहे हैं। हर काव्य-संग्रह मे इनका वर्णन हुआ है। ऐसा ही यथातथ्यपूर्ण वर्णन कवि के आगामी गीत-संग्रहो मे हुआ।

'नये पत्ते' की सामाजिक राजनैतिक चेतना बहुत बढी-चढ़ी है। 'थोडों के पेट में बहुतो को आना पडा', 'कुत्ता भौंकने लगा,' 'झींगुर डट कर बोला,' 'छलांग मारता चला गया,' डिप्टी साहब आये,' 'महँगू महँगा रहा', 'खुशखबरी', 'दगा की', 'प्रेमसगीत', 'गम पकौडी', 'राजे ने रखवाली की', 'चरखा चला', 'मास्को डायलाग्स', 'रानी और कानी' आदि कविताओ मे सामाजिक व्यग्य भरे पडे हैं।

'डिप्टी साहब आये,' 'छलाग मारता गया' और 'कुत्ता भौंकने लगा' गाव की जनता का निर्मम शोपण करने वाले अधिकारियो, पुलिस कर्मचारियो, जमीदारों और उनके कारकुनों की काली करतूतो और ग्राम वालो के सघर्ष के सजीव चित्र प्रस्तुत करती हैं। गाव वालों पर जमीदार और उसके सिपाही की लाठी का आतक छाया रहता है। वे जब-तब बेगार, चदा, दूध-घी मुफ्त में लूट ले जाते हैं। सिपाही की लाठी के सामने "आदमी जैसे कमान बन जाता है किसान। सामाजिक और राजनैतिक सहारे कुल छूटकर भग जाते हैं।" जनता विवश है, कुंठित है। लाठी बजाता हुआ जमीदार का सिपाही गाँव मे आता है और कहता है कि डेरे पर थानेदार साहब आये हैं। डिप्टी साहब ने चन्दा लगाया है, एक हफ्ते के अन्दर देना है। इन जमीदारों, सरकारी कारिन्दों की काली करतूतो पर किसान का कुत्ता भौंकता है, मेढक नाले के पानी से उठकर मूत मूत कर छलाग मारता हुआ अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है, पर मनुष्य गरीबों की इस दयनीय दशा पर जरा भी क्षुब्ध नही होता। कैसी विडम्बना है। लडाई का चदा गाँव वालों से वसूल किया जाता है, गाँव वाले सन्न हैं, पर कुत्ता अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है

लोगों के साथ कुत्ता लेतिहरका बैठा था,
चलते सिपाही को देखकर खडा हुआ,
और भौंकने लगा,
करुणा से बंधु खेतिहर को देख देखकर।

अब डिप्टी साहब गाँव में आए हैं। उनके साथ टिड्डी दल अमला, थानेदार, सिपाही सब हैं। जमींदार का आदमी बदलू अहीर के दरवाजे पर आता है और सब से कहता है कि डिप्टी साहब आये हैं। ये अंग्रेज सरकार के हाकिम हैं। इनके घाट पर भेड और भेडिये एक साथ बिन बैर भाव के पानी पीते हैं। इनके साथ और अफसर भी हैं जैसे दरोगा जी। अत "बीस सेर दूध दानों घरों में जल्द भर।"

जनता अब कुछ प्रबुद्ध हो गई है। उस बदमाश की धमकी और अपमान की बात से उत्तेजित होकर बदलू उसकी नाक पर तानकर एक घूसा जड़ ही तो देता है।

मन्नो कुम्हार, कुल्ली तेली, भकुआ चमार, लच्छू नाई और बली कहार सब टूट पड़ते हैं। गांव की इस भड़की हुई परिस्थिति को देखकर "तब तक सिपाही थानेदार के भेजे हुए आये और दाम दे देकर माल ले गये।"

वर्ग-संघर्ष की कैसी सशक्त अभिव्यक्ति है ! इसमे शोषकों के प्रति व्यंग्य घृणा अर्थात् बीभत्स रस की अनुभूति कराता है। बदलू का विद्रोह वीर भावना को जगाता है और गांव वालों की विवश दशा करुणा व्यंजक है।

सन् १६४२ के लगभग देश की राजनीति मे क्रांतिकारियो का प्रभाव बढ़ने लगा था। गांधी जी के आन्दोलन शिथिल पड़ रहे थे और उनकी तथा मध्यवर्गीय कांग्रेसी नेताओं की समझौतावादी नीति से बहुत लोग असंतुष्ट हो गये थे। निराला जी भी गांधीवाद के इस रूप के प्रति अनास्थावान् हो गये थे। कांग्रेसी समझौतावादी नेताओं को वे मिलमालिकों-पूंजीपतियो का साथ देने वाले समझने लगे थे। तीन-चार कविताओं मे निराला जी ने देश के ढोंगी नेताओं पर करारे व्यंग्य किये हैं। चुनाव के सिलसिले में नेहरू जी कुड़रीपुर गांव में भाषण देने आते हैं, उन पर करारा व्यंग्य देखिए 'देश की जनता के नेता बनने वाले ये लीडर लंदन के ग्रेजुएट हैं, विदेशों में शिक्षा पाते हैं, अपनी माता जी का इलाज स्वीट्जरलैंड (विदेश) के हस्पताल मे कराते हैं। कभी साल छः महीने में गांवों की सुध लेने आते हैं। ये मिल मालिकों के साथ हैं। कैसा ढोंग है कि किसानों के साथ भी सहानुभूति जताते हैं, दूसरी ओर मिलों के मुनाफे खाने वालों के अभिन्न मित्र हैं। विलायती राष्ट्र से समझौते के लिए, गले का चढ़ाव बोर्कुआजी का नही गया।'

यद्यपि यहां व्यंग्य जवाहरलाल नेहरू पर व्यक्तिगत व्यंग्य हो गया है, तथापि कवि का लक्ष्य बुर्जुआ मनोवृत्ति के सामान्य नेता हैं, ये कांग्रेसी नेता जमींदारों, राजाओं और मिलमालिकों के विरुद्ध हुए किसानों, मजदूरों से शांत रहने की अपील कर रहे हैं और उनसे समझौता करना चाहते हैं, पर किसान विद्रोह से आशंकित जमींदार किसानों पर गोली चलवा देता है। गांव के झींगुर आदि किसान अब इस पेंच को समझने लगे हैं। महगू भी भांप लेता है। जमींदारों और गांधीवादी नेताओं में जो पट रही है, उसे वह अच्छी तरह समझता है। महगू लुकुआ को साफ बताता है कि गोली कांग्रेसी बने हुए पंडित जी के ही शागिर्द ने चलवाई थी, जो मिल का मालिक है, जमींदार है। 'यहां भी वह जमींदार बाजू से लगा है। कहते हैं, इनके रुपये से ये चलते हैं। कभी-कभी लाखों पर हाथ साफ करते हैं।" महँगू के शब्दों मे निराला ने अपने राजनीतिक दृष्टिकोण को व्यक्त किया है। निराला जी को समझौतावादी कांग्रेसियों से देश की स्वतंत्रता की आशा नहीं थी, देश के असंख्य लोगों की तरह वे भी क्रांतिकारी उग्रवादी दलों और उनके नेताओं पर आशा लगाए बैठे थे। महँगू लुकुआ को बताता है कि एक खबर उड़ती सी सुनी है कि "हमारे अपने हैं यहां बहुत छिपे लोग, मगर चूंकि अभी ढीला पोली है देश देश मे। अखबार व्यापारियों की सम्पत्ति है, राजनीति कहीं से कहीं चल रही है, वे सब जन मौन हैं इन्हें देखते हुए। जब ये

कुछ उठेंगे, और बड़े त्याग के निमित्त कमर बांधेंगे, आयेंगे वे अभी देश के धरातल पर। अभी अखबार उनके नाम नहीं छापते, ऐसा ही पटका है।"

वे छिपे लोग सुभाष बोस या जयप्रकाश नारायण जैसे क्रांतिकारियों के अनुयायी हो सकते हैं या प्रच्छन्न साम्यवादी भी हो सकते हैं। जो हो, स्पष्ट है कि कवि की विचारधारा कांग्रेस के विपरीत हो गई थी। सच तो यह है कि उन्हें जहां भी कमी दिखाई दी, उन्होंने स्पष्टतः निर्भीक वाणी में उसका मजाक उड़ाया। वह किसी दल विशेष के हिमायती न थे। निराला जी ने उस समय के ढोंगी साम्यवादियों पर भी 'मास्को डायलाग्ज' में जबरदस्त चोट की है। श्री गिडवानी ऐसे ही सोशलिस्ट नेता हैं। सुभाष बाबू ने जेल में मंगाकर एक प्रति 'मास्को डायलाग्ज' की गिडवानी साहब का दी थी। उन्हें इसी बात का गर्व है। उस प्रति तथा अपने लिखे एक उपन्यास को लेकर वे मिलने आते हैं और कहते हैं : वक्त नहीं मिलता, बड़े भाई साहब का बंगला बनवा रहा हूँ। समाज में बड़े-बड़े आदमी हैं, एक से हैं एक मूर्ख। उनको फँसाना है, ऐसे कोई साला एक धेला नहीं देने का। उपन्यास लिखा है, जरा देख दीजिए। अगर कहीं छप जाय तो प्रभाव पड़ जाय उल्लू के पट्ठों पर, मनमाना रुपया ले लूँ इन लोगों से।"

ये बँगले बनवाने वाले, पढ लिख न सकने में वक्त न मिलने का बहाना बनाने वाले, बड़े लोगों को गाली देने और उनसे रुपया प्राप्त करने के लिए लेखक बनने का ढोंग रचने वाले कितने खोखले नेता हैं! जिस टूटी फूटी गलत भाषा में उसने उपन्यास लिखा है, उसे पढकर तो हँसी रोके नहीं रुकती। "देखा उपन्यास मैंने, श्री गणेश में मिला—'प्रिय प्रसनेहमयी स्यामा मुझे प्रेम है।"

इन रचनाओं की भाषा बिल्कुल बोलचाल की गद्यवत है। बंध छन्द कोई नहीं। इसी से हमने यहां गद्यवत ही उद्धृत किया है। एक-एक पद अलग-अलग बिल्कुल सरल है। तद्भव और देशी शब्द हैं। कहीं कहीं उर्दू के प्रचलित शब्द भी हैं।

निराला के ये व्यंग्य कहीं हँसी उत्पन्न करते हैं और पाठक हँसे बिना नहीं रह सकता, किन्तु कहीं-कहीं ये केवल हास्य उत्पन्न कर नहीं रह जाते, उससे अधिक गंभीर प्रभाव आलम्बन के प्रति घृणा उत्पन्न कर डालते हैं। 'खुशखबरी' में मृदुल हास्य की छटा है, व्यंग्य मृदुल हँसी उत्पन्न करता है। देश के लोग संगीत-नृत्य, सिनेमा-तारक-तारिकाओं के पीछे इतने दीवाने हुए हैं कि—

> 'बंद पासपोर्ट की, नहीं तो कभी देश आधा खाली हो गया होता, देविका रानी और उदयशंकर के पीछे लगे लोग चले गये होते।"

'गर्म पकौड़ी' में रसना-लोलुपता पर हास्य तो है ही, साथ ही निराला जी ने जात-पात, छुआ छूत पर भी व्यंग्य किया है। 'रानी और कानी' में न हास्य उभर सका है, न व्यंग्य! न तो कानी-कुरूप लड़की के प्रति सहानुभूति और संवेदना ही जग पाई है, उसके कुरूप पर हास्य तो क्या उत्पन्न होता, न ही उसकी समस्या विशेष संवेदनापूर्ण बन पाई है। 'मंजोहरा' में हास्य में भी बचकानापन है। इसमें गांव के

तालाब में स्नान करने वाली, नैहर में आई बुआ का वर्णन है जो सजोहरा कीड़े की रगड़ से सारे शरीर में खुजलाहट हो जाने के कारण तालाब से निकल नंगी भागती है। इस रचना में ग्राम-प्रांत का यथार्थ चित्रण अच्छा है। हाईकोर्ट के वकीलों का परिहास भी काले-काले बादलों के रूपक के सहारे अच्छा बन पड़ा है।

'नये पत्ते' की कुछ कविताओं में कवि की ऐतिहासिक चेतना प्रकट हुई है। इनमें इतिहास के संदर्भों में व्यंग्य पाये जाते हैं। 'चर्खा चला', 'दगा की' तथा 'राजा ने रखवाली की' आदि ऐसी ही कविताएँ हैं। 'चर्खा चला' में कवि ने वेदों से लेकर वर्तमान काल तक के समस्त विकृत विकास पर व्यंग्य के छींटे कसे हैं। पाणिनि के भाषा-बंधन (व्याकरण) पर व्यंग्य करता हुआ कवि कहता है, "सुनो जबाँ बपने लगी। वैदिक से सवर दी भाषा संस्कृत हुई। नियम बने, शुद्ध रूप लाये गए, अथवा जंगली सभ्य हुए वेशवास से।" इसी प्रकार आधुनिक सभ्यता, वर्णाश्रम और राम-राज्य आदि पर छींटाकशी हुई है। 'दगा की' में कवि ने सारे धर्म, दर्शन के नाना-विध विकास पर व्यंग्य किया है और कहा है कि सब प्रकार के दर्शनों (षड्दर्शन आदि), साधना (हठयोग आदि), मत-मतांतरों और उनके प्रवर्तक नेताओं ने जनता को भ्रमजाल में ही डाला है, बड़े-बड़े ऋषि आये, मुनि आये, कवि आये, तरह-तरह की वाणी जनता को दे गए। किसी ने कहा कि एक तीन हैं। किसी ने कहा कि तीन-तीन हैं। किसी ने नसें टोईं, किसी ने कमल देखे। किसी ने विहार किया, किसी ने अँगूठे चूमे। लोगों ने कहा कि धन्य हो गए।" धर्म-दर्शन और साधना के इन विविध मार्गों ने जनसाधारण से दगा ही की।

'राजा ने रखवाली की' में निराला जी ने सामंतीय पद्धति और उसके आश्रय में पलने वाले धर्म, साहित्य, कवि, इतिहासकार, कलाकार सबको अपनी कलम की नोक पर रख दिया है। आँख खुल जाने पर अब जनता इस ऐतिहासिक तथ्य को पा गई है कि राजा लोग जो बड़े-बड़े शक्तिशाली किले बनवाते हैं, फौज रखते हैं, चाप-लूस सामंतों को दरबारों में जगह देते हैं, ब्राह्मणों भाटों, कवियों को आश्रय देते हैं, इतिहासकारों से इतिहास लिखवाते हैं, कलाकारों से नाटक रचाते हैं, उनकी रानियाँ लोक-नारियोंका आदर्श बनती हैं—यह सब राजा लोग अपनी ही—केवल अपनी रख-वाली के लिए ही करते रहे हैं, प्रजा के लिए कुछ नहीं करते।

'मोदो के पेट में बहुतों को आना पड़ा' में कवि ने विदेशी सरकार, उसकी लूट-खसूट, भारत को विपन्न निर्धन बना देने की खिन्नता, पाश्चात्य सभ्यता की ऊपरी टीमटाम, देश की अधोगति पर दुख आदि भावों का सुन्दर चित्रण किया है। कवि कहता है कि अंग्रेजी शासन और वर्तमान वैज्ञानिक प्रगति ने बिजली, तार, भाप आदि साधन जुटा दिये हैं। "रामराज के पहले के दिन आये। बानिज के राज ने लक्ष्मी को हर लिया। टापू में से चलकर रखा और कैद किया। एक का डंका बजा, बहुतों की आँख झपी। लहलही धरती पर रेगिस्तान जैसा तपा। गोल बाँधे, मेरे

डाले, अपना मतलब गाँठा, फिर आँखें फेर ली। जाल भी ऐसा चला कि थोडो के पेट मे बहुतों को आना पडा।"

इस प्रकार 'नये पत्ते' निराला जी की काव्य चेतना के विकास की एक महत्व-पूर्ण कडी है। कवि युगपुरुष बनकर समाज, जीवन, धर्म आदि सभी का लेखाजोख करता, सभी विकृतियो और विषमताओ पर हँसता, प्रहार करता,अपनी विद्रोही प्रकृति का परिचय देता हुआ काव्य के नये क्षितिजो को खोज रहा है। 'नये पत्ते' मे प्रयोग, प्रगति, व्यग्य-हास्य, भाषा की सरलता आदि सभी विशेषताएँ उसे निराला की महत्व-पूर्ण कृति सिद्ध करती हैं।

: ६ :

अर्चना-आराधना-गीतगुंज

१९४६ के बाद कवि की प्रमुख प्रवृत्ति में फिर परिवर्तन आया। १९४७ से १९६१ तक का समय निराला की काव्य साधना का तीसरा और अंतिम सोपान है। निराला ने यथार्थ की विभीषिका को भी त्याग दिया और समस्त जीवन अनुभव और संघर्षों का पर्यवसान अध्यात्म भावना, प्रशान्त प्रवृत्ति और आत्मनिवेदनकारी भक्ति-भावना में हो गया। इस अंतिम १४-१५ वर्षों के समय में निराला ने प्रकृति ऋतु-वर्णन करुणा, शान्त और भक्ति रस से पूर्ण गीतों की ही मुख्य रूप से सृष्टि की, जो उनके चार गीत संग्रहों में प्रकाशित हो चुके हैं।

१ अर्चना— (प्रकाशन, १९५०) में नई शैली के ११२ आत्मनिवेदनात्मक भावगीत संकलित हैं।

२ 'आराधना' (प्रकाशन् १९५३) में अर्चना की ही भक्तिपरक गीत शैली का विस्तार हुआ। इसमें निराला के ९६ भावपूर्ण गीत हैं।

३ 'गीतगुंज' के प्रथम संस्करण (१९५४) में केवल २५ गीत संकलित थे, पर १९५९ के द्वितीय संस्करण में ३५ गीत प्रकाशित हुए और स अन्य गीत रचनाएं परिशिष्ट रूप में प्रस्तुत की गई।

४ 'सान्ध्यकाकली' अंतिम गीत-संग्रह है, जो अभी हाल ही में प्रकाशित हुआ है।

इन गीतों में मुख्य स्वर विनय भक्ति का है। कवि की आर्तवाणी अपने आराध्य से शरण प्रदान करने की बार बार याचना करती है। कवि ने अपने भग्न तन, रुग्ण मन, असहाय दशा और जीवन की विषण्णता का उल्लेख करते हुए अशरण-शरण राम या मातृ शक्ति अथवा 'हरि' से पार तारने की प्रार्थनाएँ की हैं। हमने निराला के इन प्रार्थनापरक गीतों का सोदाहरण विवेचन आगे निराला की भक्ति भावना पर प्रकाश डालते हुए तृतीय विमर्श में किया है। कई गीतों में निराला ने युग की विभीषिका का वर्णन भी किया है। 'शिशिर की शर्वरी हिंस्र पशुओं से भरी', 'घनतम से आवृत्त धरणी है' (अर्चना), 'मानव जहां बैल घोड़ा है' (आराधना) आदि ऐसे ही गीत हैं। कवि ने ऐसे गीतों में इस भौतिक युग की आर्थिक विषमता, भौतिक अशांति, नैराश्य, पराजय आदि का वर्णन किया है। कुल मिलाकर 'अर्चना' और 'आराधना' इस युग के तुलसीदास की विनय-पत्रिका हैं। 'अर्चना' के एक गीत में

निराला ने 'पतित पावनी गंगे' का भी स्तवन किया है।

पर कवि का यह गान पराजय और थकान का वृद्ध-गान नहीं है। यह तो विश्रांति का एक स्थल है जहां रुककर कवि ने युग और जीवन को फटकारा कम है, उसके लिए अपने प्रभु से मंगलकामना की है। राष्ट्रकल्याण और नव जीवन-जागरण को भी यहां कवि नहीं भूला है। 'आराधना' के 'नाचो हे रुद्रताल' गीत में कवि ने जीर्ण-शीर्ण पुरातन के क्षय और नूतन के अभ्युदय की कामना की है।

झरे जीव जीर्ण शीर्ण
उद्भव हो नव प्रकीर्ण —आराधना पृ० ४५

प्रकृति तथा वर्षा-वसंत-बादल के यथार्थ चित्र भी इन गीतों में मिलते हैं। यहाँ प्रकृति में कल्पना की रंगीनी नहीं भरी गई, अपितु उसके यथातथ्य सौन्दर्य-उल्लास का वर्णन हुआ है। कुछ पंक्तियां उद्धृत की जाती हैं :—

वन-उपवन खिल आईं कलियां,
रवि छवि-दर्शन की आवलियां।
मारुत ने श्वेत अधर चूमे,
मद से लद कर भौंरे झूमे,··· आदि। —आराधना ६३

'अर्चना' के 'फूटे हैं आमों में बौर', 'आराधना' के 'खेत जोत कर घर आये हैं' जैसे गीतों में ग्राम-प्रकृति और ग्राम जीवन की सरल सहज अभिव्यक्ति हुई है। कुछ गीतों में शृंगार का सहज-सादा लोकगीतों का रूप भी मिलता है। 'आराधना' के अंतिम गीत में बारहमासा वर्णन की परम्परा का चौमासा वर्णन है। कवि ने विरहिणी की व्यथा का आलम्बन हरि को बनाकर मध्ययुग की याद ताजा कर दी है। दो-चार गीतों में सूरदास की गोपियों का-सा उपालंभ व्यंजित हुआ है। 'अर्चना' का 'हरिण-नयन हरि ने छीने हैं' ऐसा ही गीत है।

'अर्चना' और 'आराधना' में निराला जी ने 'सहज-सहज कर दो' और 'सीधी राह मुझे चलने दो' की प्रार्थनाएं की हैं। यहां न केवल उनका मन सीधा और सरल दिखाई देता है, उनकी वाणी में भी गजब की सहजता है, सारल्य है। भाषा में सादगी भाव में सरलता, ध्वनि और वातावरण में साधारणता सब कुछ सहज है। छोटी-छोटी टेकों और लघु-लघु बंधों में बंधे उनके ये गीत कलात्मक गीतों की अपेक्षा लोकगीतों की कोटि में अधिक आते हैं। 'गीतिका' के गीतों में शास्त्रीय संगीत और कला-सज्जा है, यहां लोकगीतों का माधुर्य और निरलंकृत प्रवाह है। एक ही दिन में कई-कई गीतों का प्रणयन होने से उनमें गेयता एकरूप है।

'गीत गुंज' के गीत भी इसी सरलता और सहजता से ओतप्रोत हैं। वही लोक धुनें, वही नैसर्गिकता। 'जिधर देखिए श्याम विराजे' जैसे एक-दो गीतों में भक्ति-भाव भी प्रकट हुआ है पर यह गीत-संग्रह और उनका अंतिम 'साध्यकाकली' संग्रह 'आराधना' और 'अर्चना' जैसे प्रार्थनापरक भक्तिगीतों के संग्रह नहीं हैं। ग्राम-प्रकृति के खुले निर्मल चित्र भी 'गीतगुंज' में पाये जाते हैं। वर्षा और बादल के कवि ने यहां

भी बादल का राग गाया है।

निराला जी ने 'आराधना', 'अर्चना', 'गीतगुंज' के कुछ गीतों में चलती हुई भजन की धुनें, बहरें, दादरा, ठुमरी आदि बन्दिशें भी अपनाई हैं, जैसे 'अर्चना' का यह गीत—

ये कह जो गये कल आने को,
सखि, बीत गये कितने कल्पों।

'बजरंगबली मेरी नाव चली' की धुन पर है।

ये सब गीत कवि के दारागंज (प्रयाग) में एकान्त निवास के हैं। तीर्थराज के धार्मिक वातावरण, भजन-कीर्तन, त्रिवेणी-संगम के पुनीत स्थल का प्रभाव यहाँ सम्भव था। इसी से इनमें धार्मिकता और सात्विकता तथा सहज गेयता पाई जाती है।

: १० :

सांध्यकाकली

'साध्यकाकली' (जनवरी १९६९ मे प्रकाशित) कवि की अन्तिम कविताओ का लघु सग्रह है। इसमे कुल ६८ कविताए हैं जो अगस्त १९५४ से अक्तूबर १९६१ (अत समय) के बीच रची गई थी। इनमे चार-पाँच कविताए कवि की साध्यकाकली का करुणस्वर है। इन कविताओ से लगता है कि कवि ने 'मृत्यु की नीली रेखा' का आभास पा लिया था। १४ अगस्त ५८ को लिखी और २ सितम्बर ५८ को सशोधित की गई एक कविता की पक्तियाँ देखिए, कितनी व्यथा से भरी हैं :—

आग सारी फुक चुकी है,
रागिनी वह रुक चुकी है,
स्मरण मे है आज जीवन,
मृत्यु की है रेख नीली। . —साध्यकाकली पृ० ८२

जीवन की इस सध्यावेला मे पूर्व-स्मृतियाँ ही जीवन का सम्बल होती है। कवि ने स्पष्ट कहा है कि उसके रूप-गुण की जय सिद्धि सब उसने अनुभव करली। अब उस यौवन मे खिले फूल की पखुडियाँ ढीली हो चली हैं। वे आँखें जो तेजोद्दप्त थी, उन पर सिकुड़न पड चुकी है। अत समय से कुछ दिन पूर्व लिखी कविता 'पत्रोत्कठित जीवन का विष बुझा हुआ है' मे कवि ने अपने सम्वरण-समय का सिंहावलोकन और भी विस्तार से किया है। अपनी जीवन-लीला के सम्वरण-समय को कवि फूलों के झरने के समान बताता है। वे फूल फल बनकर झरेंगे या अफल फूल रूप मे ही गिरेंगे; यह सवरण-समय सिद्ध योगियो के सम्वरण-समय के समान होगा या साधारण मनुष्यो के समान—इसे कवि उसी प्रकार देख रहा था, जैसे शरो की सेज पर पड़े भीष्म पितामह अपने अत-काल को ताक रहे थे। पर इस अत समय भी कवि की अपराजित आत्मा निराशामग्न नही हुई। आशा का प्रदीप उसके हृदय मे जल रहा था, अज्ञात अँधियारा पथ ज्ञान की रश्मि से मुक्त हुआ था। ढाल सी तनी देह की खाल ढीली पड गई थी, पर मृत्यु के बाद भी जीवन के नये प्रभात—नये फेरे का उन्हें विश्वास था :—

पत्नीत्कंठित जीवन का विष बुझा हुआ है,
आशा का प्रदीप जलता है हृदय-कुंज में,
अंधकार पथ एक रश्मि से सुझा हुआ है
दिङ्‌ निर्णय ध्रुव से जैसे नक्षत्र-पुंज में।
लीला का सम्वरण समय फूलों का जैसे
फलों फले या झरे अफल, पातों के ऊपर
सिद्धयोगियों जैसे या साधारण मानव
ताक रहा है भीष्म शरों की कठिन सेज पर।
× × ×
भूल चुकी है लाल डाल की तरह तनी थी।
पुन सवेरा, एक और फेरा हो जी का। —सां० का० पृ० ८७

इसी प्रकार दो-तीन अन्य कविताओं में भी निराला जी ने अपनी सन्ध्या बेला की आत्मपरक अभिव्यक्ति की है। इस संग्रह की ये चार पाँच कविताएं भाव, कला आदि सभी दृष्टि से श्रेष्ठ रचनाएं कही जा सकती है।

निराला जी के इस अंतिम कविता संग्रह की आधी से अधिक कविताओं में प्रकृति या ऋतु वर्णन है। एक विशेष बात लक्ष्य करने की यह है कि कवि ने अधिकतर कविताएं सावन की बरसाती ऋतु में रची हैं और वे मुख्यतः वर्षा ऋतु से ही संबंधित हैं। लगता है जैसे अपनी असंतुलित अवस्था में कवि वर्षा के काले काले बादलों को देखकर झूम उठता होगा। इन कविताओंमें कवि के हृदय की उमंग व उल्लास भी हरियाली बना प्रतीत होता है। वर्षा का मानवीकरण प्रथम कविता की निम्न पंक्तियों में देखिए—

प्राण, तुम पावन सावन-गात,
जलज जीवन-यौवन अवदात।
मृदु बूँदों चितवन, की लड़ियां,
केश मेघ, मुख, पलक पंखड़ियां,

दूसरी, तीसरी और चौथी आदि कई कविताओं में वर्षा का यथातथ्य चित्र उपस्थित किया गया है

श्याम गगन नव घन घहराये।
कानन गिरि-वन प्रानन छाये।
सबे बाग बागों के परसे,
धानों के खेतों पर बरसे,
युवती निकली गागर कर ले,
पुरवो प्रिय को गले लगायें।
कमल ताल के दल दल छाये
नाले उमड़ उमड़ कर धाये,

नद जल के मद व्याकुल धाये,
तट के नीम हिंडोले भाये।

आगे कवि वर्षा के बादलों से निवेदन-प्रार्थना करने लगता है। वह उन्हें बरसने और जन जन के प्राणों को सरसाने का आवाहन करता है: आँगन-आँगन स्नेह का स्पदन छा जाय, हरियाली के झूले झूलें और ग्राम-वधुएँ अपने दुख भुला कर हर्ष से भर जाएँ :

आओ, आओ वारिद वन्दन!
बरसो सुख बरसो आनन्दन!
जन जन के प्राणों में सरसो!

× × × ×

हरियाली के झूले झूलें,
ग्रामवधू सुख से दुख भूलें, —सा० का० पृ० २२

और वाकई सरस घटा घट-घट को सरसा देती है, जीवन पर हरियाली छा जाती है, दिशाएँ झूम उठती हैं, मृदंग-वादन और बूँदों की रिमझिम-रिमझिम से संगीतमय वातावरण उपस्थित हो जाता है। आनन्द की प्राप्ति ही कवि का उद्देश्य नहीं है, वह बादल को शक्ति का अग्रदूत और जीवन के विकास का सम्बल बनने की भी पुकार करता है, वह चाहता है कि विकृत भाव नष्ट हो जायें और सत्यधर्म निष्ठा की प्रतिष्ठा हो :

बरसो मेरे आँगन बादल,

× × × ×

नई शक्ति अनुरक्ति जगा दो,
विकृत भाव की भक्ति भगा दो,
उत्पादन के मार्ग लगा दो,
साहित्यिक वैज्ञानिक के बल। (पृ० ४८)

दो-तीन गीतों में शरद् का साधारण वर्णन हुआ है। यह भी प्रकृति का यथातथ्य वर्णन ही कहा जा सकता है :

शुभ्र शरत् आई अम्बर पर ,
पड़ी रास कमलों की सर-सर।
हरसिंगार के फूल प्रात का
बिछे रश्मि से सजो-गात, ओ!
क्षीर्ण हो चलीं नदियाँ, झरने,
बदले वेश जनों ने घर घर। (पृ० ३३)

चार-पाँच कविताओं के बारे में क्या कहा जाय! ये चिर प्रयोगशील कवि के कोई नये प्रयोग हैं या उसकी विक्षिप्तावस्था का बौड़मपन है, अथवा इनसे वे नई कविता और अकवितावादियों को कोई नई राह दिखा रहे हैं—कुछ कहा नहीं

जा सकता ।

३१वीं कविता मे अक्षरभग और अक्षर विपर्यय भ्रम के सिवा कोई अर्थवत्ता प्रतीत नही होती । कुछ पक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं

ताक कमसिन वारि,
ताक कम सिनवारि,
ताक कम सिन वारि,
सिनवारि सिनवारि।
× ×
इरावनि समक कात्,
इरावनि सम ककात्,
इराव निसम ककात,
सम ककात् सिनवारि । (पृ० ४७)

इसी प्रकार का अनर्गल आलाप या प्रलाप ३६वीं कविता मे दिखाई देता है । कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि अपनी मानसिक असतुलन की अवस्था मे कभी-कभी निराला जी के मन मे तुकबाजी की तरग उठती थी जिसका परिणाम ही ये कुछ तुकबन्दियाँ हैं । ऐसी कुछ कविताएँ अस्पष्ट सी हो हैं । ६०वी कविता अधूरी ही रह गई है । उसकी आरभिक दो पक्तियाँ ही लिखी मिली हैं । सभवत निरालाजी ने बाद मे पूरी करने की सोची हो, पर कर न पाये हो । इन दो पक्तियो से स्पष्ट प्रतीत होता है कि यह कविता भी कवि की आत्मपरक रचना होती, पक्तियाँ ये हैं

ध्वनि मे उन्मन उन्मन बाजे,
अपराजित कण्ठ आज साजे । (पृ० ७६)

यह एक सयोग ही समझना चाहिये कि सरस्वती के वरद पुत्र निराला जी ने अपनी अतिम रचना मे वीणापाणि का सौन्दर्य चित्र प्रस्तुत किया है

हाथ वीणा, समासीना,
विशद वादन रत प्रवीणा ।
घिरे बादल गगन मण्डल,
सरल तारक नयन अविचल,
तार के झकृत सुकोमल
कराहत कर का सुखीणा । (पृ० ८१)

इस अतिम सग्रह से कवि के वाव्य, जोवन और उसकी विचारधारा पर निम्न महत्त्वपूर्ण प्रकाश पडता है

१ इन कविताओ से प्रमाणित होता है कि कवि अपने अतिम सासों तक साहित्य सृजन और कला-साधना करता रहा था ।

२ यह एक आश्चर्य की ही बात है कि रुग्णावस्था और मानसिक असतुलन की स्थिति मे भी निराला जी स्वस्थ और सतुलित कविता करते रहे । यह तथ्य

हमारी इस धारणा की पुष्टि करता है कि कविता रचते समय निराला जी मानसिक दृष्टि से स्वस्थ हो जाते और सात्त्विक वृत्ति ग्रहण कर लेते थे। दो-चार अटपटी रचनाओं के सिवा इन अंतिम कविताओं में कवि के सरल, स्पष्ट और उदात्त भाव प्रकट हुए हैं। इनमें कवि की जीवन के प्रति आस्था, आशा और उदात्त भावना स्पष्ट लक्षित होती है। मृत्यु की नीली रेखा का आभास हो जाने पर भी कवि अंत समय तक आशावादी बना रहा।

३. इस संग्रह की कविताओं में कवि की प्रतिनिधि भाषा-शैली का प्रयोग हुआ है। इसमें 'परिमल, 'गीतिका' आदि की सरल तत्समयुक्त शब्दावली और 'गीतिका'-जैसी ही तुकांतता की प्रवृत्ति पाई जाती है। इससे प्रमाणित होता है कि उर्दू-अंग्रेजी की मिश्रित शब्दावली, उर्दू छन्द और गजलों के प्रयोग संस्कृतमय समास-बहुल शैली, स्वच्छन्द छन्द आदि विभिन्न प्रकार के प्रयोगों में बाद कवि अपनी मूल भाषा-शैली और प्रतिनिधि शास्त्रीय संगीत-शैली को ही अन्त तक अपनाये रहा। यद्यपि इस संग्रह की एक कविता स्वच्छन्द छन्द में भी है, पर मुख्यतः कवि की प्रवृत्ति शास्त्रीय शैली की ओर रही है।

४ सवरण-समय की अनुभूति से सम्बंधित 'पत्रोत्कंठित जीवन का विष बुझा हुआ है' कविता इस संग्रह की सर्वश्रेष्ठ रचना है। यह तथा सम्वरण समय की अनुभूति से सम्बन्धित तीन चार अन्य कविताओं और प्रकृति-चित्रण से सम्बन्धित कुछ कविताओं को छोड़कर अधिकांश कविताओं में कवित्व-शक्ति साधारण कोटि की है।

: ११ :

निराला की इतर रचनाएँ

रामायण-अनुवाद—उपर्युक्त काव्य-रचनाओं के अतिरिक्त निराला ने तुलसी-कृत 'रामचरितमानस' का हिन्दी खड़ी बोली में रूपान्तर करने की भी ठानी थी। उन्होंने 'मानस' के प्रारम्भिक १२० दोहों,-चौपाइयों का रूपान्तरण भी किया था। पर यह कार्य अधूरा ही रह गया। इस कार्य के सम्पादन में हिन्दी भाषा का प्रचार ही मुख्य प्रेरणा या कारण था। इतर प्रदेशों के भारतीयों को अवधी भाषा कठिन ही लगती है, पर खड़ी बोली आज सर्वव्यापी हो गई है। अतः वर्तमानकालीन पाठकों के लिए खड़ी बोली में तुलसी रामायण प्रस्तुत करना हिन्दी के प्रचार का ही कार्य होता। साथ ही इससे निराला की तुलसी एवं राम के प्रति श्रद्धा का भी परिचय मिलता है।

गद्य-रचनायें—निराला की गद्य रचनाओं का यहाँ हम उल्लेख मात्र करेंगे।

उपन्यास—१. अप्सरा, २ अलका १९३३ में प्रकाशित, ३ प्रभावती, ४. निरुपमा, ५ चोटी की पकड़, ६ काले कारनामे, ७ चमेली (अपूर्ण)।

'अलका' (१९३३) का महँगू किसानों का राज चाहता है। निराला ने इसमें करमुक्त भूस्वामित्व का सिद्धांत प्रस्तुत किया है। 'अप्सरा' में वेश्या-समस्या तथा उसके समाधान का प्रयत्न है। 'चोटी की पकड़' में जमींदारों और ताल्लुकेदारों के विलासी और अनैतिक जीवन की परतें खोली गई हैं। १९३६ में ही उनका सर्वोत्तम उपन्यास 'निरुपमा' प्रकाशित हुआ।

कहानियाँ—निराला ने तीसरे दशक से कहानियाँ लिखना आरम्भ किया। उनकी कुल लगभग २० कहानियाँ हैं। आरम्भ में 'मतवाला' में लिखीं। चार कहानी-संग्रह प्रकाशित हुए—सर्वप्रथम ८ कहानियाँ लिली (१९३३ ई०) नाम से प्रकाशित हुईं। सखी (१९३५ ई०), सुकुल की बीवी (१९४१ ई०) और चतुरी चमार (१९४५ ई०)। कहानियाँ तो मूलतः सामाजिक। अंतिम कहानी-संग्रह 'देवी' १९४८ में प्रकाशित हुआ।

इनमें धर्म, कला, विधवा-विवाह, अछूतोद्धार, वेश्या समस्या, उच्छृंखल प्रेम आदि समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है। कहानी कला का उत्कर्ष निराला नहीं कर सके। प्रवृत्ति यथार्थवादी। व्यंग्य और हास्य का वैसा ही पुट जो उनके उपन्यासों में भी। चतुरी चमार सर्वोत्तम कहानी है। दो रेखाचित्र भी। कुछ लोग कुल्ली भाट

(प्रकाशन १९३९) और बिल्लेसुर बकरिहा को हास्यव्यंग्य प्रधान लम्बी कहानियाँ ही मानते हैं , पर वास्तव में ये दोनों रेखाचित्र हैं। 'कुल्ली भाट' लेखक के निजी जीवन पर भी प्रकाश डालता है। इसमें लेखक ने अपने परिचित मित्र प० पथवारीदीन भट्ट की जीवन-परिस्थितियों का हास्यपूर्ण ढंग से वर्णन किया है। 'बिल्लेसुर बकरिहा' प्रबंध के ग्रामीण-जीवन की झाँकी प्रस्तुत करता है। ग्राम्य जीवन में व्याप्त अशिक्षा, अंधविश्वास, ढोंग ढकोसले, गले मढ़े रीतिरिवाज, गरीबी, वासना आदि का यथार्थवादी वर्णन है। विधवाओं और निराश्रितों की करुण दशा का मार्मिक चित्रण हुआ है। 'बिल्लेसुर बकरिहा' में मार्मिक और 'कुल्ली भाट' में अपेक्षाकृत अधिक वेधक व्यंग्यों का सुन्दर प्रयोग किया गया है।

आलोचनायें दो रूपों में मिलती हैं—१ पुस्तक रूप में कवियों पर लिखी गई आलोचना और २ निबन्ध रूप में। पहली प्रकार की पुस्तकें दो हैं—१ रवीन्द्र कविता कानन (१९२८) और २ 'पंत और पल्लव'। निराला बंगला के भी मर्मज्ञ विद्वान् थे। यही कारण है कि 'रवीन्द्र कविता कानन' में उन्होंने विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर के काव्य का सूक्ष्म अध्ययन प्रस्तुत किया है। 'पंत और पल्लव' में 'पल्लव' संग्रह की कविताओं के आधार पर पंत की काव्य प्रतिभा की आलोचना की गई है : कुछ बातों में निराला ने पंत से अप्रसन्नता प्रकट की है तथापि विवेचन की मौलिकता उनकी इस रचना में स्पष्ट लक्षित होती है। फुटकर आलोचनात्मक निबंधों में भी निराला की मौलिकता, सूक्ष्म दृष्टि, अध्ययन और चिंतन की व्यापकता और गांभीर्य तथा निर्भीकता स्पष्ट मिलती है।

निराला के निबंधों के तीन संग्रह हैं—१ चाबुक २ प्रबन्ध पद्म, (१९३४) और ३ प्रबंध प्रतिमा (१९४० ई०)। 'चाबुक' संग्रह में ८ निबन्ध संकलित हैं। विषय साहित्य है। एक निबन्ध वर्णाश्रम धर्म पर भी है। 'प्रबंध पद्म' में भी विचारात्मक साहित्यिक निबन्ध हैं। 'प्रबंध प्रतिमा' निराला के सर्वोत्तम निबंधों का संग्रह है। तीखा मजाक और चुभते व्यंग्य इस संग्रह के निबंधों में खूब पाये जाते हैं। 'नेहरू जी से दो बातें', 'प्रान्तीय साहित्य सम्मेलन फैजाबाद', 'मेरे गीत और कला' आदि निबंधों में हिन्दी भाषा और साहित्य की उन्नति का हेतु है।

इसके अतिरिक्त निराला ने ध्रुव, भीष्म और राणा प्रताप की बालोपयोगी जीवनियाँ लिखीं। परिव्राजक श्री रामकृष्ण कथामृत (४ भाग), विवेकानन्द के व्याख्यान और राजयोग आदि रचनाएँ हिन्दी गद्य में प्रस्तुत कीं। बंकिम बाबू के बंगला उपन्यासों (आनन्दमठ, कपाल कुण्डला, दुर्गेशनन्दिनी, चौधरानी, राजसिंह आदि) का हिन्दी में अनुवाद किया। हिन्दी-बंगला शिक्षा, रस-अलंकार, वात्स्यायन काम-सूत्र आदि कुछ छात्रोपयोगी रचनाएँ भी कीं। कहा जाता है कि उन्होंने 'समाज' और 'शकुन्तला' नामक दो नाटक भी रचे थे। 'समन्वय' और 'मतवाला' आदि के सम्पादन

की बात उनके जीवन-प्रसंग में बताई जा चुकी है। इस प्रकार निराला का गद्य साहित्य भी अपना विशेष महत्त्व रखता है। उनका यह यथार्थवादी कथा निबंध साहित्य उनकी कविता की तरह जीवन-संघर्षों का परिचायक है। इसमें भी निराला का तेजस्वी क्रांतिकारी व्यक्तित्व स्पष्ट प्रकट हुआ है।



तृतीय विमर्श

निराला-काव्य की शक्ति : उदात्त भाव-रसानुभूति

- निराला-काव्य में करुणत्व
  उदात्त करुणा : उदात्त घृणा
- निराला का व्यंग्य-काव्य
  उदात्त हास्य : उदात्त घृणा
- नारी-सौन्दर्य और प्रेम (शृंगार रस)
- निराला के प्रार्थना-गीत (भगवद्भक्ति)
- निराला की राष्ट्रीय भावना
  देशप्रेम : देशभक्ति
- निराला का प्रकृति-चित्रण
  प्रकृति प्रेम

निराला काव्य की शक्ति : उदात्त रस-भावानुभूति

मूल्यांकन की कसौटी

कुछ विचारक और नववादी लेखक आजकल आधुनिक साहित्य की परख में रसों और रससिद्धांत को अनावश्यक बताने लगे हैं। उनका ख्याल है कि "काव्य के नौ रसों से नये साहित्य की परख नहीं हो सकती। जीवन की धाराएँ एक दूसरे से इतनी मिली-जुली हैं कि नौ रसों की मेड़ बांधकर उन्हें अपने मन के मुताबिक नहीं बहाया जा सकता। साहित्यकार सामाजिक उत्तरदायित्व को भूलकर अगर आत्मा की अखण्डता और रस के स्वयंप्रकाश अलौकिक ब्रह्मानन्द सहोदर होने की बातें दोहराता रहेगा, तो वर्गहीन समाज के निर्माण में सहायक न हो सकेगा।' कुछ इस प्रकार के आक्षेप प्रगतिवादी आलोचकों ने रस सिद्धांत पर किये हैं और इसी प्रकार के नई कविता और नवलेखन के पक्षपाती कुछ लोगों का कहना है कि नव-लेखन का भाव-बोध रस के पुराने प्रतिमान से सम्भव नहीं।

रस और रस-सिद्धांत के विरोध के कई कारण हैं। एक तो यह कि काव्य रस के उदात्त रूप स्वरूप का समुचित अवलोकन ये विचारक नहीं कर पाये हैं। हमारे प्राचीन आचार्यों में भी रसों सम्बन्धी अनेक भ्रान्तियां पाई जाती हैं। प्राचीन आचार्य भी काव्य रस में उदात्त तत्त्व की प्रतिष्ठा भली प्रकार नहीं कर सके थे। उनके लिए सम्भवत शृंगाररस की कामुकतापूर्ण उक्ति भी रस थी और त्याग, साहस, कर्त्तव्य आदि उदात्त भावनाओं से परिपूर्ण प्रेम का चित्रण भी शृंगार रस का उदाहरण था। इन दोनों में श्रेष्ठता की दृष्टि से परख का विचार उनके सम्मुख था ही नहीं। यही कारण है कि रसानुभूति की श्रेष्ठता की कसौटी वे हमें प्रदान नहीं कर सके।

रस-सिद्धांत पर सन्देह का दूसरा बड़ा कारण यह है कि आज तक हम अपनी रस दृष्टि केवल इस बात में ही सीमित किये हुए हैं कि अमुक रचना में कौन-कौन-सा रस है, किस रस की प्रधानता है। हमारी दृष्टि केवल रस गिनाने तक ही सीमित रहती है। हम रसों और भावों की जीवनोपयोगिता तथा उनके आधार पर कवि या लेखक की सम्पूर्ण चेतना और रचना-प्रक्रिया का विश्लेषण नहीं करते, और इस प्रकार रस सिद्धान्त एक सीमित समीक्षा सिद्धान्त प्रतीत होता है। ऐसा लगता है कि उसका समाज और जीवन की प्रगति से विशेष सम्बन्ध नहीं, कि वह एक मानंदानुभूति-मात्र है।

हमने रस सिद्धान्त-सम्बन्धी समस्त विरोधों का खण्डन करते हुए उदात्त रस

को काव्य-मूल्यांकन की कसौटी सिद्ध किया है।[1] रस-भाव तत्वों में जीवन की सम्पूर्ण उदात्तता को समाहित करने की शक्ति है। जीवन के वैषम्य पर क्षुब्ध, करुणार्द्र या घृणा से प्लावित हुए बिना अर्थात् उदात्त भावानुभूति या रसानुभूति के बिना भला कोई वर्गहीन या वैषम्यहीन समाज के निर्माण में कैसे प्रवृत्त हो सकता है? रस का निषेध करना भ्रांति ही है।

हमने कोरे रस-भाव की अपेक्षा उदात्त रस-भाव को ही काव्य मूल्यांकन का मानदण्ड घोषित किया है। यद्यपि हर रस-दशा हृदय की सात्विक वृत्तियों से सम्बन्ध रखती है, पर रस की सब दशाएँ ऐसी नहीं मानी जा सकती, जिनमें जीवन के उदात्त तत्व अनिवार्य रूप से समाहित हों। जैसे, रीतिकालीन शृंगार चित्रण जीवनादर्शों या स्वस्थ जीवन प्रेरणाओं से दूर ही है। जीवन के उच्च मूल्यों को हम भुला नहीं सकते। अत भाव या रस की ऐसी परिपुष्ट दशा हो, जिसमें जीवन के उदात्त मूल्य भी समाहित हो, रस की सर्वश्रेष्ठ दशा कही जा सकती है। सूरदास का वात्सल्य चित्रण और शृंगार-वर्णन हिन्दी साहित्य का गौरव है। तुलसीदास शृंगार और वात्सल्य का इतना व्यापक और गहन चित्रण नहीं कर सके। यदि 'विभावादि' से रस की परिपुष्टि के सिद्धान्त की दृष्टि से देखें तो इन रसों के प्रकाशन में सूरदास तुलसी से उच्च कोटि के कवि माने जायेंगे। पर वह क्या बात है जो हमें सूर को तुलसी से ऊँचा मानने से रोकती है? निश्चय ही भाव-उदात्तता। तुलसी में हमें उदात्त भावों से पुष्ट उदात्त रस का विस्तार अधिक मिलता है। मानव जीवन की जितनी उदात्त वृत्तियों और भावनाओं का तुलसी ने चित्रण किया है उतना सूरदास ने नहीं। तुलसी की महानता नैतिकता में नहीं बल्कि नीति या उदात्त जीवन-मूल्यों को रसरूप प्रदान करने में है। 'प्रेमचन्द और उनका गोदान' नामक अपनी ग्रन्थ पुस्तक में हमने सिद्ध किया है कि प्रेमचन्द की महानता जीवन की समस्याओं के प्रकाशन या नैतिकता में नहीं, अपितु उदात्त भाव वृत्तियों के प्रकाशन में हैं। 'गोदान' की रसवादी समीक्षा करते हुए हमने उक्त पुस्तक में उदात्त रस-भावानुभूतियों को ही 'गोदान' की शक्ति का रहस्य माना है।

रीतिकाल के ही बिहारी की अपेक्षा घनानन्द के शृंगार-वर्णन को क्यों उत्तम माना जाता है? निश्चय ही इसलिए क्योंकि घनानन्द के शृंगार वर्णन में प्रेमी जीवन की ऐन्द्रिक स्थूलता के स्थान पर मानसिक प्रेम प्रसार, त्याग तथा निःस्वार्थता की उदात्त वृत्तियाँ अपेक्षाकृत अधिक हैं। अत काव्य की श्रेष्ठता के मानदण्डों में रस के आश्रय जीवन के उदात्त मूल्यों का महत्व असंदिग्ध है। ये होंगे रस के आश्रित ही अर्थात् भाव सवेदनाओं का रूप लिए हुए। संसार में वही काव्यकृति चिर स्थायी और सर्वश्रेष्ठ मानी जायगी जिसमें उदात्त जीवन मूल्यों से युक्त रस अर्थात् उदात्त रस

१ इस सम्बन्ध में लेखक के 'बीभत्स रस और हिन्दी साहित्य', 'रस-शास्त्र और साहित्य-समीक्षा' तथा 'भारतीय काव्यशास्त्र के सिद्धान्त' ग्रन्थ अवलोकनीय हैं।

या उदात्त भाव-सवेदनाओं की परिपुष्ट दशा होगी। काव्य मे प्रेरणाहीन कोरे वैयक्तिक शृंगार या कोरे मनोरजनकारी हास्य अथवा अद्भुत रसों की अपेक्षा उदात्त शृगार, उदात्त हास्य, उदात्त अद्भुत रस आदि अर्थात् उदात्त भाव-अनुभूतियों से युक्त रसों का महत्व सदा रहेगा, इसमे कोई सन्देह नही। अत उदात्त रस या रस के उदात्त रूप को ही काव्य की शाश्वत, सार्वदेशिक कसौटी कहा जा सकता है।

निराला-काव्य की शक्ति का पूर्ण रहस्य न तो उनके द्वारा किये गये मुक्त छन्द आदि के नव प्रयोगों मे है, न सगीतपूर्ण गीत सृजन में, न दार्शनिक मन्तव्यों और प्रगतिशील विचारो के प्रकाशन अर्थात् नैतिक तत्त्वो मे उसकी शक्ति निहित है, न भाषा-शैली के विविध सफल प्रयोगो मे। यहा तक कि निराला-काव्य की शक्ति उनकी 'शेफालिका', 'जुही की कली' या ऐसी ही कोरी शृगारपरक या प्रकृतिपरक रचनाओ मे भी नही मानी जा सकती। सच तो यह है कि जहां भाषाशैली, छन्द-गीत-सगीत आदि नव प्रयोगो ने निराला-काव्य को सशक्त बनाने में अशत योग दिया है, वहां उसकी वास्तविक शक्ति उसमे अभिव्यजित उदात्त भाव-सवेदनाओं में ही निहित है। जीवन के वैषम्य पर निराला की घृणात्मक या व्यग्यात्मक प्रतिक्रिया, दुखी-पीड़ित-शोषित मानवता के प्रति निराला की कोमल उदात्त करुणा, शोषकों, पीडकों, पू जीपतियो तथा अन्य समाज और जीवन विरोधी तत्त्वों के प्रति उनकी उदात्त घृणा, मानव, मानवी, भगवान्, मातृ शक्ति या जननी-जन्मभूमि के प्रति निराला की उदात्त प्रेम भावना या भक्ति, उनकी राष्ट्रीय चेतना, ओज और वीरता की उदात्त वृत्तियों से पूर्ण कर्मोत्साह आदि जीवन की नाना विध उदात्त भावानुभूतियां ही निराला-काव्य की शक्ति का स्रोत हैं। निराला-काव्य की इसी शक्ति—इसी ऊर्जा—का अध्ययन हम अगले पृष्ठो में करेंगे।

: १ :

निराला-काव्य में करुणत्व

उदात्त करुणा : उदात्त घृणा

उदात्त करुणा (करुण रस) और उदात्त घृणा (बीभत्स रस) की सहस्थिति निराला-काव्य की बड़ी शक्ति है।

'अनामिका' की 'दान' कविता निराला की महानतम रचनाओं में से एक है। ऐसी उदात्त भावप्रवण कविताओं से ही निराला की महानता असंदिग्ध रूप से सिद्ध होती है। निराला की 'जुही की कली' की हिन्दीजगत् में बहुत चर्चा हुई है और बहुत-से आलोचकों ने 'जुही की कली' को निराला की श्रेष्ठ रचना माना है। इसमें सन्देह नहीं कि शृंगार रस या प्रेम भाव की व्यंजना, प्रकृति के मानवीकृत सौन्दर्य-चित्र तथा भाषा शैली छन्द की नई सुन्दर योजना के कारण 'जुही की कली' निराला जी की सुन्दर और श्रेष्ठ रचना है। पर सुन्दर होते हुए भी वह 'दान'-जैसी महान् कविता नहीं बन पाई। सौष्ठववादी समीक्षक हमारे इस कथन पर नाक-भौं सिकोड़ सकता है, पर यदि हृदय की ईमानदारी और खुले मस्तिष्क से तुलना की जाय तो इस निर्णय पर पहुँचने में जरा भी देर न लगेगी कि उदात्त भाव या उदात्त रस की महान् सिद्धि के कारण 'दान' कविता 'जुही की कली' से श्रेष्ठ है। 'जुही की कली' में भाव और रस तो है, पर उदात्त भाव या उदात्त रस उतना नहीं है। यदि 'जुही की कली' की प्रेम-व्यंजना भी त्याग, साहस आदि उदात्त भावों से पूर्ण होती, तो 'जुही की कली' निराला जी की महानतम रचना कही जाती।

अनुसन्धान परिषद् (दिल्ली विश्वविद्यालय, हिन्दी विभाग) की एक गोष्ठी में डा० नगेन्द्र जी ने कहा था कि दो रचनाओं में रस-भाव की पूर्ण योजना होने पर उनकी परस्पर श्रेष्ठता का निर्णय नैतिक मूल्य से किया जायगा। तुलसी और सूर में तुलसीदास की महानता या रीतिकालीन कवियों के शृंगार-काव्य की तुलना में तुलसीदास की महानता का रहस्य उन्होंने इसी बात से स्वीकार किया था कि तुलसी-काव्य का नैतिक मूल्य अधिक सबल है। इस सम्बन्ध में हमारा निवेदन यह है कि नैतिक मूल्य को कसौटी बनाना साहित्य-इतर मूल्य को अपनाना है। रस-भाव की अपेक्षा उदात्त रस या उदात्त भाव को कसौटी बनाने से नीति या नैतिक मूल्य की बात

स्वत ही उदात्त भाव-रस मे समाहित हो जाती है। तुलसी की महानता इस बात मे नही कि उनके काव्य मे नैतिकता का पुट अधिक है, उनकी महानता तो इसलिए है कि उनका काव्य उच्च एव उदात्त मानवीय भावो या उदात्त रस-भावो का रत्नाकर है। अतः मैं जब 'धान' कविता को 'जुही की कली' से श्रेष्ठ कहता हूँ तो मेरा यह मूल्यांकन नैतिकतावादी मूल्यांकन समझ लेना भ्रांति होगी। मेरी कसौटी विशुद्ध साहित्यिक कसौटी है। 'धान' कविता इसलिए सर्वश्रेष्ठ है क्योंकि इसमे उदात्त भावानुभूति अधिक है। अब इस कविता का विश्लेषण कर हम इसके उदात्त भाव-सौन्दर्य का अवलोकन कराते हैं।

कवि प्रात सैर को निकला है। प्रारभ में उसने प्रात कालीन प्रकृति का बडा ही मनोरम चित्रण किया है—'बसत ऋतु का स्वच्छ तरुण बालारुण हँसता-हँसता, कोमल-कोमल गति से उदित हुआ है। तरुणियो के समान चंचल किरणें चारो ओर फैल गई हैं। किसलयो के रक्ताभ और रसपूर्ण अधरों पर भौंरे मडराने लगे हैं। वे खिलती हुई सुन्दर कलियो पर नई आशा और नई उमग से भरकर उड रहे हैं। वन-उपवन मे भौंरो का मधुगु जन सुख को मधुगु जन बन गया है। हेमहार पहने अमलतास और हँसता हुआ रक्ताम्बर पलाश अपनी छवि प्रकट कर रहा है। प्राणों को तृप्त कर देने वाली त्रिविध समीर बह रही है। भाव-भगिमा और चचलता से भरी क्षीणकटि गोमती नदी नवल नटी बनी नृत्यरत है। ऐसे मधुर प्राकृतिक वातावरण मे कवि सैर करता हुआ लौट कर पुल पर आकर खडा हो जाता है।' प्रकृति का जो यह सुन्दर चित्रण हुआ है, इससे कविता सुन्दर तो बन गई है, पर सम्प्रति महान् नहीं बनी है। सुन्दर कविता और महान् कविता मे अन्तर यही है कि सुन्दर कविता सरस होने के साथ जब उसमे उदात्त भाव रस की प्रतिष्ठा हो जाती है तभी वह महान् बन पाती है।

पुल पर खडा हो कवि सोचता है कि "प्रकृति अपनी समस्त निधियो को स्वय मानव के लिए अर्पित करती है सब प्रकार के ऐन्द्रिक सुख विलास, सब कलाएँ, सौंदर्य आदि मनुष्य को प्राप्य हैं, मानव सर्वश्रेष्ठ प्राणी है, मानव धन्य है।" सब देह-धारियों मे मनुष्य को श्रेष्ठ मानने की प्राचीन धारणा को व्यक्त करने के तुरन्त बाद कवि दैन्य-जर्जर ककाल-मात्र बने हुए मृत प्राय भिक्षुक को देखता है :

एक ओर पथ के, कृष्णकाय
ककाल शेष नर मृत्यु प्राय
बैठा सशरीर दैन्य दुर्बल
भिक्षा को उठी दृष्टि निश्चल
अति क्षीण कण्ठ, है तीव्र श्वास
जीता ज्यों जीवन से उदास।
ढोता जो, वह कौन सा शाप ?
भोगता कठिन कौन सा पाप ?

—अनामिका, पृ० २४

किस पाप-अभिशाप से मानव की यह दुरवस्था हो गई है ? क्या यही मानव की श्रेष्ठता का रूप है ? लोग एक पैसा देकर उसके प्रति दया दिखाते हैं, पर क्या यह उचित उपाय है ? भिक्षुक के आलम्बनत्व से यहां उदात्त करुणा या उदात्त करुण रस की मार्मिक अनुभूति हो रही है। रचना में उदात्त भाव संवेदनाओं की स्थिति अब प्रस्तुत होने लगी है।

कवि देखता है कि वहीं दूसरी ओर बहुत से वानर बैठे हैं। इतने में एक ब्राह्मण देवता स्नान-पूजा के उपरान्त झोली में कुछ लिये वहाँ आते हैं। उनकी झोली देखते ही वानर तत्पर होकर उसकी ओर बढ़ते हैं। राम और शिव के परम भक्त विप्रवर ने आगे बढ़ते हुए भिक्षुक को दुत्कारा और—

> झोली से पुए निकाल लिये,
> बढ़ते कपियों के हाथ दिये।
> देखा भी नहीं उधर फिरकर
> जिस ओर रहा वह भिक्षु इतर।
> चिल्लाया किया दूर दानव,
> बोला मैं—"धन्य श्रेष्ठ मानव !" (पृ० २१)

इन पंक्तियों में कवि सारी धर्म-व्यवस्था, सारी अर्थ व्यवस्था, धार्मिक ढोंग और अंधविश्वास, मनुष्यता के अधःपतन आदि सब पर करारा व्यंग्य करता है। इस व्यंग्य को मैंने हास्य रस की बजाय घृणा भाव के अन्तर्गत बीभत्स रस का विषय सिद्ध किया है (देखिए 'निराला का व्यंग्य-काव्य' प्रकरण)। अतः यहाँ ढोंगी, स्वार्थी, मनुष्यता से गिरे अंधविश्वासी ब्राह्मण के प्रति तीव्र व्यंग्य हमारी उसके प्रति तीव्र घृणा ही जगाता है। उदात्त घृणा की यह अनुभूति उदात्त बीभत्स रस की ही अनुभूति है। यही नहीं, कवि ने ढोंगी भक्त ब्राह्मण के व्याज से ऐसे अंधविश्वासपूर्ण धार्मिक ढकोसले के प्रति भी घृणा जगाई है, जो वानरों का—पशुओं का—तो अपने आराध्य देव समझकर मालपुओं का भोग कराते हैं और अपने दुखी एवं भूखे मरते मानव-बंधु की उपेक्षा करते हैं। कहां गया मानव की श्रेष्ठता का वह सिद्धान्त ?

इस प्रकार इस कविता में दीन भिक्षुक के आलम्बनत्व से उदात्त करुणा या करुण रस और पाखण्डी विप्रवर या उसके अंधविश्वासपूर्ण ढोंगी धर्म-आचरण के प्रति उदात्त घृणा या उदात्त बीभत्स रस की जो मार्मिक व्यंजना हुई है, वही इस कविता की शक्ति और महिमा की परिचायक है। इस उदात्त भावानुभूति से ही यह रचना महान् है—ऐसी महान् जो देश और काल की प्राचीरों को लांघ कर युग युग की उदात्त मानवीय संवेदनाओं से सम्बन्ध रखती है। ऐसी रचनाएँ ही कालजयी होती हैं।

इस कविता में ध्यान देने की बात यह है कि आरंभिक प्रकृति चित्रण के सिवा आगे सारी कविता अनलंकृत और कला की दृष्टि से सामान्य कोटि की है। आरंभिक अंश में प्रकृति का आह्लादक सौन्दर्यवर्णन सुन्दर अलंकृत शैली में

हुआ है, जिससे प्रारंभिक प्रकृति-चित्रण कलावादी या सौष्ठववादी दृष्टि से भाव और शैली के सौन्दर्य से ओतप्रोत प्रतीत होता है। पर इतना होते हुए भी कविता की शक्ति और महानता बाद के अलंकारहीन भाग में निहित है। इससे स्पष्ट प्रमाणित होता है कि काव्य की श्रेष्ठता न केवल भाव-सौन्दर्य पर निर्भर है, न कला सौन्दर्य पर, वस्तुत वह उदात्त भाव-सौन्दर्य पर आधृत है। उदात्त भाव-सौन्दर्य ही श्रेष्ठ कोटि का भाव-सौन्दर्य होता है। निस्सदेह यदि इस कविता का अनलंकृत भाग भी कला सौष्ठव-पूर्ण होता तो सोने मे सोहागे की बात हो जाती, पर उसकी न्यूनता होते हुए भी उसमें उदात्त करुणा और घृणा की जो उच्च संवेदनाएँ पाई जाती हैं, वे ही उसको महान् काव्य सिद्ध करती हैं।

इसी प्रकार निराला की 'भिक्षुक' कविता (परिमल) में दीन भिक्षुक और उसके भूखे बच्चों के प्रति हमारी करुणा अनायास ही प्रकट हो जाती है। इसमे भी आद्य त उदात्त करुणा भाव का प्रसार इस कविता को महान् काव्य की श्रेणी में रखता है। कवि भिक्षुक का करुण चित्र प्रस्तुत करता है

वह आता
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।
पेट पीठ दोनों मिलकर हैं एक,
चल रहा लकुटिया टेक,
मुट्ठी भर दाने को —भूख मिटाने को
मुँह फटी-पुरानी झोली का फैलाता दो टूक'।

उसके साथ उसके दो भूखे-नंगे बच्चे भी हाथ फैलाए चल रहे हैं जो सड़क पर पड़ी जूठी पत्तल ही चाटने को लालायित रहते हैं। हृदय को मथ देने वाले इस करुण चित्र के साथ ही यहा भी कवि ने बड़ी ही सूक्ष्म सांकेतिक शैली मे भाग्य विधाता—दाता और मानव की मनुष्यता पर व्यग्य कसा है

भूख से सूख ओंठ जब जाते
दाता—भाग्य विधाता से क्या पाते ?—
घूँट आँसुओं के पीकर रह जाते।
चाट रहे जूठी पत्तल वे कभी सड़क पर खड़े हुए,
और झपट लेने को उनसे कुत्ते भी हैं अड़े हुए।

यह विधाता का और मानवता का कैसा न्याय है कि मानव की दशा कुत्तों से भी गई-गुजरी हो गई है ? क्या विधाता निष्करुण हो गया है ? मानवता अधी और बहरी हो गई है ? स्पष्ट है कि यहाँ भी व्यग्य हमारी अर्थ-व्यवस्था या समाज-व्यवस्था अथवा वर्तमान मानवता के प्रति उदात्त घृणा अवश्य जगाता है। इस रचना मे भी 'आँसुओं के घूँट पीना', 'कलेजे के दो टूक करना' आदि एक दो मुहावरों के सिवा अलंकरण की कोई प्रवृत्ति नहीं है फिर भी कविता की महानता असंदिग्ध है।

निराला की 'विधवा' कविता मे भारत की विधवा का करुण चित्र है। विधवा की करुणरस से भरी आँखें देखकर कवि के मनमधुकर की पाँखें भी भीग गई। विधवा के जीवन मे हाहाकार के सिवा कुछ नहीं। यद्यपि उसकी असहाय दशा का अलकृत कथन ही इस कविता मे हुआ है और यदि उसकी करुण परिस्थितियो का और स्पष्ट चित्रण होता तो आलम्बनत्व अधिक पुष्ट हो जाने से करुण रस की और भी तीव्र अनुभूति कराता, तथापि निराला जी ने "दुनिया की नजरो को बचा कर अस्फुट स्वर मे रोती हुई" विधवा का मार्मिक चित्रण किया है, जो करुणरस की मार्मिक अनुभूति कराता है।

इस रचना मे भी 'दलित भारत की ही विधवा है' कथन मे मार्मिक व्यग्य छिपा हुआ है जो देशवासियो की गैरत को चुनौती देता है। यही नही, कवि ने यहाँ और भी स्पष्ट शब्दों मे विधाता या दैव को आड़े हाथो लिया है

यह दु ख वह जिसका नहीं कुछ छोर है,
दैव अत्याचार कैसा घोर और कठोर है!
क्या कभी पोंछे किसी के अश्रुजल?
या किया करते रहे सबका विकल? —परिमल

इस कविता का कलापक्ष भी बहुत प्रौढ है जो उदात्त भावानुभूति को और भी मार्मिक बना रहा है। अत यह कविता कवि की 'भिक्षुक' कविता पर भी वरीयता प्राप्त किये है और निराला की ही नहीं, आधुनिक हिन्दी काव्य की महानतम कविताओं मे से एक है।

'तोड़ती पत्थर' कविता की भाव-सवेदनाएँ भी उदात्त हैं। इसमें एक ओर तो कठिन कर्म-रत मजदूरिन का कर्म-सौन्दर्य चित्रित हुआ है, दूसरी ओर उसकी करुण परिस्थिति करुणा का सचार करती है और तीसरे आर्थिक विषमता का साकेतिक बोध कराकर कवि ने वर्ग-विषमता पर कटाक्ष किया है।

तमतमाते सूर्य की झुलसाती धूप और लू से अप्रतिहत, दहकती हुई दुपहरी में, रुई की तरह जलती हुई भू पर, हाथ मे भारी हथौड़ा लिए पत्थर तोड़ने में कर्म-रत मजदूरिन कर्मोत्साह का सुन्दर उदाहरण उपस्थित करती है

कोई न छायादार
पेड़ वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार,
नत-नयन, प्रिय-कर्म-रत मन।
गुरु हथौड़ा हाथ,
करती बार-बार प्रहार—
× × ×
दिवा का तमतमाता रूप।
उठी झुलसाती हुई लू

रुई ज्यों जलती हुई भू
गर्द चिनगी छा गई,
प्राय. हुई दुपहर :
वह तोड़ती पत्थर।
× ×
ढुलक माथे से गिरे सीकर,
लीन होते कर्म मे फिर ज्यों कहा—
'मैं तोड़ती पत्थर।' —अनामिका

इन पंक्तियों से एक ओर तो उसकी करुण परिस्थिति के कारण हमारी सहानुभूति और संवेदना जगती है : हमारे मन में करुणा का सचार होता है, दूसरे, विषम-कठिन परिस्थिति मे भी अप्रतिहत हुई, 'प्रिय-कर्म-रत मन' वाली उस पत्थर तोड़ने वाली के कर्मोत्साह से कर्म वीरता की अनुभूति होती है। तीसरे, 'सामने तरु-मालिका अट्टालिका, प्राकार' के कथन द्वारा आलीशान आनन्द भवन का संकेत करके कवि ने वर्ग-विषमता पर प्रहार किया है। ऐसी विषम अर्थ-व्यवस्था के प्रति हमारी सहज वितृष्णा या घृणा उद्बुद्ध होती है, जिसमे निम्नवर्ग की एक कोमलांगी तरुणी को आग उगलती दुपहरी में पत्थर तोड़ने-जैसा कठिनतम कार्य करके भी पेट पालना कठिन होता है और दूसरी ओर सामने ही उच्च वर्ग के लोग बड़े-बड़े भवनों में ऐश्वर्यपूर्ण जीवन बिताते हैं।

अत 'तोड़ती पत्थर' कविता मे भी उदात्त करुणा, उदात्त कर्मोत्साह एवं उदात्त घृणा भावों की व्यंजना इस कविता को महान् सिद्ध करती है। इसमे भी भाषा-शैली—कला की कोई विशेष सज्जा नहीं है, उदात्त भाव-सौन्दर्य ही इसे श्रेष्ठ रचना प्रमाणित कर रहा है।

'अनामिका' की 'सेवा प्रारम्भ' कविता मे करुणा की अजस्रधारा प्रवाहित हुई है। बगाल के अकाल ने मानवता की जो दुर्दशा कर दी थी, उसकी कहानी कितनी दर्दनाक है, यह बताने की आवश्यकता नहीं। स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज ने स्टीमर से उतर कर चैतन्यदेव की भूमि पर ज्यों ही पांव रखा, वे अकालपीडित मानवता का हाहाकार देखकर स्तम्भित रह गए :

देखा, हैं दृश्य और ही बदले,—
दुबले - दुबले जितने लोग,
लगा देशभर को ज्यों रोग,
दौड़ते हुए दिन में स्यार
बस्ती में—बैठे भी गीध महाकार,
आती बदबू रह-रह,
हवा बह रही व्याकुल कह-कह;
कहीं नहीं पहले की चहल-पहल, —अनामिका पृ० १८०

भूख से तड़पते और रोगों से सड़ते लोगों के घाव, उन घावों पर दिन में बस्ती में ही मंडराते गीध और स्यार तथा बदबू से भरे इस वातावरण के चित्रण को देख कर अंध परम्परावादी आलोचक कह सकता है कि यहा बीभत्स रस का चित्रण हुआ है। पर वास्तव में गीध, स्यार और घावों के इस वर्णन में बीभत्सता तो है, पर बीभत्स रस नहीं है। यहां मानवता की इस बीभत्स स्थिति पर करुणा ही उत्पन्न हो रही है। हमने मानसिक घृणा को ही अपने शोधप्रबन्ध 'बीभत्स रस और हिन्दी साहित्य' में बीभत्स रस का स्थायी भाव सिद्ध किया है, स्थूल वस्तुगत जुगुप्सा को नहीं। अत: यहा घृणा का कोई मानसिक रूप न होने से बीभत्स रस नहीं माना जा सकता। हां, यदि यहां मुनाफाखोरों की मनुष्यहीनता तथा सरकार की निर्दयता का वर्णन भी होता तो उनके आलम्बनत्व से बीभत्स रस की स्थिति हो सकती थी।

स्वामी जी इन करुण दृश्यों को देखते जा रहे थे कि इतने में एक गरीब बालिका सिर पर पानी का भरा घड़ा रखे जाती दिखाई दी। अचानक घड़ा गिर कर टूट गया। बालिका रोने लगी। उसकी निदारुण गरीबी में दूसरा घड़ा कहां से आयेगा? स्वामी जी दया कर उसे एक नया घड़ा दिला देते हैं। बालिका प्रसन्न हुई। घर जाती हुई वह रास्ते में कुछ भूखे बिलखते लड़कों को बताती है कि एक बाबाजी आये हुए हैं, बड़े दयालु हैं, उनके पास जाओ, अवश्य ही कुछ न-कुछ खाने को दिला देंगे। बालक पहुंच जाते हैं.

इसी समय आये वे लड़के,
स्वामी जी के पैरों आ पड़े।
पेट दिखा, मुंह को ले हाथ,
करुणा की चितवन से, साथ
बोले,—"खाने को दो,
राजों के महाराज तुम हो।"

स्वामी जी के पास जो चार आने बचे थे, उनसे उन्होंने बालकों को चना-चिउड़ा दिलवा दिया। लड़कों को कुछ संतोष हुआ। उन लड़कों ने बताया कि पास की झोंपड़ी में एक बुढ़िया निढाल पड़ी है, उसे देख लो। स्वामीजी उधर चले। दुखियों का तो वहां तांता लगा था। स्वामी जी लोक-सेवा में जुट गए। करुणा और दया-कर्मवीरता का ऐसा उदात्त रूप अन्यत्र मिलना कठिन है। इस कविता में भी कलात्मक साज-सज्जा का अभाव है, पर उदात्त भाव-अभिव्यंजना के ही कारण निराला की यह कविता उनकी श्रेष्ठ काव्य कृति है। कवि की करुणा सजग और सक्रिय है। उसमें केवल परदुखकातरता ही नहीं है, अपितु पर-दुखों को अपने सिर-माथे लेकर दुखियों को राहत देने की सक्रिय उदात्तता है। तभी तो कवि ने स्पष्ट शब्दों में कहा

ठहरो, अहा, मेरे हृदय में है अमृत, मैं सींच दूंगा।
तुम्हारे दुख मैं अपने हृदय में खींच लूंगा॥

निराला स्वयं अपने जीवन में सच्चे दीनबन्धु थे। उनके जीवन से कितने ही उदाहरण मिलते हैं जबकि उन्होंने अर्थ अभाव होते हुए भी मुक्तहस्त से अपना सब-कुछ दुखियों और दरिद्रों में लुटा दिया था।

निराला में करुणत्व का एक रूप वह भी है जहां कवि ने अपने जीवन की असफलता और निजी परिस्थितियों का करुणापूर्ण चित्रण किया है। 'सरोज स्मृति' इस दृष्टि से निराला का सर्वोत्तम शोकगीत है। इसमें न केवल अपनी पुत्री के असामयिक निधन पर कवि का शोक-संतप्त हृदय आठ आठ आँसू बहा रोता है, अपितु वह अपनी जीवन असफलता और सामाजिक अन्याय का चित्रण कर आत्म-करुणा भी जगाता है। कुछ पंक्तियाँ देखिए

धन्ये, मैं पिता निरर्थक था,
कुछ भी तेरे हित न कर सका।
× × ×
लखकर अनर्थ आर्थिक पथ पर,
हारता रहा मैं स्वार्थ समर।
लिखता अबाध गति मुक्त छन्द,
पर सम्पादकगण निरानन्द,
वापस कर देते पढ़ सत्वर,
× × ×
दुख ही जीवन की कथा रही
क्या कहूँ आज, जो नहीं कही!
कन्ये, गत कर्मों का अर्पण
कर, करता मैं तेरा तर्पण!

—अनामिका

जीवन की नश्वरता पर कवि की कारुणिक दृष्टि 'परिमल' की 'शेष' रचना में देखी जा सकती है। सब प्रियजन काल का ग्रास बन गए, जो यहाँ आता है, एक दिन काल के निष्ठुर कर से मला जाता है

देख चुका जो-जो आए थे, चले गए,
मेरे प्रिय सब बुरे गए, सब भले गए।
आए थे जो निष्ठुर कर से मले गए।

इस प्रकार निराला काव्य में करुणा की ऐसी पवित्र मन्दाकिनी प्रवाहित हुई है, जो दुखी मानवता के प्रति सहानुभूति और करुणा की भावना जगाती हुई हमें कर्त्तव्य-पथ की ओर अग्रसर करती है। करुण रस के साथ-साथ दया-वीर और कर्म-वीर की उदात्त प्रेरणा प्रदान करती हुई यह भावधारा लोकमंगल की विधायक बनती है और साथ ही विकृत, कुरूप, बीभत्स और अन्यायपूर्ण समाजशोषी परम्पराओं और व्यवस्थाओं के प्रति अरुचि और घृणा जगाकर सभी प्रकार के अशुभ और अमंगल को मृत्युदण्ड देती है।

: २ :

निराला का व्यंग्य-काव्य

उदात्त हास्य : उदात्त घृणा

परम्परा : हिन्दी साहित्य में निराला एक महान् व्यंग्यकार के रूप में भी अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। यों तो हिन्दी में व्यंग्य-काव्य की परम्परा बहुत प्राचीन है; वज्रयानी सिद्धों और नाथ पंथी योगियों आदि ने ही सगुणवादी ब्राह्मणों आदि का खण्डन करने तथा धार्मिक पाखण्ड का विरोध करने में व्यंग्यशैली अपनाना आरम्भ कर दिया था, पर इस प्रवृत्ति का समुचित विकास सर्वप्रथम कबीर आदि सन्तों की वाणी में ही मिलता है। कबीर हिन्दी के प्रथम शक्तिशाली व्यंग्यकार कवि कहे जा सकते हैं। उन्होंने अपने समय की धार्मिक एवं सामाजिक कुरीतियों तथा पाखण्डों का खूब भण्डाफोड़ किया था। यद्यपि उनका मुख्य क्षेत्र और उद्देश्य धार्मिक था, तथापि उस धार्मिक आधार भूमि पर भी उन्होंने जाति-भेद, ऊँच-नीच, आचरण की हीनता धार्मिक विद्वेष आदि सामाजिक बुराइयों को भी आड़े हाथों लिया। एक ओर उन्होंने हर प्रकार के धार्मिक ढोंग पर व्यंग्य कसे पण्डे की पत्थर पूजा का मजाक उड़ाया, मुल्ला की ऊँची बांग की खिल्ली उड़ाई, मुंड मुड़ाकर सन्यासी कहलाने वाले ढोंगी साधुओं की खबर ली, वहां दूसरी ओर मनुष्य मनुष्य में भेद करने वाले पण्डों, हिन्दुओं, तुर्कों आदि की दूषित सामाजिक प्रवृत्ति पर भी करारी चोटें कीं। इन चोटों में कबीर कहीं-कहीं बहुत तीखे और उनके व्यंग्य कुछ शालीनता से दूर भी दिखाई देते हैं। ऊँच नीच, जात-पांत और जाति-भेद की कुत्सित धारणा रखने वाले ब्राह्मण को सुनाई गई—

जो तू ब्राह्मण ब्राह्मणी जाया, और मारग काहे नहीं आया—

ऐसी फटकारों में यद्यपि यथार्थता है, पर यह तीखा व्यंग्य कुछ शालीनता की हद को पार कर गया है।

कबीर आदि संतों में जो सामाजिक व्यंग्य पाया जाता है वैसा प्राचीन हिन्दी साहित्य में अन्यत्र नहीं मिलता। हास्य-व्यंग्य शैली का प्रयोग तो सूरदास आदि हमारे अनेक कवियों ने किया पर सामाजिक व्यंग्य की परम्परा का पूर्ण विकास आधुनिक युग की ही विशेषता है। भारतेन्दु काल में गद्य साहित्य तो सामाजिक चेतना से ओतप्रोत हो चला था, पर काव्य में मुख्यत. रीतिकाल और भक्तिकाल की

परम्पराओं या पालन होने से नव सामाजिक चेतना कम आ पाई। फिर भी इस काल की नई कविता तथा नाटकों के अन्तर्गत जो व्यंग्य काव्य रचा गया, वह पर्याप्त महत्वपूर्ण है।

बीसवीं शताब्दी के आधुनिक काव्य में तो व्यंग्य की प्रवृत्ति उत्तरोत्तर विकसित होती गई। निराला जी के समय में हमारे कवि समाज और जीवन की नाना-विध बुराइयों को अपने व्यंग्य-बाणों का लक्ष्य बनाने लग गये थे। निराला जी इन प्रबुद्ध व्यंग्यकारों में अग्रणी रहे। निराला का व्यंग्य काव्य उनकी जीवन अनुभूति का सच्चा प्रतिफल है। उनके व्यंग्य यथार्थ और सशक्त हैं।

निराला की व्यंग्य शक्ति का रहस्य उनका जीवन अनुभव ही है। पीड़ितों और दीनदुखियों को देखकर उनका हृदय तिलमिला जाता था। समाज, धर्म, राजनीति, साहित्य और जीवन में जहाँ कहीं भी उन्हें विषमता, अन्याय, अत्याचार और असंगति दिखाई दी, वहीं उन्होंने अपना व्यंग्य का नश्तर चलाया। उनके जीवन के कटु अनुभव उनकी व्यंग्यात्मक प्रतिक्रिया कदम-कदम पर जगाते रहे। अन्याय के साथ समझौता करना तो उन्होंने सीखा ही नहीं था। इन्हीं साहित्यिक, सामाजिक एवं वैयक्तिक परिस्थितियों ने निराला को सफल व्यंग्यकार बनाया।

व्यंग्य का मनोविज्ञान :

व्यंग्य की स्थिति हास्यरस और बीभत्सरस—इन दो रसों में होती है। हास्यरस के अन्तर्गत व्यंग्य हास्यरस को उदात्त बनाता है। हास्य का मनोवैज्ञानिक आधार है अप्रत्याशित असंगति या विकृति। यह असंगति या विकृति जितनी अधिक उचित और विचित्र होती है, उतना ही हास्य का वेग अधिक होता है। जितना अधिक हास का वेग किसी रचना में होता है, उसे उतनी ही अधिक हास्यरस की रचना माना जाता है। किन्तु हास्य का वेग होना और बात है, हास्य का उदात्त होना और। हँसी का वेग तो किसी प्रकार की अचानक बेढंगी बात से फूट सकता है। जैसे, किसी को उल्टे कपड़े पहने देखकर, कुरते धोती पर टाई लगाते देखकर या अन्य हास्योत्पादक मुद्राएँ करते देखकर हँसी आ सकती है। किन्तु इस प्रकार से उत्पन्न विशुद्ध हास्य को उदात्त हास्यरस नहीं कहा जा सकता। उदात्त हास्य वही माना जाएगा, जहाँ हास्य किसी नैतिक भावना पर आधारित होगा। उदात्त हास्य से केवल हँसी ही नहीं होती, अपितु वह हमारी उदात्त भावनाओं को भी जगाता है। व्यंग्य के मूल में सामाजिकता या नैतिकता रहती है। अतः व्यंग्य मिश्रित हास्य उदात्त हास्य होता है। व्यंग्यपूर्ण हास्य केवल (शुद्ध) हास्य नहीं होता, उसमें हास के साथ मानवीय उच्च प्रवृत्तियाँ या भावनाएं भी सम्मिलित होती हैं। जैसे, 'जोकर' (विदूषक) के बेढंगे प्रदर्शन रूप शुद्ध हास्य की अपेक्षा किसी ढोंगी व्यक्ति या किसी पत्नी-भक्त व्यक्ति का मजाक उदात्त हास्य का रूप होगा, क्योंकि ढोंग, फरेब रचना आदि हमारी नैतिक भावना के विरुद्ध हैं। अतः जिस हास्य में जितना अधिक सामाजिक व्यंग्य

होगा, वह हास्य उतना ही अधिक उदात्त होगा। सच्चे सहृदयों को कोरे हास्य की अपेक्षा व्यंग्यपूर्ण उदात्त हास्य में अधिक आनन्द आता है। यद्यपि व्यंग्यपूर्ण उदात्त हास्य कोरे हास्य की अपेक्षा कम स्फुट हो सकता है, पर उस अपेक्षाकृत कम स्फुट हास्य में ही सहृदयों को अधिक आनन्द प्राप्त होता है। इस प्रकार हास्य के स्फुट आवेग को हास्य के आनन्द की कसौटी नहीं माना जा सकता। अर्थात् किसी दृश्य या नाटक में कोरा (विशुद्ध) हास्य बहुत स्फुट होने पर भी यह नहीं कहा जा सकता कि वह दृश्य या नाटक हास्य रस की उच्च कोटि की रचना है। इसमें सन्देह नहीं कि व्यंग्य का पुट हास्य को गम्भीर बना देता है और बहुत बार उसके समावेश से हास्य के स्फुट आवेग में कमी आ सकती है, पर इसके साथ ही यह भी स्वीकार नहीं किया जा सकता कि नैतिक अनुबंध या व्यंग्यादि के समावेश से हास्य का स्फुट आवेग अनिवार्य रूप से कम हो जाता है।

निराला की व्यंग्य-शक्ति :

हास्य के विशुद्ध हास्य और उदात्त हास्य—जो दो रूप ऊपर लक्षित किये गए हैं, उनमें पहला केवल हास परिहास (Humour & joke) तक ही सीमित रहता है, दूसरे के अन्तर्गत विदग्धता, परिहास, उपहास, व्यंग्य आदि (wit, joke, jest, satire, irony etc) सम्मिलित होते हैं। परिहास, उपहास और व्यंग्य का उदात्त हास्य से घनिष्ठ सम्बन्ध है। इनमें उत्तरोत्तर तीखापन बढ़ता जाता है। किन्तु इस सम्बन्ध में व्यंग्य का सीमा क्षेत्र स्पष्ट करना आवश्यक है।

व्यंग्य के ऐसे रूप को, जिसमें हास्य के स्थान पर घृणा ही मुख्यतः ध्वनित होती है, हमने बीभत्स रस के अन्तर्गत माना है।* व्यंग्य की कटुता कई बार उसे हास्य का विषय नहीं रहने देती, तब वह आलम्बन के प्रति घृणा जगाने से बीभत्स रस का विषय बन जाता है। उपहासपूर्ण तीव्र निन्दा या उपहास शून्य ऐसी निंदा या व्यंग्य जो हँसी जगाने की बजाय आलम्बन पर तीखी चोट करता है, बीभत्स रस का ही विषय होता है, हास्य रस का नहीं। निराला में दोनों ही प्रकार का व्यंग्य पाया जाता है। निराला के अनेक तीखे व्यंग्य सामाजिक कुरीतियों या ढोंगी अन्यायी व्यक्तियों के प्रति घृणा ही जगाते हैं। निम्न पंक्तियों में हाईकोर्ट के वकीलों पर व्यंग्य उनका परिहास या हल्का फुल्का उपहास ही है, जो हास्य रस के अन्तर्गत ही आता है

दौड़ते हैं बादल काले-काले,
हाईकोर्ट के वकले मतवाले।
चाहिये जहाँ वहाँ नहीं बरसे,
देख धान सूखते नहीं तरसे।

---

* देखिए इन पंक्तियों के लेखक का शोध-प्रबंध—'बीभत्स रस और हिन्दी साहित्य'

जहाँ मरा पानी वहाँ छूट पड़े,
कहकहे लगाते टूट पड़े। —खजोहरा

'इलियट' के अंधभक्त बने और बेसिर-पैर की ऊलजलूल कविता करने वाले आजकल के आधुनिक कवियों पर व्यंग्य करते हुए भी निराला हास्यरस की ही सीमा में प्रतीत होते हैं

कहीं का रोड़ा, कहीं का पत्थर,
टी एस इलियट ने जैसे दे मारा।
पढ़ने वालों ने जिगर पर रखकर
हाथ कहा—लिख दिया जहाँ सारा। —कुकुरमुत्ता

इन हल्के फुल्के व्यंग्यों से निराला केवल हँसी या परिहास ही उत्पन्न करते हैं। निराला के सामाजिक व्यंग्यों का तीखा रूप केवल हँसी उड़ाकर नहीं रह जाता। वह गहरी चोट करता है और हास्यरस की अपेक्षा बीभत्स रस की अनुभूति कराता है। 'दान' कविता में ढोंगी भक्त पर जो व्यंग्य निराला ने प्रस्तुत किया है, वह निश्चित ही हास्य के बाहर घृणा का ही विषय है स्वार्थी और ढोंगी भक्त बन्दरों को तो माल पुए खिलाता है, पर भूख से तड़पते हुए कंकाल शेष नर भिक्षु को दुत्कार देता है

झोली से [illegible] निकाल लिये,
बढ़ते कपियों के हाथ दिये।
देखा भी नहीं उधर फिरकर,
जिस ओर रहा वह भिक्षु इतर।
चिल्लाया किया दूर दानव,
बोला मैं—"धन्य, श्रेष्ठ मानव!"

कवि के 'धन्य, श्रेष्ठ मानव!' शब्दों में ऐसे मनुष्यता से पतित ढोंगी मानव के प्रति शत-शत धिक्कार और फटकार ही व्यंजित हो रही है जो घृणा उत्पन्न करने के कारण बीभत्स रस की अनुभूति कराती है। लानत है ऐसे धर्म पर, जिसमें चींटियों को आटा खिलाया जाता है, चिड़ियों को दाने चुगाये जाते हैं और बन्दरों को मालपुए डाले जाते हैं, पर मनुष्य को ठोकरें मारी जाती हैं!

'कुकुरमुत्ता' निराला जी का प्रसिद्ध व्यंग्य-काव्य है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने कहा है—"कुकुरमुत्ता को रस की दृष्टि से हास्य रस की रचना कहा जायगा।" (कवि निराला, पृ० ७२)। इस सम्बन्ध में हमारा निवेदन है कि निराला के 'कुकुरमुत्ता' में व्यक्त समस्त व्यंग्यों को केवल हास्य रस का विषय मानना परम्परागत भ्रांति ही है। वास्तव में 'कुकुरमुत्ता' निराला की दो-धारी तलवार है, जिसकी एक सुतीक्ष्ण धार से उन्होंने पूँजीपतियों तथा पूँजीवाद पर प्रहार किया है जो अधिकांशतः केवल हास्य न रहकर घृणा का विषय बन जाने से बीभत्स रस की अनुभूति कराता है। 'कुकुरमुत्ता' को शोषित सर्वहारा वर्ग का प्रतीक बनाया गया है और

गुलाब को पूंजीपतियों का। 'कुकुरमुत्ता' द्वारा गुलाब की यह भर्त्सना निराला जी की पूंजीपतियों के प्रति घृणा और भर्त्सना का ही प्रतिरूप है :

अबे, सुन बे, गुलाब,
भूल मत गर पाई खुशबू, रंगो-आब।
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट,
डाल पर इतरा रहा कैपिटलिस्ट।
× × ×
कितनों को तूने बनाया गुलाम
माली कर रखा सहाया जाड़ा-घाम।

उपर्युक्त पंक्तियों का व्यंग्य हास्य रस की परिधि में नहीं आता, यह निंदा—यह तीखा व्यंग्य आलम्बन (पूंजीवाद या पूंजीपति शोषक) के प्रति घृणा ही उत्पन्न करता है। अतः इसे बीभत्स रस का ही व्यंग्य मानना चाहिए।

नवाब साहब ने अपनी लड़की से कुकुरमुत्ता की तारीफ सुनकर अपने माली को गुलाब के स्थान पर कुकुरमुत्ता लगाने के लिए कहा :

"बोले, चल गुलाब जहाँ थे, उगा,
हम भी सबके साथ चाहते हैं अब कुकुरमुत्ता।
बोला माली—"फर्माएँ मुआफ खता,
कुकुरमुत्ता उगाये नहीं उगता।"

यहाँ निराला ने साम्यवादी या समाजवादी सिद्धान्तों को ऊपरी रूप से अपनाने वाले पूंजीपतियों का परिहास ही किया है, जो हास्य ही उत्पन्न करता है, घृणा नहीं।

'कुकुरमुत्ता' में निराला जी की व्यंग्य शैली की एक और विशेषता यह है कि इसमें उन्होंने प्रतीक-विधान द्वारा व्यंग्य किये है।

निराला जी का गद्य साहित्य भी सामाजिक व्यंग्यों से ओतप्रोत है। उनका व्यंग्य-सौष्ठव अप्सरा, निरुपमा जैसे उपन्यासों, 'बिल्लेसुर बकरिहा' तथा 'कुल्लीभाट' जैसे रेखा-चित्रों और 'चतुरी चमार', 'देवी' आदि कहानियों में भी खूब पाया जाता है। गद्यसाहित्य—विशेषत गद्य कथा साहित्य तो व्यंग्य की उर्वरा भूमि होता ही है, निराला जी की विशेषता यही है कि उन्होंने काव्य में भी व्यंग्य-कौशल प्रदर्शित किया। 'कुकुरमुत्ता' के अतिरिक्त उनकी 'अनामिका', 'बेला', 'नए पत्ते', 'अणिमा' आदि अन्य रचनाओं में भी व्यंग्यपूर्ण कविताओं की कमी नहीं। 'अनामिका' का 'मित्र के प्रति', 'दान', 'तोड़ती पत्थर', 'बनबेला', 'हिन्दी के सुमनों के प्रति', 'सरोजस्मृति' आदि अनेक कविताओं में सुन्दर सामाजिक व्यंग्य पाया जाता है। 'दान' कविता से उदाहरण ऊपर दिया जा चुका हैं। 'मित्र के प्रति' में निराला ने पुरातनपंथी लोगों पर व्यंग्य किया है, जो जीवन की नई स्वर-लहरी से अपने कर्ण-कुहर बंद रखते हैं और अपने हृदय पर प्राचीन की जड़ शिला डालकर उसे मुहरबन्द रखते हैं!

कुहरित भी पंचम स्वर,
रहे बंद कर्ण कुहर,
मन पर प्राचीन मुहर,
हृदय पर शिला। —अनामिका पृ० १३

यहाँ भी प्रतीक-विधान के रूप मे ही व्यग्य प्रकट किया गया है। 'अनामिका' की 'तोड़ती पत्थर' कविता मे निराला जी ने केवल एक पंक्ति—'सामने तरुमालिका अट्टालिका, प्राकार' से ही विषम अर्थ-व्यवस्था पर करारा व्यग्य प्रकट कर दिया है।

'वन-वेला' मे निराला जी ने अपने भविष्य की रचना मे लगे स्वार्थी धनिकों, सिद्धान्तहीन सम्पादको, ढोंगी नेताओ और उनकी झूठी यश-वृद्धि में झूठे गीत रचने वाले पेशेवर कवियों आदि अनेक आलम्बनो को अपने व्यग्य का शिकार बनाया है। कुछ पंक्तियाँ देखिए :

फिर लगा सोचने यथासूत्र—"मैं भी होता
यदि राजपुत्र—मैं क्यों न सदा कलंक ढोता,
ये होते जितने विद्याधर मेरे अनुचर,
मेरे प्रसाद के लिए विनत-सिर उद्यत-कर,
मैं देता कुछ, रख अधिक, किन्तु जितने पेपर,
सम्मिलित कण्ठ से गाते मेरी कीर्ति अमर,
जीवन चरित्र
लिख अग्रलेख अथवा छापते विशाल चित्र।

कवि आगे पूंजीपतियों पर व्यग्य करता हुआ कहता है :

इतना ही नहीं, लखपति का भी यदि कुमार
होता मैं, शिक्षा पाता अरब-समुद्र-पार,
देश की नीति के मेरे पिता परम पण्डित
एकाधिकार रखते भी धन पर,

× × ×

चुनती जनता राष्ट्रपति उन्हें ही सुनिर्धार
पैसे मे दस राष्ट्रीय गीत रचकर उन पर
कुछ लोग बेचते गा-गा गर्दभ-मर्दन-स्वर
हिन्दी सम्मेलन भी न कभी पीछे को पग
रखता कि अटल साहित्य कहीं यह हो डगमग।

इन पंक्तियो मे लखपति पुत्रों की अत्यधिक आर्थिक सुविधा के साथ-साथ निराला जी ने नेताओ के ढोंग, दम टके मे बिक जाने वाले कवियो और साहित्यिक मठाधीशो के खोखलेपन का बड़ा यथार्थ चित्रण किया है। व्यग्य तीखे एव मार्मिक हैं।

'सरोज स्मृति' में निराला जी ने धर्म और समाज की रूढियो पर सशक्त प्रहार किये हैं। जन्म-कुण्डलियो पर भाग्य अंक पढने की प्रवृत्ति का मजाक उड़ाते हुए उन्होंने लिखा है कि पत्नी की मृत्यु के पश्चात् लोगो ने दूसरा विवाह करने पर जोर दिया। निराला जी की जन्म कुण्डली भी उनके जीवन मे दो विवाह बता रही थी। निराला जी एक दिन आगन म अपनी कुण्डली हाथ में लेकर बैठे और दो विवाह लिखे देखकर हँसने लगे और कुण्डली के टुकडे टुकडे कर डाले.

पढ़, लिखे हुए शुभ दो विवाह
हँसता था, मन में बढ़ी चाह
खण्डित करने को भाग्य-अक,
देखा भविष्य के प्रति अशक। —सरोज स्मृति

परम्परागत ढग से अपनी पुत्री का विवाह किसी अयोग्य व्यक्ति से करना उन्हें जरा पसन्द नहीं था, चाहे वह व्यक्ति कितना ही कुलीन ब्राह्मण क्यों न हो। उन्होंने निश्चय कर लिया था कि वे समाज की रूढ़िवादी शृखला को तोडकर ही अपनी पुत्री का विवाह करेंगे। उनका व्यग्य कितना तीखा है

ऐसे शिव से गिरिजा-विवाह
करने की मुझको नहीं चाह।
× × ×
सोचा मन मे हत बार बार
'ये कान्यकुब्ज-कुल-कुलाङ्गार
खाकर पत्तल मे करें छेद,
इनके कर कन्या, अर्थ खेद,

'नये पत्ते' मे निराला जी के व्यग्य मे और भी तीखापन दिखाई देता है। 'मास्को-डायलाग्ज' में निराला ने उन थोथे समाजवादियो पर व्यग्य किया है, जो प्रचारक तो समाजवाद के बने फिरते हैं, पर मनोवृत्ति और कृतित्व से पूर्ण बुर्जुआ हैं। श्री गिडवानी जी ऐसे ही रगे स्यार हैं जो झूठे समाजवादी बने फिरते हैं।

निराला जी का किसी राजनीतिक दल से सम्बन्ध नहीं था। उन्होने तो जहाँ भी ढोंग और बुराई देखी, वहीं अपने व्यग्य बाण बरसा दिये। उन्होंने ऐसे कांग्रेसी नेताओ का भी अनावरण किया, जो जनता के सेवक और ग्राम-सुधारक बने फिरते हैं, पर मिल मालिको और मुनाफाखोरो का दम भरते है। 'महगू महगा रहा' मे देश-भक्ति का जामा पहने हुए ऐसे ही नेताओ पर कटु व्यग्य है

आजकल पडित जी देश मे विराजते हैं
कुदरीपुर गांव मे व्याख्यान देने को
आए हैं मोटर पर,
लदन के ग्रेजुएट, एम ए और बैरिस्टर।
× × ×
मिलों के मुनाफे खाने वालों के अभिन्न मित्र। —नये पत्ते

निराला के व्यंग्यों में छिद्रान्वेषण की छिछली प्रवृत्ति नहीं है। वे सबको बेलाग सुनाने वाले कवि थे। यद्यपि उनके व्यंग्यों में व्यक्तिगत कटुता कहीं नहीं पाई जाती, फिर भी एक दो जगह नेहरू-परिवार पर उनके व्यंग्य कुछ व्यक्तिगत से हो गये हैं। 'तोड़ती पत्थर' में आनन्द भवन का संकेत, उपर्युक्त पंक्तियों में पं० जवाहरलाल नेहरू की ओर लक्ष्य स्पष्ट है। इतना होने पर भी निराला के व्यंग्यों में द्वेष और दुर्भावना जरा नहीं है। फलाहार करने और बकरी का दूध पीने वाले गांधी जी को उन्होंने 'महात्मा जी यदि तुम मुर्गी खाते' कहकर अपने व्यंग्य बाण का लक्ष्य बना कर छोड़ा और कुछ उदार दृष्टि अपनाने की ओर संकेत दिया।

'कुत्ता भोंकने लगा' और 'डिप्टी साहब' में सरकारी अफसरों द्वारा गरीब, निरीह किसानों पर ढाये गये अत्याचारों पर व्यंग्य है और किसानों की करुण परिस्थिति पर निराला ने आंसू बहाये हैं। गाँव पर टिड्डी दल से टूट पड़ने वाले सरकारी कर्मचारी, सिपाही, डिप्टी साहब किस प्रकार मुफ्तखोरी और सीनाजोरी करते हैं, किस प्रकार विवश किसान लुटते है, इस परिस्थिति का दर्दनाक चित्र निम्न पंक्तियों में अंकित है। लुटे पिटे किसान का केवल कुत्ता ही भोंक कर अपनी सहानुभूति प्रकट करता है.

लोगों के साथ कुत्ता खेतिहर का बैठा था
चलते सिपाही को देखकर खड़ा हुआ,
और भौंकने लगा,
करुणा से बन्धु खेतिहर को देख देख कर। —नये पत्ते

निराला के व्यंग्य का सृजनात्मक महत्व है, क्योंकि जहां एक ओर उनके व्यंग्य समाज के विद्रूप के प्रति अरुचि और घृणा जगाते हैं वहीं साथ ही दलित, शोषित, उत्पीड़ित जीवन के प्रति प्रेम और सहानुभूति का वातावरण निर्मित करते हैं।

निराला जी का व्यंग्यकार आरम्भ से ही सजग रहा है। उनकी 'परिमल' की आरम्भिक रचनाओं म भी व्यंग्य की प्रवृत्ति पर्याप्त मात्रा में पाई जाती है। यह बात अवश्य है कि आगे 'कुकुरमुत्ता' और 'नये पत्ते' काल की कविताओं में वह अधिक तीखा हो गया। 'परिमल' की 'भिक्षुक' कविता में भिक्षुक' और उसके दीन बच्चों का करुण चित्र प्रस्तुत करने के बाद कवि ने अंतिम पंक्तियों में सारी समाज व्यवस्था पर कैसा करारा व्यंग्य किया है

चाट रहे जूठी पत्तल वे कभी सड़क पर खड़े हुए,
और झपट लेने को उनसे कुत्ते भी हैं अड़े हुए।

'विधवा' कविता में विधवा की दयनीय दशा का चित्रण करते हुए निरालाजी उसे—'दलित भारत की ही विधवा है' कहकर भारत की समाज-व्यवस्था पर करारा व्यंग्य करते हैं।

'महाराज शिवाजी का पत्र' में गुलाम बने हुए भारतीयों पर कैसा चुभता

व्यंग्य इन पंक्तियों में प्रकट हुआ है :

काफ़िर तो कहते न होंगे कभी तुम्हें वे
विजित भी न होगे तुम यों' गुलाम भी नहीं ?
कैसा परिणाम यह सेवा का !—
क्षोभ भी न होगा तुम्हें मेवा का महाराज !

इस प्रकार निराला का व्यंग्य उनके हृदय से निकली सच्ची भाव-धारा है, जो कहीं हास्य की फुलझड़ी छोड़कर, कहीं घृणा की नाक सिकोड़ कर समाज के विद्रूप को मृत्युदण्ड देती है। मेरीडिथ ने व्यंग्यकार को जो समाज का कूड़ा-कर्कट साफ कर देने वाला (Scavenger) कहा है, वह बात निराला पर पूर्णतः चरितार्थ होती है। अपनी अपूर्व व्यंग्य शक्ति से निराला एक महान् समाज-द्रष्टा कलाकार थे। उनका व्यंग्य न केवल समाज के विकृत और असंगत आलम्बनों के प्रति हास्य और घृणा जगाता है, अपितु शोषित, पीड़ित और दलित वर्ग के प्रति प्रेम और सहानुभूति जगाता हुआ करुणा-सिक्त भी करता है। कहा भी गया है कि व्यंग्य लेखक में प्यार और घृणा दोनों होनी चाहियें। क्योंकि अन्याय और असत्य के प्रति उसके मन में घृणा होती है, और न्याय तथा सत्य के प्रति अनुराग होता है :— The satirist must love and hate For what impels him to write is not less the hatred of wrong and injustice than a love of the right and just

—Notes On English Verses Satire : Humbert Wolfe.

: ३ :

नारी-सौन्दर्य और प्रेम (शृङ्गार रस)

आलम्बन : छायावादी सौन्दर्यानुभूति के कवि निराला की सौन्दर्य-दृष्टि अत्यन्त सयमित और पवित्र है। निराला का काव्य दार्शनिक एव आध्यात्मिक गध से परिपूर्ण होने के कारण उसमे नारी सौन्दर्य के मादक-मासल ऐन्द्रिक चित्र नही हैं, चटकीले और गहरे रग उन्होने नही भरे हैं, उन्होने तो हल्के रगो से सात्विक परिधानो में अपनी सौन्दर्य प्रतिमाओ का विन्यास किया है। इस दृष्टि से वे छायावाद के ही प्रसाद और पन्त से भिन्न हैं। पन्त मे सुन्दरम् की ललक अधिक है, जबकि निराला ने केवल सुन्दरम् पर बहुत कम दृष्टि डाली है। प्रसाद की मादकता और शारीरिक मोहकता भी निराला के सौन्दर्य-सृजन मे नही है। निराला ने नारी-सौन्दर्य का अत्यल्प और अति सूक्ष्म चित्रण किया है। उनके सौन्दर्य-शर जिगर को बीधने वाले नही, जिगर के पार नही जाते, बल्कि हृदय को कोमलता से स्पर्श करते हैं।

सयम और सात्विकता की कोमलता के ही कारण कवि अपनी पुत्री सरोज के यौवन सौन्दर्य का चित्रण भी सफलतापूर्वक कर गया। 'सरोज-स्मृति' मे पिता द्वारा किया गया पुत्री का रूप-वर्णन विश्व साहित्य मे बेजोड उदाहरण है। अपनी पुत्री सरोज के यौवनागम का चित्रण निराला-जैसा प्राणवान् पिता-कवि ही कर सकता था। पक्तियाँ देखिए :

धीरे-धीरे फिर बढ़ा चरण,
बाल्य की केलियों का प्रागण
कर पार, कुंज-तारुण्य सुघर
आयी, लावण्य-भार थर-थर
काँपा कोमलता पर सस्वर
ज्यों मालकौश नव वीणा पर :
नैश स्वप्न ज्यों तू मन्द मन्द
फूटी ऊषा जागरण छन्द,
× × ×

फूटा कैसा प्रिय कंठ-स्वर
माँ की मधुरिमा व्यंजना भर
हर पिता-कंठ की दृप्त-धार
उत्कलित रागिनी की बहार !

सूक्ष्म उपमान-योजना तथा प्रतीक-विधान के सहारे निराला जी सांकेतिक सौन्दर्य-चित्र प्रस्तुत करते हैं। उपर्युक्त पंक्तियों में सात्विकता का गुण विद्यमान है। यह तो था पिता द्वारा पुत्री का सौन्दर्य-चित्रण, जिसमें सात्विकता रहनी ही थी। पर अन्यत्र भी निराला ने सर्वत्र अपने सौन्दर्य-चित्रण में ऐसे ही सूक्ष्मता, सात्विकता, संयम और सांकेतिकता की विशेषता बनाये रखी है। निराला जी का विधुर जीवन भी सम्भवतः इस मर्यादा और संयम का कारण रहा होगा। 'अनामिका' की 'प्रेयसी' कविता में भी नारी-सौन्दर्य का ऐसा ही सांकेतिक प्रतीकात्मक चित्रण हुआ है :

घेर अङ्ग-अङ्ग को
लहरी तरंग वह प्रथम तारुण्य की,
ज्योतिर्मयी-लता सी हुई मैं तत्काल
घेर निज तरु-तन।
खिले नव पुष्प जग प्रथम सुगंध के,
प्रथम वसन्त में गुच्छ-गुच्छ।
दृगों में रंग गई प्रथम-रश्मि,—
चूर्ण हो विच्छुरित
विश्व-ऐश्वर्य को स्फुरित करती रही
बहु रंग-भाव भर
शिशिर-ज्यों पत्र पर कनक-प्रभात में,
किरण-सम्पात से। —प्रेयसी

नारी के इस ज्योतिर्मय तरुण-लावण्य को देखने के लिए युवाकुल पतंगों और भौंरों की तरह टूट पड़ने लगा :

दर्शन-समुत्सुक युवाकुल पतंग-ज्यों
विचरते मंजु मुख
गुंज-मृदु अलि-पुंज
मुखर-उर मौन वा स्तुति-गीत में हरे।

स्पष्ट है कि यहाँ भी कवि सौन्दर्य और उसके प्रभाव का सांकेतिक वर्णन ही कर रहा है। 'कम्पित प्रतनु-भार', 'ज्योतिर्मयी-लता-सी' आदि सौन्दर्य-संकेतों से आगे कवि मांसल वर्णन की नहीं बढ़ा है। कोई कह सकता है कि यह स्वयं नारी (प्रेयसी) द्वारा स्व-सौन्दर्य का वर्णन है, इसलिए इसमें अधिक उद्दामता और भड़कीला-चटकीला रूप प्रकट नहीं हो सकता था। यह ठीक है, पर निराला के समस्त सौन्दर्य-वर्णन में

यह स्पष्ट प्रमाणित होता है कि मादक मांसल ऐन्द्रिक चित्र प्रस्तुत करना उनकी प्रवृत्ति न थी।

'गीतिका' के '(प्रिय) यामिनी जागी' गीत में प्रातःकाल रात्रिजागरण के आरोपण से निराला ने सद्य जाग्रत नायिका का जो सौन्दर्य-चित्र प्रस्तुत किया है, वह उनकी सौन्दर्य-दृष्टि का कमाल है। अलसाये हुए दृग कमल, अरुण मुख, पीठ, गर्दन, भुजाओं और उर पर बिखरे खुले बालों की शोभा, बालों से आवृत्त मुख की सूर्य-दीप्ति, उसकी दृग मुद्राएँ, मराल गति—कुल मिलाकर सौन्दर्य का अपूर्व चित्रण है। इस सौन्दर्य में भी वासना की मुक्ति उसे उदात्त बना रही है :

(प्रिय) यामिनी जागी।
अलस पंकज-दृग अरुण-मुख तरुण-अनुरागी।
खुले केश अशेष शोभा भर रहे,
पृष्ठ-ग्रीवा-बाहु-उर पर तर रहे,
बादलों में घिर अपर दिनकर रहे,
ज्योति की तन्वी, तड़ित-द्युति ने क्षमा माँगी।
हेर उरपट, फेर मुख के बाल,
लख चतुर्दिक चली मंद मराल,
गेह में प्रिय-स्नेह की जय-माल,
वासना की मुक्ति, मुक्ता त्याग में तागी। —गीतिका

निराला का स्मृति-शृंगार :

प्रथममिलन 'प्रेयसी' कविता में प्राकृतिक सुषमामय वातावरण में सौन्दर्य का सौन्दर्य से जो प्रथम मिलन कवि ने चित्रित किया है, वह बड़ा ही मनोहारी है। प्रेयसी नायिका इस मधुर मिलन का स्मरण करती हुई बताती है कि वह उष काल था, प्राची के दृगों में उषा की प्रथम किरण नाच रही थी, लता-मंजरियाँ मधुर वासंती चुम्बन से खिल उठी थीं, विहग बालिकाएँ प्रणय के मिलन-गीत गा रही थीं। ऐसे सुन्दर प्रात समय में नायिका उपवन विहार कर रही थी। वहीं सहसा सुन्दर प्रिय से प्रथम साक्षात्कार हुआ। पाँव ठिठक गए, अपलक दृष्टि दौड़ गई प्रिय के अंग-प्रत्यंग से झड़ते अमृत का पान करने को। प्राण हारे गए। ज्योति छवि से ज्योति-छवि मिल गई :

याद है, उष काल,
प्रथम किरण-कम्प प्राची के दृगों में,
प्रथम पुलक फुल्ल चुम्बित वसन्त की
मञ्जरित लता पर
प्रथम विहग-बालिकाओं का मुखर स्वर
प्रणय-मिलन-गान,

प्रथम विकच कलि वृन्त पर नग्न-तनु
प्राथमिक पवन के स्पर्श से कांपती,
× × ×
मिली ज्योति-छवि से तुम्हारी
ज्योति-छवि मेरी,
नीलिमा ज्यों शून्य से;
बंधकर मैं रह गई; —प्रेयसी

निराला-काव्य में प्रणय का स्मृति रूप बहुत प्रकट हुआ है। इसी से बहुधा सौन्दर्य का अतीत स्मृति के रूप में चित्रण पाया जाता है। 'राम की शक्ति पूजा' में राम के हतोत्साहित हृदय में सीता की स्मृति—वह मिथिला का प्रथम मिलन—बिजली-सा कौंध जाता है। इस प्रथम साक्षात्कार का बड़ा ही मनोमुग्धकारी चित्रण कवि ने किया है। पर यहाँ की परिस्थिति का अनुरोध ऐसा है कि सौन्दर्य अत्यन्त सूक्ष्म, सांकेतिक एवं गरिमामय रूप में चित्रित हुआ है, ऐन्द्रिक मादकता ग्रहण नहीं कर सका। राम के नैराश्य-घन-अंधकार-हत हृदय में जानकी की कुमारिका छवि बिजली सी कौंध गई। जनकवाटिका में लतान्तराल प्रथम मिलन याद आया। नयनों का नयनों से गुप्त, मौन, किन्तु प्रिय संभाषण हुआ। वह पलकों का उत्थान पतन, वह कंपन, अनुराग, पराग का वह झरना, वह नव-जीवन परिचय! कितनी मधुरिमा है उसके स्मरण में!!—

ऐसे क्षण अन्धकार घन में जैसे विद्युत
जागी पृथ्वीतनया-कुमारिका-छवि, अच्युत
देखते हुए निष्पलक, याद आया उपवन
विदेह का,—प्रथम स्नेह का लता अन्तराल मिलन
नयनों का—नयनों से गोपन—प्रिय संभाषण,
पलकों का नव पलकों पर प्रथमोत्थान,—पतन,
कांपते हुए किसलय,—झरते पराग-समुदाय,
गाते खग-नव-जीवन-परिचय,—तरु मलय-वलय,
ज्योतिः प्रपात स्वर्गीय,—ज्ञात छवि प्रथम स्वीय,
जानकी-नयन-कमनीय प्रथम कंपित तुरीय।

सीता के इस कमनीय स्मरण से राम का तन सिहर उठा, क्षण भर को मन भुलावे में पड़ गया और एक बार फिर शिवधनुष तोड़ने को हस्त-भुजाएं फड़क उठीं। स्पष्ट है कि यह सौन्दर्यानुभूति अत्यन्त उदात्त है। यह केवल मानसिक उद्वेलन और शारीरिक उत्तेजना प्रकट नहीं करती, यह उदात्त कर्मशीलता और कर्त्तव्य-भावना जगाती है, उदात्त उत्साह का संचार करती है। 'भावी पत्नी के प्रति' (गुंजन) कविता में पंत जी का काल्पनिक प्रथम मिलन भी कुछ-कुछ ऐसा ही कमनीय एवं सूक्ष्म है, पर उसमें उदात्त उत्साह संचारित करने की शक्ति नहीं है। वह शारीरिक और मानसिक भोगपरक उत्तेजना-मात्र प्रकट कर रह जाता है। तुलना के लिए

पंत जी की कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत की जाती है :

> अरे वह प्रथम मिलन अज्ञात, विकम्पित मृदु-उर पुलकित गात,
> सशंकित ज्योत्स्ना-सी-चुपचाप, जड़ित-पद, नमित-पलक-दृग-पात
> पास जब आ न सकोगी प्राण ! मधुरता में-सी मरी अजान,
> लाज की छुई-मुई-सी म्लान, प्रिये, प्राणों की प्राण !
>
> —गुंजन

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, निराला-काव्य मे स्मृतिरूप प्रणय का बहुत मादक *वर्णन मिलता है। निराला के विधुर जीवन से उसकी यथार्थ संगति बैठती है।* 'यमुना के प्रति' कविता मे भी कवि ने कृष्ण-गोपियो के अतीत प्रेम का मार्मिक स्मरण किया है। इस स्मरण मे अभाव की एक मीठी-सी टीस और मादकता भर देने वाली प्रणय-वेदना पाई जाती है। कवि यमुना से पूछता है कि आज वे नटनागर श्याम, वह वंशीवट कहाँ चले गये ? वह युवतियों का चपल चरणों से झनझनाता पनघट अब कहाँ है ? वे श्याम के वियोग में तप्त नारी-शरीर कहाँ हैं ? वे चपल कटाक्ष, वे प्रिय के साथ वन-वन आँख-मिचौनी के दिन, वह स्वच्छन्द गल-बाँही-नृत्य, 'मुग्ध-रूप का वह क्रय-विक्रय', वह 'दृढ़ यौवन का पीन उभार' सब कहाँ सपना हो गया ?—

> वह कटाक्ष चंचल यौवन-मन
> वन-वन प्रिय-अनुसरण-प्रयास,
> वह निष्पलक सहज चितवन पर
> प्रिय का अचल अटल विश्वास;
> अलक-सुगंध-मदिर सरि-शीतल
> मन्द अनिल, स्वच्छन्द प्रवाह,
> वह विलोल हिल्लोल चरण, कटि,
> भुज, ग्रीव का वह उत्साह;
> मत्त भृंग-सम संग-संग सम-
> तारा मुख-अम्बुज-मधु-लुब्ध
> विरल विलोड़ित चरण-अंक पर
> शरण-विमुख नूपुर-उर क्षुब्ध,
> वह संगीत विजय-मद-गर्वित
> नृत्य-चपल अधरों पर आज,
> वह अज्ञात-इंगित मुखरित-मुख
> कहाँ आज वह सुखमय साज ?
>
> —परिमल

'यमुना के प्रति' कविता मे निराला जी ने स्मृति के सहारे जो मादक चित्र और वर्णन प्रस्तुत किये हैं, वे इस कविता को स्मृति-शृंगार की बेजोड़ रचना सिद्ध करते हैं। भाव और कला का इसमे चरम उत्कर्ष पाया जाता है। इस स्मृति-शृंगार

का भी अपना अलग माधुर्य है। इसे हम न तो शृंगार का संयोग पक्ष कह सकते, और न ही पूर्ण वियोग शृंगार। कुछ अभाव की टीस होने के कारण यह वियोग की ओर उन्मुख तो है, पर है इसका माधुर्य विलक्षण।

न जाने कितने 'स्मृति-चुम्बनों' से निराला ने अपने जीवन का रिक्त प्याला भरा है! 'परिमल' की 'स्मृति चुम्बन' कविता से ऐसा आभास मिलता है कि किशोरावस्था और यौवन के प्रथमप्रपात की तरंग में किसी किशोरी और युवती ने कवि के 'यौवन-वन की शकुन्तला' बनकर कवि के जीवन का प्याला चुम्बनों से भर दिया था। कवि को इस पर नाज है और इसी से उसने स्पष्ट घोषणा की कि जब-जब भी जीवन में यह प्याला रिक्तता का अनुभव करेगा, तो उन मादक चुम्बनों की स्मृति उसे तत्काल भर देगी :

रोम रोम में समाई जहाँ
चुम्बन की लालसा,
ज्योति नयन-ज्योति से
पलकों से पलक मिले,
अधरों से अधर
कण्ठ कण्ठ से लगा दूसरा,
बाहुओं से बाहु,
प्राण प्राणों में मिले हुए।
यौवन के वन की वह मेरी शकुन्तला—
× × ×
चुम्बन से जीवन का प्याला भर दे गई।
रिक्त जब होगा, भर देगी तत्काल स्मृति
काल के बंधन में जीवन यह जब तक है। —परिमल

कवि के स्मृति-शृंगार या स्मृति-चुम्बन का यही रहस्य है। अपने रिक्त विधुर जीवन के प्याले को वह बरसों स्मृति-चुम्बनों से भरता गया।

निराला का प्रणय सांकेतिक एवं मूक प्रणय है। स्मृति-शृंगार में तो मूकता रहती ही है, अन्यत्र भी निराला ने कहना-सुनना अधिक पसन्द नहीं किया है। दो हृदय आकर्षित हो गये, सम्बन्ध स्थापित हो गया, निकट आ गए—बस यही बहुत है। प्राणों का प्राणों से मिलन होने पर मौन छा जाता है, वाचालता नहीं रहती, मौन मधु हो जाता है

बैठ लें कुछ देर,
आओ, एक पथ के पथिक से।
मौन मधु हो जाय
भाव मूकता की आड़ में
मन सरलता की बाढ़ में
जल-बिन्दु-सा बह जाय। —परिमल

एक-दो जगह निराला ऐन्द्रिकता की ओर बढ़े अवश्य, पर तुरन्त उनका चेतन स्फुट होते हुए अवचेतन पर हावी हो गया और निराला के सौन्दर्य-चित्र को मर्यादा के अनुशासन में ले आया है। सद्यः स्नाता युवती के भरे-उभरे पृथु स्तनों पर निराला की दृष्टि जमी ही थी कि चेतन पुकार उठा और तोबा बुलवा कर छोड़ी : 'नये पत्ते' की 'स्फटिक शिला' कविता से ये पंक्तियाँ देखिये :—

वर्तुल उठे हुए उरोजों पर अड़ी थी निगाह
चोंच जैसे जयंत की
नहीं जैसे कोई चाह देखने की मुझे ओर
कैसे भरे दिव्य स्तन, हैं ये कितने कठोर !
मेरा मन कांप उठा, याद आई जानकी।
कहा, तुम राम की; कैसे दिये हैं दर्शन !   —नये पत्ते

निराला ने प्राचीन परम्परा का नख-शिख वर्णन नहीं किया। उनका सौन्दर्य-वर्णन सामूहिक रूप में है, अंग-प्रत्यंग वर्णन-रूप में नहीं। कहीं-कहीं तो वे एक अंग का वर्णन करने में ही सामूहिक रूप-छवि दर्शा देते हैं। कवि परम्परागत उपमानों से अंग-प्रत्यंग वर्णन नहीं करता। वह तो समूह-सौन्दर्य का सूक्ष्म भावपूर्ण वर्णन करता है। उसकी अभिव्यंजना-पद्धति बड़ी प्रभावी है। नव 'बहू' का सौन्दर्य प्रकट करता हुआ कवि कहता है :

(१) 'सौन्दर्य-सरोवर की वह एक तरंग'
(२) 'वह नव वसन्त की किसलय-कोमल लता,
किसी विटप के आश्रय में मुकुलिता
किन्तु अवनता।
उसके खिले कुसुम संभार
विटप के गर्वोन्नत वक्ष-स्थल पर सुकुमार,'
(३) 'पुष्प है उसका अनुपम रूप'
(४) 'जलती अन्धकारमय जीवन की वह एक शमा है।' आदि

'पंचवटी प्रसंग' (परिमल) में शूर्पणखा अपने सौन्दर्य का जो वर्णन करती है, उसमें कुछ-कुछ नखशिख-वर्णन की पद्धति अवश्य पाई जाती है। इस वर्णन में अधिकतर उपमान परम्परागत ही हैं, कुछ पंक्तियाँ देखिए :

मीन-मदन फांसने को बंसी सी विचित्र नासा—
फूलदल तुल्य कोमल लाल ये कपोल गोल,
चिबुक चारु और हँसी बिजली-सी—
योजन-गंध-पुष्प-जैसे प्यारा यह मुखमण्डल,
देख यह कपोत-कंठ,
बाहु-वल्ली कर-सरोज

उन्नत उरोज पीन—क्षीण कटि—
नितम्ब भार—चरण सुकुमार—
गति मंद मंद,
छूट जाता धैर्य ऋषि-मुनियों का;

उद्दीपन :—निराला जी ने दो-चार कविताओं में प्रकृति के माध्यम से यौवन और प्रणय की प्रथम लहरों के संचार का बड़ा सुन्दर चित्रण किया है। 'परिमल' का 'दूत, अलि, ऋतुपति के आए'—ऐसा ही गीत है जिसमें वर्षा के प्रथमपयोद के आगमन से प्रकृति में नवयौवन और मादकता के संचार का वर्णन किया गया है और साथ ही जिससे नारी में यौवन सौन्दर्य, प्रणय की प्रथम लहर और लज्जा का संचार भी सांकेतिक है। कुछ पंक्तियाँ देखिए :—

दूत, अलि, ऋतुपति के आए।
काँप उठो विटपो, यौवन के
प्रथम कम्प मिस, मन्द पवन से,
सहसा निकल लाज चितवन के
भाव-सुमन छाए।
बही हृदय-हर प्रणय-समीरण,
छोड़ छोर नभ-ओर उड़ा मन,
रूप-राशि जागी जगती-तन,
खुले नयन, भाए। —परिमल

इसी प्रकार 'भ्रमरगीत' कविता में भ्रमर की अनुभूति के माध्यम से निराला जी ने सौन्दर्य, यौवन और प्रणय का बड़ा सुन्दर प्रतीकात्मक चित्रण किया है। भ्रमर और पुष्प का यह महामिलन संयोग शृंगार का भव्य चित्र प्रस्तुत करता है। जब कली खिली, नवयौवन-गंध-मधु का संचार हुआ तो आवाहन पाकर भँवरा गुंजार करता हुआ मँडराने लगा। नग्न कांति और नव लाज देख वह मुग्ध हो गया और तब एक प्राण हो दोनों मिल गए। मौन-मुग्ध मिलन हो गया।—

मिल गए एक प्रणय में प्राण,
मौन, प्रिय, मेरा मधुमय गान!
खिली थीं जब तुम, प्रथम प्रकाश,
पवन-कम्पित नव यौवन-हास,
वृन्त पर टलमल उज्ज्वल प्राण,
नवल यौवन कोमल नव ज्ञान,
सुरभि से मिला आयु आह्वान,
प्रथम फूटा प्रिय मेरा गान!
× × ×

मनोरजन में गु जनलीन,
लुब्ध आया, देखा आसीन
रूप की सजल प्रभा मे आज
तुम्हारी नम्नकांति, नव लाज,
मिल गए एक प्रणय मे प्राण । —परिमल

निराला जी ने प्रकृति प्रणय के रूप मे ऐन्द्रिक शृंगार का मादक चित्रण 'जुही की कली' कविता मे किया है। मर्यादा और सयम के कवि का चेतन यहाँ अवचेतन से पराजित हुआ है। प्रकृति प्रणय के प्रतीक रूप में खुला शारीरिक मिलन, चुम्बन, आलिंगन आदि इसी कविता मे पाया जाता है। पवन प्रिय जुही की खिली कली से खुलकर रति क्रीडा करता है

आई याद कान्ता की कम्पित कमनीय गात,
फिर क्या ? पवन—
उपवन सर सरित गहन गिरि कानन
कु जलता पु जों को पार कर
पहुँचा जहाँ उसने की केलि
कली खिली साथ।
× × ×
नायक ने चूमे कपोल,
डाल उठी बल्लरी की लड़ी जैसे हिंडोल। —परिमल

निर्दय नायक ने सुन्दर सुकुमार देह सारी झकझोर डाली, मारे गोल कपोल मसल डाले। "नम्रमुखी औ हँसी खिली, खेल रग प्यारे सग।"

निराला का उपर्युक्त सौन्दर्य चित्रण और प्रणय प्रकाशन स्वच्छन्द प्रेम का ही परिचायक है। उनका यह स्वच्छन्द प्रेम भी स्वकीया का प्रेम है। परकीया-प्रेम वर्णन निराला ने सभवत कही नहीं किया। निराला-काव्य मे सर्वाधिक मासल और इन्द्रिय उत्तेजक रचना 'गीतिका' का होली वाला गीत है। पर इसमे भी होली-रोली और रतिरग पतिसग ही है—स्वकीया का ही है, परकीया का नहीं

नयनों के डोरे लाल गुलाल भरे, खेली होली !
जागी रात सेज प्रिय पति सग रति सनेह रग घोली,
प्रियकर-कठिन-उरोज परस कस कसक मसक गई चोली,
एक वसन रह गई मन्दहस अधर दशन अनबोली। —गीतिका

निराला के स्वच्छन्द प्रेम का चरमस्थल 'अनामिका' की 'प्रेयसी' कविता मे पाया जाता है, जहा कवि ने जाति और धर्म के बन्धनों को तोड़कर दो उन्मुक्त हृदयों को जोड़ा है। प्राणों की इस एकता के सामने वर्ण-जाति धर्म की सकीर्ण दीवारें कहाँ बाधा बनी रह सकती थीं ?—

दोनों हम भिन्न वर्ण,
भिन्न जाति, भिन्न रूप,
भिन्न धर्म भाव, पर
केवल अपनाव से, प्राणों से एक थे। —प्रेयसी

दिन और रात या पृथ्वी और जल में संभाव्य मिलन-सौन्दर्य-बंधन को तुच्छ एवं संकीर्ण अभिमान से ग्रस्त दुनिया के लोग क्या जानें? गुरुजनों की बाधा की अवहेलना कर प्रिया अपने प्रिय के साथ चुपचाप घर से निकल जाती है

मधुर प्रभात ज्यों द्वार पर आये तुम,
नीड़-सुख छोड़कर मुक्त उड़ने को संग

× × × ×
चल दी मैं मुक्त साथ। —प्रेयसी

वियोग—'प्रिया के प्रति' कविता में निराला जी ने अपनी स्वर्गीया पत्नी के प्रति स्मृतिमय करुण वियोग प्रकट किया है। कवि अपनी पत्नी का स्मरण करता हुआ कहता है कि एक बार यदि उस अज्ञात लोक से तुम आ जाओ, कुछ अपना हाल सुनाओ और हमारा सुनो तो कितना उत्तम हो! कवि को और कोई वासना नहीं, वह तो केवल अपनी स्वर्गगता पत्नी के दर्शन करना तथा हाल जानना और अपना बताना चाहता है। वह दिखाना चाहता है कि वियोग की चिर ज्वाला ने उसके हृदय को कलुषित नहीं किया, अपितु पावन बना दिया है। उसका यह प्रणय कितना पावन, कितना उदात्त, कितना सात्विक है!

एक बार भी यदि अजान के
अन्तर से उठ आ जातीं तुम,
एक बार भी प्राणों की तम
छाया में आ कह जातीं तुम
सत्य हृदय का अपना हाल
कैसा था अतीत वह, अब यह
बीत रहा है कैसा काल।
मैं न कभी कुछ कहता,
बस तुम्हें देखता रहता!
× × × ×
इस वियोग की चिर ज्वाला से
कितना उज्ज्वल हुआ हृदय यह,
कितना पावन हुआ प्रणय यह
मौन दृष्टि सब कहती हाल,
कैसा था अतीत मेरा, अब
बीत रहा यह कैसा काल! —परिमल

प्रकृति का वियोग-उद्दीपनकारी चित्रण 'परिमल' के 'अलि, घिर आये घन पावस के' गीत में प्रकट हुआ है। पावस के मनोमुग्धकारी दृश्य विरहिणी को व्याकुल बना रहे हैं उसकी व्यथा का अवलोकन कीजिए :

अलि, घिर आए घन पावस के।
छोड़ गए गृह जब से प्रियतम
बीते अपलक दृश्य मनोरम,
क्या मैं हूँ ऐसी ही अक्षम,
क्यों न रहे बस के—
अलि, घिर आए घन पावस के। —परिमल

असफल प्रेम का एक अश्रु विगलित चित्र 'परिमल' की 'विफल वासना' कविता में मिलता है। प्रिया ने अपने प्रियतम की स्मृति और प्रतीक्षा में न जाने कितने अश्रुओं और भाव-सुमनों की मालाएँ पिरोईं सजोईं, पर प्रिय निष्ठुर और निर्दय निकला। वह अन्यों के यौवन अर्घ्य में भूल गया। प्रिया ने प्रकृति के आघातों से मुरझा जाने वाले पुष्पों की तरह अपने रूप और यौवन को प्रिय चिन्तन में ही मौन गँवा दिया। फिर भी उसे प्रेम नहीं मिला ? उसका प्रिय दुख का निर्दय देव ही बना रहा :

गूँथे तप्त अश्रुओं के मैंने कितने ही हार
बैठी हुई पुरातन स्मृति की मलिन गोद पर प्रियतम !
× × × ×
छिन्न प्रकृति के निर्दय आघातों से हो जाते हैं
जो पुष्प, नहीं कहते कुछ, केवल रो जाते हैं,
वे अपना यौवन पराग मधु खो जाते हैं,
अंतिम श्वास छोड़ पृथ्वी पर सो जाते हैं।
वैसे ही मैंने अपना सर्वस्व गवाया
रूप और यौवन चिंता में, पर क्या पाया ?
प्रेम ? हाय आशा का वह भी स्वप्न एक था
विकल हृदय तो आज दुःख ही दुःख देखता ! — परिमल

निराला का यह उपर्युक्त प्रेम लौकिक प्रेम ही है। पर निराला काव्य में ऐसे गीत भी अनेक हैं जहाँ लौकिकता अलौकिकताभिन्न-सी प्रतीत होती है। ऐसे गीतों में यह पता करना बड़ा कठिन हो जाता है कि कवि का भाव लौकिक आलम्बन के प्रति व्यक्त हुआ है या अलौकिक के प्रति। अलौकिकता के अभ्यासियों ने तो 'शेफालिका', 'जुही की कली' जैसी प्रकृति चित्रण सम्बन्धी कविताओं में भी अलौकिक प्रणय के संकेत प्राप्त कर लिये। इस खींचा तानी के अलावा भी कई गीतों में लौकिकता अलौकिकता मिली जुली है। 'स्पर्श से लाज लगी' (गीतिका) ऐसा ही गीत है। इसकी प्रारम्भिक पंक्तियाँ लौकिक प्रणय की सी प्रतीत होती हैं, पर वर्तमान पर्यवसान अलौकिकता में है।

स्पर्श से लाज लगी,
अलक पलक में छिपी छलक

उर से नव राग जगी।

× × ×

मधुर स्नेह के मेह प्रखरतर,
बरस गये रस निर्भर भर भर,
उगा अमर अकुर उर-भीतर;
समृति भीति भगी। —गीतिका

निराला का अलौकिक प्रणय प्रेम की सीमा मे रहस्यवाद बन गया है जिसे हमने आगे 'निराला का रहस्यवाद' प्रकरण मे अध्ययन का विषय बनाया है। जहा अलौकिक प्रेम मे श्रद्धा और भक्ति का योग हो गया है, वहां वह भगवद्भक्ति हो गया है जिसे हमने आगे इसी विमर्श मे प्रस्तुत किया है।

- इस दृष्टि से निराला के शृगार वर्णन की एक और बडी विशेषता यह सिद्ध होती है कि उन्होने अपनी अनेक कविताओ मे शृगार के सीमित लौकिक चित्रो को अलौकिक विराट् चित्रों मे परिणत कर दिया, जिससे उनका शृगार-वर्णन कोरा रस वर्णन न रहकर उदात्त शृगार रस बन गया है।
- निराला का सयोग-शृगार ही मुख्यत लौकिक शृ गार का स्पष्ट अनुभव है। विरह को निराला ने अलौकिक प्रणय मे परिणत कर लिया।
- निराला-काव्य मे जयदेव, विद्यापति या रीतिकालीन कवियो के से उद्दाम मांसल शृगार का वर्णन भी विरल है। गीतिका' के होली गीत या 'जुही की कली' के शारीरिक मिलन के चित्र निराला मे बहुत कम है, और उनमे भी साकेतिकता, सयम और दार्शनिकता का ऐसा पुट पाया जाता है कि कही भी शारीरिक या मानसिक स्खलन नही होता। शृगार की दुर्बल भावनात्मक अभिव्यक्ति निराला में कही नही।
- स्मृति-शृ गार का चित्रण निराला के शृगार-वर्णन की ऐसी विशेषता है, जो उन्हें प्रसाद, पत आदि सब कवियो मे विशिष्टता प्रदान करती है।
- यह प्रणय स्वकीया भाव का है। निराला काव्य मे कही पुरुष की ओर से प्रेमप्रकाशन हुआ है, कही नारी की ओर से। पर सर्वत्र स्वकीया भाव है, परकीया कही नही।
- इस प्रणय का आधार रूप-आकर्षण, अनन्यता, अनुनय, प्राणो से प्राणो का मौन मिलन, समर्पण, अगाध तृप्ति और फिर विरह का क्षीण झोका जो अतत स्मृति मे खो जाता है—कुछ ऐसा ही है निराला के प्रणय का क्रम।

: ४ :

निराला के प्रार्थना-गीत

भगवद्भक्ति

निराला में वैराग्य और अध्यात्म-भावना का कारण तत्त्व ज्ञान है। उन्होंने वेदान्त दर्शन का पूर्ण पाचन किया हुआ था। उनके अध्यात्म दर्शन प्रकरण में हम उनकी दार्शनिक दृष्टि पर प्रकाश डाल चुके हैं। इस दार्शनिकता के अतिरिक्त निराला की अध्यात्म-भावना का मनोवैज्ञानिक कारण भी स्पष्ट है। उन्हें अपने व्यक्तिगत जीवन तथा सामाजिक जीवन में अनेक कटुताओं का अनुभव करना पड़ा था। इन वैयक्तिक कुंठाओं एवं सामाजिक विषमता तथा विकृतियों को निराला ने अपनी प्रचण्ड विद्रोही तथा हास्य व्यंग्यात्मक प्रतिक्रिया द्वारा भरसक उखाड़ना चाहा, पर यह प्रपंच तो ऐसा प्रचण्ड पहाड़ बन गया था कि एक व्यक्ति के प्रहारों या हास्य-व्यंग्य के धक्कों से डिग नहीं सकता था। इसी कारण जीवन-भर जूझते रहने पर भी निराला को जीवन-रण में अपनी पराजय स्वीकार करनी पड़ी। ऐसे उद्यमशील कर्मठ व्यक्ति का पराजय के इस अनुभव से खिन्न होकर परोक्ष सत्ता का सहारा चाहना स्वाभाविक ही है। 'अनामिका' की इन पंक्तियों में कवि की कितनी स्पष्ट स्वीकारोक्ति है :

हो गया व्यर्थ जीवन
मैं रण में गया हार।

अपनी प्रिय पत्नी, भाई-बन्धुओं और अन्त में परमप्रिय पुत्री सरोज के असमय निधन ने तो कवि को बिल्कुल हताश कर दिया। कैसी मार्मिक पीड़ा है !

दुख ही जीवन की कथा रही
क्या कहूँ आज जो नहीं कही। —सरोज-स्मृति

वह ऊँचा देवतरु टूट गया, पर भौतिकता की आंधियों या किसी भौतिक प्राणी के झोंकों से भुका नहीं; झुका तो केवल अपने प्रभु के चरणों में, शरण चाही तो उसी परम सत्ता की। देह क्षीण हो गई, गेह जीर्ण है। प्रलय मेघ घिर आये हैं; हाय

चलता नहीं, साथ कोई भी नही देता, इसी से कवि विनत भाव प्रभु की शरण मे उपस्थित होता है। (आराधना, गीत ६२)।

यह झुकना, यह शरणागति किसी अन्य के आगे नही, अपनी ही शक्ति, अपने ही परमात्मरूप के प्रति है, जिसे निराला ने कही शिव, कही शक्ति, कभी कृष्ण और बहुधा राम नाम से पुकारा है। निम्न पंक्तियो मे सहस्रनाम प्रभु का जयगान करता हुआ कवि कहता है

जय अजेय अप्रमेय।
× × ×
गरलकंठ हे अकुंठ
वैठक वैकुंठ धाम।
जय जय शिव, जय विष्णु जिष्णु
शंकर, जयकृष्ण, राम
शतविध नामानुबंध
बाधव हे निराकार। —आराधना ६८।

निराला का यह शतनामानुबन्ध-जयगान बहुदेववाद नहीं,न ही इसे पूर्णत सगुणोपासना कह सकते हैं। वे मुख्यत और मूलत निराकार राम के ही भक्त हैं, यद्यपि दाशरथी राम के प्रति भी उन्होंने अपनी श्रद्धा व्यक्त की है। सच तो यह है कि निराला एक ब्रह्म या परमात्म तत्व के ही साधक हैं, फिर चाहे उसे राम, कृष्ण, शिव, शक्ति आदि किसी नाम से पुकारा जाय और किसी रूप में अनुभवगम्य बनाया जाय।

'आराधना' के एक गीत मे निराला ने राम की कृपा पर विश्वास जताते हुए उसके स्वरूप पर यों प्रकाश डाला है

राम कि हुए तो बने काम, सबरे सारे धन धाम धाम।
पूछा जग ने, यह राम कौन ? बोली विशुद्धि जो रही मौन,
वह जिसके हुए न ड्योढ़-पौन, जो वेदो मे है, सत्य साम।

—आराधना पृ० २०

निराकार के उपासक और अद्वैत दार्शनिक होते हुए निराला ने कबीर आदि सतो की तरह वैष्णवी भक्ति भाव अपनाया। वैष्णव भक्ति के शरणागति, आत्म-निवेदन, नामगुणगान, कीर्त्तन, वदन, सेवा, आत्मनिवेदन आदि कतिपय तत्त्व निराला की भक्तिभावना मे भी पाये जाते हैं। शरण-ग्रहण की आर्त्त आकाक्षा निम्न पंक्तियो मे देखिए

दुरित दूर करो नाथ
अशरण हूँ, गहो नाथ। —अर्चना पृ० ६

कवि अपनी असहाय दशा और प्रभु की शक्ति पर अपार विश्वास जताता हुआ प्रभु से उद्धार की याचना करता है। निराला के अनेक प्रार्थना-गीतों मे पार

करने की अनुपम विनय पाई जाती है :

तरणि तार दो
अपर पार को
खे-खेकर थके हाथ
कोई भी नहीं साथ। —अर्चना पृ० ७१

× × ×

भवसागर से पार करो हे
गह्वर से उद्धार करो हे।
रहूँ कहाँ मैं ठौर न पाकर
माया का सहार करो हे। —अर्चना ७

कवि निराला ने सतसंग आदि साधनों की याचना भी प्रभु से ही की है। वह निवेदन करता है कि हे प्रभु, मुझे सदा सतसंग दो, असत्य, काम, क्रोध आदि विकारों से मेरा पीछा छूट जाय, ऐसा अमृतरंग भर दो, मोह-माया के बंधन से मुक्ति दिलाओ :

दो सदा सतसंग मुझको
अनृत से पीछा छूटे
तन हो अमृत का रंग, मुझको। —अर्चना

× × × ×

मानव का मन शांत करो हे
काम, क्रोध, मद, लोभ दंभ से
जीवन को एकांत करो हे। —अर्चना पृ० ४८

नाम-कीर्तन : काम रूप, हरो काम
जपूँ नाम, राम राम। —आराधना पृ० १४

नाम-जाप : कृष्ण कृष्ण राम राम,
जपे हैं हजार नाम। —आराधना पृ० १२

हरिभजन का महत्व स्वीकार करते हुए कवि कहता है :

(१) रहते दिन दीन-शरण भजले, जो तारक सत वह पदरज ले।
(२) हरि भजन करो भू भार हरो। —आराधना पृ० ५१

गुण महिमा गान :

(१) अशरण शरण राम,
काम के छवि-धाम।
ऋषि-मुनि मनोहंस,
रवि वंश-अवतंस,
कर्मरत निश्शंस,
पूरो मनस्काम।

(२) विपदा हरणहार हरि हे करो पार।
प्रणय से जो कुछ चराचर तुम्हीं सार।
तुम्हीं अविनाशी विहग व्योम के देश,
परिमित अपरिमाण मे तुम हुए शेष,
सृष्टि मे दृश्य रस रूप भोजन वेश
फैलकर सिमटकर तुम्हीं हो निर्धार। —आराधना पृ० २१

आत्मनिवेदन सेवा

मेरी सेवा ग्रहण करो हे !
शुद्ध सत्व से क्षण क्षण यह
काष्ठा से रहित शरीर भरो हे ! —आराधना २४

वह अपने प्रभु को अपनी आँखों मे हँसने मन मन्दिर मे बसने और दोनों हाथ थामने को कहता है।

हँसो मेरे नयन, बसो मेरे अयन।
हरो मेरे हरण, भरो मेरे भरण,
चलो मेरे चरण चलो मेरे शयन।
गहो मेरे हिकर, अहो मेरे प्रखर, —आराधना

शरणागति:

चलता नहीं हाथ कोई नहीं साथ
उन्नत विनत नाथ, दो शरण बोधहरण।

निराला ने मध्ययुगीन भक्तों की तरह आत्मभर्त्सना और स्वदोष-कथन नही किया, उन्होंने अधिकतर असहाय दशा का वर्णन करते हुए प्रभु की करुणा जगाई है और उद्धार की याचना की है। निराला की भक्ति भावना में वेदना की अपूर्व तरलता और औदात्य है। यह वेदना व्यक्तिगत सीमा में आबद्ध नही है, विश्वजनीन है, इसीसे इसमे औदात्य की पराकाष्ठा है। कवि अपने प्रभु से दलित मानवता के त्राण की भी याचना करता है। निम्न पंक्तियों में दीनदुखियों के प्रति कवि ने करुणा की पुकार की है—

दलित जन पर करो करुणा।
दीनता पर उतर आये
प्रभु तुम्हारी शक्ति अरुणा।

'दलित जन पर' भगवान की करुणा के आवाहन के साथ कवि ने 'देख वैभव न हो नत सिर' कहकर दीनता के स्वाभिमान को पूरी रक्षा की है। कवि की करुणा भावना भी महादेवी की तरह उदात्त एवं ओजस्विनी बन गई है। कवि की भक्ति-करुणा एक दीन हीन विवश जन की असहाय स्थिति नहीं है, वरन् एक शक्तिशाली मन का शक्तिशाली उद्गार है

देख वैभव न हो नत सिर
समुद्धत मन सदा हो स्थिर

पारकर जीवन निरन्तर
रहे बहती भक्ति-वरुणा ।

निराला की भक्ति-भावना और वदना ईश्वर के प्रति ही प्रकट नही हुई, अपितु शक्ति या जगदम्बा के प्रति भी कवि ने अपने भाव अर्पित किये हैं। भक्ति-भावना के आवेश के साथ ही कवि के निर्भीक व्यक्तित्व का दर्शन निम्न पंक्तियो मे होता है

दे मैं करूँ वरण
जननि, दुखहरण पद राग रंजित मरण ।
भीरुता के बँधे पाश सब छिन्न हो,
मार्ग के रोध विश्वास से भिन्न हों,
आज्ञा, जननि, दिवस निशि करूँ अनुसरण ।
लांछना इन्धन हृदय तल जले अनल,
भक्ति नत नयन मैं चलूँ अविरल सबल
पार कर जीवन प्रलोभन समुपकरण ।
प्राण सघात के सिंधु के तीर मैं,
गिनता रहूँगा न, कितने तरग हैं,
धीर मैं ज्यों समीरण करूँगा तरण ।

यहाँ एक ओर जगदम्बा के प्रति कवि का 'भक्तिनत नयन' समर्पण है, दूसरी ओर अपार निर्भीकता, बाधाभेदक अडिग विश्वास, लोकापवाद को दग्ध कर देने वाली प्रचण्ड अन्तर्ज्वाला तथा जीवन के सार्थिक भौतिक प्रलोभनो के प्रति वितृष्णा आदि उसके व्यक्तित्व के ओजस्वी गुणो का पदय स्वर भी विद्यमान है।

कवि ने सुरसरि (गगा) स्तवन तथा वाणी वदना भी की है। सरस्वती का अमर पुत्र वीणापाणि के प्रति अपनी भाव आरति अर्पित करता हुआ कहता है

नील वसन शुभ्रतर ज्योति से खिला हुआ तन,
एक तार से मिला चराचर से शाश्वत मन ।
हस चरणतल तैर रहा है लघूर्मियों पर
सुनता हुआ तीव्र मृदु-भकृत वीणा के स्वर ।
सामगीत गाये आर्यों ने तुम्हें मान कर,
किया समाहित चित्त ज्ञान घन तुम्हें जानकर ।
एक तुम्हारी अर्चा सहज ऋचाओं से की,
चरणों पर पुष्पों की माला की अजलि दी । —देवी सरस्वती

निराला पर बगाल की शक्ति पूजा, स्वामी विवेकानन्द की काली-वदना और माँ-स्तवन तथा रवीन्द्र रवीन्द्र की विश्वरूपा देवी सुन्दरी की अर्चना का प्रभाव पड़ा था। यही कारण है कि उनके वन्दना गीतों मे देवी, मां, श्यामा, सरस्वती, दुर्गा, विश्व

रूपा विराट् सौन्दर्य प्रतिमा और यहा तक कि भारती भारत मां आदि विविध मातृ रूपों की वदना पाई जाती है और इन सब विविध नामो मे एक प्रकार का अभेद है। निराला का काव्य किसी सम्प्रदाय विशेष का आग्रह नही करता, इसी से उसमे मा के विविध रूप वदना गीत मिलते हैं। कई बार जन्मभूमि भारती, भारती देवी सरस्वती और कविता सरस्वती मे अभिन्नता दिखाई देती है। निराला के अनेक गीतो मे देवी, मा के प्रति आत्मनिवेदन, पुकार, दैन्य प्रदर्शन और शरणागत भाव व्यजित हुआ है। नव-सृजन की आकाक्षा वाला कवि जब शक्ति श्यामा से सहार की पुकार करता है, तो उसका यह आवाहन भी भक्ति का ही प्रतिरूप है

एक बार बस और नाच तू श्यामा।
अट्टहास, उल्लास, नृत्य का होगा जब आनन्द,
विश्व की इस वीणा के टूटेंगे सब तार,
बद हो जायेंगे ये जितने कोमल छन्द,
सिधु राग का होगा जब आलाप । — परिमल

इस कविता में श्यामा के विराट् रूप की कल्पना स्वामी विवेकानन्द के 'नाचुक ताहाते श्यामा' के आधार पर ही है। इस प्रचण्ड शक्ति आवाहन के सिवा निराला के सभी वदना गीतो म भक्त का दैन्य प्रकाशित हुआ है। कवि की आर्त पुकार है मैं असरण हू, आश्रयहीन हू जन्म जन्म के चक्करो से बहुत थका हुआ हू जीवन समर मे पराजित हू, अकेला पड गया हू, रात्रि का अधकार छाया है रास्ते म काटे बिछे हैं, ऐसे मे भी तुम्हारा द्वार नहीं मिला तो कहा जाऊँगा, कौन मेरा हाथ गहेगा ?—

कितने बार पुकारा,
खोल दो द्वार, बेचारा।
मैं बहुत दूर का थका हुआ,
चल दुखकर असमय रुका हुआ,
आश्रय [redacted] आश्रयवासिनी,
मेरी हो तुम्हीं सहारा। —गीतिका

आरंभिक 'परिमल'-काल से ही कवि निराला मातृ भक्ति करता आया है। ससार के दुख-दैन्य से क्षुब्ध सत निराला मातृ चरणो मे लोक हिताय नत है। उसकी प्रार्थनाओ मे विश्व मानव के उर-कलुष भेदन और तम हरण कर ज्ञान की ज्योतिमय निर्झरिणी प्रवाहित करने और जग को ज्योतिर्मय जगमग कर देने की अनुकम्पा मां स याचित है। यद्यपि 'परिमल' काल से ही कवि की अध्यात्म भक्ति म दैन्य और विनय की भावना पाई जाती है, तथापि 'गीतिका' मे से होती हुई यह दैन्य भावना 'अर्चना' और 'आराधना' मे चरम विकास को प्राप्त हुई। कवि के निजी जीवन की असफलता और शारीरिक आर्तव्य ने इस विकास मे अवश्य योग दिया होगा, पर इसे कवि की

पथ', 'उपल मे उत्पल' तथा कण्टकाकीर्ण मार्ग मे जागरण और बोध की प्राप्ति की है। भक्त तो उन पूत चरणो की शरण पाने के लिए हजार बार मरण का वरण करने को प्रस्तुत है

मरा हूँ हजार मरण
पाई तब चरण शरण —आराधना

परिमल' की आरम्भिक प्रार्थना में कविने विश्व मगल की जो प्रार्थना की थी कि प्ररी ओ किरणमयी परासत्ता, जग जग के प्रज्ञान अधकार को चीरती हुई मन्द मन्द चरण गति से इस धरती पर उतरो और इस चराचर विश्व को ज्योतिर्मय कर दो, इसमे नव जीवन भर दो—वही भावना अत तक बनी रही। 'अर्चना' और 'आराधना' के प्रार्थनापरक गीतो मे विश्व मगल की आकाक्षा और भी प्रखर हुई है, कवि स्वसाधना मे कही नहीं लगा। इस प्रकार निराला की भक्ति भावना कबीर, मीरा और तुलसी की अन्तरग दैन्य भावना से ओतप्रोत होती हुई भी परहिताय है। उसम नवयुग की उदार आध्या त्मिकता का बल है और आलम्बन (आराध्य) का विस्तार है। वह किसी प्रकार की सकीर्ण साम्प्रदायिकता को नहीं छूती।

: ५ :

राष्ट्रीय भावना

(देशप्रेम देशभक्ति)

निराला सच्चे राष्ट्रकवि कहे जा सकते हैं। जननी जन्मभूमि के प्रति उनके मन में अगाध श्रद्धा और प्रेम का भाव भरा था। निराला की राष्ट्रीयता को राजनीतिक संकीर्णता छू भी नहीं सकी थी, वह विशुद्ध सांस्कृतिक आधार लिये है। दलबंदी या एकांगिता से परे उन्होंने उदार राष्ट्रीयता का गान गाया। स्वामी विवेकानन्द आदि आधुनिक युग के मनीषियों की अद्वैतवादी आध्यात्मिक विचारधारा ने निराला की राष्ट्रीय भावना में किसी प्रकार की प्रादेशिक, धार्मिक, जातिगत साम्प्रदायिकता नहीं आने दी।

आधुनिक युग मे हमारी राष्ट्रीय भावना का यथार्थ जीवन मे भी क्रमिक विकास हुआ था। उन्नीसवीं शताब्दी मे उसका मुख्य स्वरूप सामाजिक एव धार्मिक पुनरुत्थान था, राजनीतिक संघर्षशीलता कुछ बाद मे आई। हिन्दी साहित्य मे भारतेन्दु युग सामाजिक एव धार्मिक जागरण के साथ हिन्दू राष्ट्रीयता की सीमा मे बधा था। निराला जी ने 'महाराज शिवाजी का पत्र' लिखकर इसी अतीत दृष्टिमूलक राष्ट्रीयता का परिचय दिया है। इस ऐतिहासिक पत्र की रचना से निराला को हिन्दुत्व की संकुचित भावना का प्रचारक मानना भूल होगी। वस्तुत यह एक ऐतिहासिक तथ्य की स्वीकृति है। जिस प्रकार शिवाजी की वीरता का बखान करने वाले भूषण कवि को तत्कालीन युग-संदर्भ मे पूर्णत राष्ट्र कवि कहा जाता है, उसी प्रकार निराला द्वारा उस युग के सत्य को प्रकाशित करने मे किसी प्रकार का अनौचित्य नही।]

निराला की राष्ट्रीयता के मुख्य रूप निम्नलिखित हैं—१ सांस्कृतिक नव जागरण, २ अतीत गौरव-गान, और ३ राष्ट्र-वदन।

१ सांस्कृतिक नव जागरण—निराला जी ने देश की सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक एव आर्थिक विकृतियो का बोध कराकर अपनी अनेक कविताओ मे सांस्कृतिक नवोत्थान का मार्ग प्रशस्त किया। आर्थिक विषमता, वर्गभेद (भिक्षुक, तोड़ती पत्थर

आदि) विधवा की दयनीयता ('विधवा' कविता), ग्रामीण शोषण ('डिप्टी साहब', कुत्ता भौंकने लगा आदि), धार्मिक ढकोसला ('दान' आदि), झूठी नेतागिरी (महगू महगा रहा) आदि अनेक सामाजिक विकृतियों को अपने व्यंग्य बाणों का लक्ष्य बनाया। उन्होंने 'तुलसीदास' जैसी रचनाओं में भारत की सांस्कृतिक संपदा और नारी की महानता का चित्रण किया। इस प्रकार नया युग-बोध जगाकर निराला ने देश के सांस्कृतिक नवोत्थान में महत्त्वपूर्ण योग दिया। निराला की राष्ट्रीयता का यह सांस्कृतिक आधार अत्यन्त पुष्ट है। वर्तमान के अध पतन का चित्रण निराला ने किसी प्रकार की नैराश्य भावना से प्रेरित होकर नहीं किया। वे तो अपने व्यंग्य बाण छोड़कर इस पतन को मृत्युदण्ड देने का ही उत्साह दर्शाते हैं।

निराला का अतीत दर्शन

२ अतीत के सांस्कृतिक वैभव का गौरव-गान—निराला की राष्ट्रीय भावना का दूसरा रूप है अतीत का गौरव-गान। वस्तुत अतीत को निराला ने प्रेरणा का स्रोत माना है। वह न तो अतीत के अंध अनुयायी थे, और न अतीत के अंधे विरोधी। अतीत की असफलताओं और कमजोरियों से सजगता प्राप्त करने के साथ साथ वह अतीत की सबलताओं और गौरव-गाथा को वर्तमान के लिए प्रेरणादायक समझते थे। वर्तमान से असंतुष्ट होकर निराला ने अतीत में झांकी लगाई थी। इसके मूल में राष्ट्रप्रेम की पूत भावना ही थी। 'अनामिका' की 'दिल्ली' कविता में उन्होंने महाभारत काल से लेकर मुगलों के राज्यकाल तक देश के इतिहास का सिंहावलोकन किया है। अतीत के गौरव, वैभव एवं शौर्य शक्ति का स्मरण करते हुए कवि ने वर्तमान अधोगति पर खिन्नता प्रकट की है। उनके सम्मुख बार बार यही प्रश्न उठता है—'क्या यह वही देश है ?'

'महाराज शिवाजी का पत्र' कविता भी अतीत की प्रेरणाओं से पूर्ण है। शिवाजी के इस ऐतिहासिक पत्र के माध्यम से निराला जी ने देशवासियों में स्वदेश, धर्म और स्वजाति के प्रति स्वतन्त्रता, स्वाभिमान एवं कर्त्तव्य भावना जगाई है। एक तरह से जयसिंह राय साहब, राय बहादुर आदि बने हुए उन अंग्रेजी पिट्ठुओं का प्रतीक भी बन गया है जो अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए विदेशियों का साथ देते थे और अपने देशवासियों से द्रोह करते थे। निम्न पंक्तियों में अतीत का यह संदर्भ वर्तमान के लिए भी कितना प्रेरणाप्रद बना हुआ है, देखिए :

(१) हाय री दासता !
पेट के लिए ही
लड़ते हैं भाई भाई—

(२) उठती जब नग्न तलवार है स्वतन्त्रता की,
कितने ही भावों से
याद दिला घोर दुःख दारुण परतन्त्रता का,
फूंकती स्वतन्त्रता निज मन्त्र से

कौन यह सुमेरु
रेणु रेणु को न हो जाय
इसीलिए दुर्जय है हमारी शक्ति ।
(३) जितने विचार आज मारते तरंगे हैं
साम्राज्यवादियों की भोग-वासनाओं में,
नष्ट होंगे चिरकाल के लिए ।
हिन्दुस्तान मुक्त होगा घोर अपमान से,
दासता के पाश कट जायेंगे । —परिमल

भारतवासियों के मन से दासता, आत्महीनता और पराजय-भावना को दूर करने वाली एक और कविता 'जागो फिर एकबार' भी बहुत महत्वपूर्ण है । इसमें कवि ने गुरु गोविन्द सिंह की वीरता का स्मरण दिलाकर भारतीयों को सचेत किया है । ओजपूर्ण उत्साह की व्यंजक निम्न पंक्तियाँ देखिए :

सवा सवा लाख पर
एक को चढ़ाऊँगा,
गोविन्दसिंह निज
नाम जब कहाऊँगा ।
किसने सुनाया यह
वीर-जन मोहन अति
दुर्जय संग्राम-राग
शेरों की मांद में
आया है आज स्यार—
जागो फिर एक बार ! —परिमल

'तुलसीदास' और 'राम की शक्तिपूजा' में भी निराला ने अतीत इतिहास से प्रेरणा ग्रहण की है । 'तुलसीदास' में आरम्भ में जो सांस्कृतिक पतन का चित्र खींचा गया है, वह तुलसी के युग का भी सत्य था और वर्तमान युग का भी । भारतीय आकाश का 'प्रभापूर्ण शीतलच्छाया सांस्कृतिक सूर्य' अस्त हो रहा है । उसके स्थान पर विधर्मी-विदेशी संस्कृति का धूमकेतु टिमटमाने लगा है । इस सांस्कृतिक पतन को देखकर कवि आन्दोलित हो उठता है । वह संकल्प करता है

करना होगा यह तिमिर पार—
देखना सत्य का मिहिर द्वार—
बहना जीवन के प्रखर-ज्वार में निश्चय । —तुलसीदास

'राम की शक्ति पूजा' निराला की अत्यन्त प्रौढ़ रचना है । ओजगुण-युक्त उदात्त भावों की उसमें मार्मिक व्यंजना हुई है । निराला जी ने राम-कथा के माध्यम से आधुनिक युग की निराशा, दानवी प्रवृत्तियों से पराजय, संघर्ष और विजयाकांक्षा का

चित्र प्रस्तुत किया है। राम सत् प्रवृत्तियों और भारतीयता के प्रतीक हैं, रावण आसुरी प्रवृत्तियों और विदेशी शक्ति का प्रतिरूप है। रावण को परास्त करने के लिए राम द्वारा शक्ति-साधना भारत को शक्तिशाली बनाने की आकांक्षा की ही परिचायक है। राम की शक्ति-पूजा भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के प्रत्येक सेनानी की शक्ति-पूजा है। राम के बदन में शक्ति का प्रवेश राष्ट्र की आत्मा में शक्ति-प्रवेश के समान है। शक्ति वरदान देती है :

होगी जय, होगी जय, हे पुरुषोत्तम नवीन।

कवि का अतीत दर्शन बड़ा प्रेरणाप्रद है। 'यमुना के प्रति', 'खण्डहर', 'सहस्राब्दि,' जागरण' आदि और भी कई कविताओं में निराला जी ने अतीत वैभव की झाँकी प्राप्त की है। यमुना को देखकर कवि ने आह भरते हुए उस रस-भरे वैभवशाली पुरातन की याद की और यमुना से पूछ ही तो लिया :

बता कहाँ अब वह वंशीवट ?
कहाँ गए नटनागर श्याम ?
चल चरणों का व्याकुल पनघट
कहाँ आज वह वृन्दा धाम ? —यमुना के प्रति

भारत का अतीत वैभव जो आज खण्डहर बन गया है, अपनी दुखी दास्तान सुनाता हुआ कहता है :

"आर्त भारत ! जनक हूँ मैं
जैमिनि पतंजलि-व्यास ऋषियों का
मेरी ही गोद पर शैशव विनोद कर
तेरा है बढ़ाया मान
राम-कृष्ण-भीमार्जुन-भीष्म नरदेवों ने।
तुमने मुख फेर लिया,
सुख की तृष्णा से अपनाया है गरल,
हो बसे नव छाया में,
नव स्वप्न ले जगे,
भूले वे मुक्त प्रान, साम-गान, सुधा-पान।"—खण्डहर के प्रति

उपर्युक्त पंक्तियों में कवि ने भारतीयता को भूलकर विदेशी सभ्यता और संस्कृति में बसने पलने वाले उन भारतीयों पर चोट की है जो अपनी स्वतंत्रता को भुला बैठे हैं।

'सहस्राब्दि' कविता में भी ऐतिहासिक चेतना और राष्ट्रीय उद्बोधन का स्वर पाया जाता है। अतीत भारतीय संस्कृति का इसमें भव्य आख्यान है :

आ रही याद
वह उज्जयिनी, वह निरवसाद

प्रतिभा, यह इतिवृत्तात्म कथा,
वह आर्य धर्म, वह शिरोधार्य वैदिक समता,
पाटलीपुत्र की बौद्धों का अस्तरूप,
× × ×
आ रही याद
वह विजय शकों से अप्रमाद,
वह महावीर विक्रमादित्य का अभिनन्दन,
वह प्रजाजनों का आवर्तित स्पन्दन वन्दन,
वह सजी हुई कलशों से अकलुष कामिनियाँ,
करतीं वर्षित लाजों की अजलि मानिनियाँ,
तोरण तोरण पर · · ।
—अपरा

'परिमल' की 'जागरण' कविता में कवि ने भारत को ज्ञानालोक का प्रथम देश, सभ्यता का प्रथम विकास स्थल बताया है और उसकी आश्रम सभ्यता का मनोरम चित्र खींचा है

हरित पत्रों से ढके, श्यामल छाया में वे,
शांति के निबिड क्रोड, मलयज सुवास स्वच्छ
पुष्प रेणु पूरित वे आश्रम-तपोवन,
प्रांगण विभूति का—बालिका की क्रीडा भूमि—
कल्पना की धन्य गोद—सभ्यता का प्रथम विकास स्थल ।
—परिमल

इस प्रकार निराला ने भारत के अतीत इतिहास और संस्कृति की उपनिषद काल से लेकर पराधीनता युग तक की शृंखला को अपने अतीत दर्शन में प्रकट किया है । उसने इस अतीत गान से समाज और राष्ट्र को नव बोध प्रदान किया है । भारतीय संस्कृति के अमरपुत्रों, ऋषियों राम कृष्ण भगवान् बुद्ध, रविदास जैसे संतों, तुलसीदास जैसे भक्तो-कवियों, छत्रपति शिवा जी, गुरु गोविन्दसिंह सरीखे वीर नेताओं का स्मरण कर कवि ने उनके प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की है ।

निराला का यह अतीत गौरव-गान और वर्तमान अधोगति पर खिन्नता का भाव किसी प्रकार की निराशा या पराजय भावना का द्योतक नहीं । वह तो भविष्य के आशापूर्ण स्वर्ण विहान का सूचक है । उन्होंने वर्तमान के पतन को व्यंग्य बाणों से धराशायी किया है । दुखित, दलित, शोषित और असहाय किसानों, मजदूरों और बेकसों के प्रति अपनी करुणा और सहानुभूति जताकर पीड़ित मानवता को बल दिया है । अतीत के गौरव गान से वर्तमान की आत्महीनता, पराजय, निष्क्रियता और जड़ता को दूर धकेल दिया और देशवासियों में स्वाभिमान और आत्मगौरव जगाया । यही नहीं, उन्होंने विप्लव का गान भी गाया और 'बादल राग,' 'जागो फिर एक बार'

जैसी रचनाओं में वे क्रांति के वाहक भी बने हैं। निराला का अतीत गौरव-गान वर्तमान को आस्था, विश्वास और सबलता प्रदान करता है।

(३) देश प्रेम और देशभक्ति

निराला की राष्ट्रीयता का एक अत्यन्त भव्य रूप है राष्ट्र-वन्दना। यद्यपि उनके अतीत-गान और सांस्कृतिक वर्णन के मूल में भी देश-प्रेम की उत्कट भावना ही निहित है, तथापि निराला के वंदना-गीतों में तो मां भारती के प्रति प्रेम और श्रद्धा की स्पष्ट अभिव्यक्ति हुई है। इन गीतों में कवि के अन्तःकरण की उदात्त और पवित्र राष्ट्र-प्रेम-भावना प्रकट हुई है। इन गीतों में निरालापन है। एक ओर तो देश के भौगोलिक मान-बिन्दुओं के प्रति अनुराग प्रकट किया गया है, दूसरी ओर इनमें देश की सांस्कृतिक निधि की ओर संकेत मिलता है। निराला का 'भारति जय विजय करे' गीत तो राष्ट्रगान बनने की स्पर्द्धा करता प्रतीत होता है .

भारति, जय विजय करे !
कनक-शस्य-कमलधरे !
लंका पदतल शतदल,
गर्जितोर्मि सागर-जल
धोता शुचि चरण युगल
स्तव कर बहु अर्थ-भरे !
तरु-तृण-वन लता वसन,
अंचल में खचित सुमन;
गंगा ज्योतिर्जल कण
धवल धार हार गले !
मुकुट शुभ्र हिम-तुषार,
प्राण प्रणव ओंकार,
ध्वनित दिशाएँ उदार,
शतमुख शतरव मुखरे !

—गीतिका

भारत माँ का कितना भव्य, कितना पवित्र देवी-रूप चित्रित है ! निराला के वन्दना-गीत दो रूपों में मिलते है। उपर्युक्त वन्दना-गीत भारत-वन्दना का द्योतक है। निराला के वन्दना गीतों का एक दूसरा रूप वह है, जहाँ उन्होंने अपने आराध्य देव अथवा आराध्या शक्ति माँ से भारत-कल्याण की प्रार्थनाएँ की हैं। ऐसे गीत भारत-वन्दना के गीत भले ही न कहे जायें, पर उनमें देशोत्थान की प्रबल भावना होने से उन्हें भी उच्च कोटि के राष्ट्र गीत कहा जा सकता है। 'गीतिका' के कई गीत ऐसे ही हैं। एक गीत की कुछ पंक्तियाँ देखिए :

जागो जीवन धनिके !
विश्व पण्य प्रिय वणिके !
दुःखभार भारत तम केवल

: ६ :

निराला का प्रकृति-चित्रण

(प्रकृति-अनुराग)

आधुनिक युग मे छायावादी कवि प्रकृति के प्रति एक नया दृष्टिकोण लेकर आये। जड प्रकृति सचेतन हो उठी। कवियों ने प्रकृति का मानवीकरण किया। कही वह सहचरी और प्रेयसी बनी, कही उसका विराट रूप भी बनाया गया। प्रकृति उपदेशिका बनी, दूतिका बनी, और कही उसे मानवीय सवेदनाओं से परिपूर्ण मानवीय रूप प्रदान किया गया। प्रकृति मानव के लिए असीम जिज्ञासा का विषय भी बनी और उसका समाधान भी। प्रकृति ने ही कवियो को अनेक सौन्दर्यवर्द्धक सुन्दर उपमान दिये।

यों तो निराला-काव्य मे प्रकृति प्रयोग के अनेक रूप पाये जाते हैं, पर उनके प्रकृति प्रयोग मे तीन प्रवृत्तियाँ मुख्य रूप से लक्षित होती हैं—एक है प्रकृति का मानवीकरण, दूसरी प्रकृति मे रहस्य दर्शन और तीसरी वर्षा आदि ऋतु वर्णन।

मानवीकरण—कुछ विद्वान् प्रकृति के मानवीकरण की प्रवृत्ति को पश्चिम की देन बताते हैं। इसमे सन्देह नहीं कि हिन्दी छायावादी कवियों ने प्रकृति के चेतनगत मानवीकरण मे अग्रेजी के रोमाटिक कवियो से भी प्रेरणा ग्रहण की, किन्तु भारतीय साहित्यकारों के लिए यह कोई नई प्रवृत्ति नहीं है। हमारे यहाँ वैदिक साहित्य से ही प्रकृति के मानवीकरण और उसमें देवत्व शक्तियों के आरोपण एव परोक्ष सत्ता के दर्शन की प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं। निराला आदि छायावादी कवियो ने भारतीय प्राचीन परम्परा और नई पाश्चात्य प्रवृत्ति दोनों को अपना कर प्रकृति के नाना विध प्रयोग अपने काव्य मे प्रस्तुत किये। इनकी लेखनी से प्रकृति सजीव हो उठी, उसमें मानवीय स्पदन, सवेदनशीलता और सक्रियता उत्पन्न हुई। निराला की 'जुही की कली' मुग्धा नायिका बनी हुई प्यारे से अठखेलियाँ करती है, 'सध्या सुन्दरी' एक सुदरी रमणी की भाँति अथवा परी सी मथर गति से धरती पर उतरती है:

(१) अम्बर पथ से मन्थर सध्याश्यामा,
उतर रही पृथ्वी पर कोमल पद भार। —गीतिका पद ६७

(२) दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह सध्या-सुन्दरी परी सी
धीरे धीरे धीरे,
तिमिराञ्चल में चचलता का नहीं कहीं आभास,
मधुर-मधुर हैं दोनों उसके अधर,—
किन्तु जरा गभीर—नहीं है उनमे हास विलास। —परिमल

इस मानवीकरण की एक बडी विशेषता यह है कि वह प्रकृति दृश्य को खडित नही करता, अपितु उसे उभारता ही है। सध्या का उपर्युक्त दृश्य सुन्दरी के आरोप से विकृत नहीं हुआ बल्कि उसमे और भी सुन्दर रग भर गया है।

'जुही की कली', 'सध्या सुन्दरी' आदि कविताओ मे निराला ने स्पष्टत मानवीय आरोपण कर प्रकृति का स्पष्ट मानवीकरण किया है। किन्तु अनेक कविताओ में बिना मानवीय आरोपण के भी प्रकृति को सचेतन रूप प्रदान किया गया है। प्रकृति मानवीय कार्य व्यापार मे सलग्न है। रवि के अस्ताचल गमन पर सध्या के दृग आँसुओं से छल छल हो उठते हैं

डूबा रवि अस्ताचल
सध्या के दृग छल छल —गीतिका पद ७३

'वन कुसुमो की शय्या' कविता मे कवि ने शरद व शिशिर को दो बहनों के रूप मे चित्रित किया है कमल पत्र सोती हुई इन बहनो को पखा झल रहे थे

सोती हुई सरोज अक पर
शरत् शिशिर दोनों बहनों के
सुख विलासमय शिथिल अग पर
पदम-पत्र पखा झलते थे।

इसी प्रकार चाँदनी बहन मालती की भोली सूरत पर मुग्ध होकर उसके गोल कपोल चूम लेती है•

उधर मालती को चटकी जो कली
चांदनी ने झट चूमे उसके गोल—कपोल,
और कहा, बस बहन, तुम्हारी सूरत कैसी भोली।

समस्त प्रकृति गतिशील और सचेष्ट है। सूर्य, किरणें, वायु, विहग सभी निरतर कार्यरत हैं

पड़े थे नींद मे उनको प्रभाकर ने जगाया है।
किरन ने खोल दीं आँखें, गले फिर फिर लगाया है।

हवा ने हल्के झोंकों से प्रसूनों की महक भर दी,
विहगों ने द्रुमों पर स्वर मिलाकर राग गाया है। —बेला पृ० ७४

प्रकृति के यथातथ्य चित्रण में भी निराला ने प्रकृति को सजीव रूप प्रदान किया है। प्रकृति का आलंकारिक आवरणरहित आलम्बन रूप में यथातथ्य वर्णन निम्न पंक्तियों में देखिए : आकाश में काले-काले बादल छाये हैं, हवा के झोंकों से सरसी के कमल झूम रहे हैं। बेला और जुही झूमती हुई कानों में बातें कर रही हैं, मोर नाच रहे हैं और पीपल के पेड़ मस्ती में झूम रहे हैं :

छाए आकाश में काले काले बादल देखे,
झोंके खाते हवा में सरसी के कमल देखे।
कानों में बातें बेला और जुही करती थीं,
नाचते मोर, झूमते हुए पीपल देखे। —बेला, पृ० ३०

मस्तानी वर्षा ऋतु का यह साधारण वर्णन है, पर फिर भी कितना आह्लादक है। यहाँ कवि ने परम्परागत प्राचीन वस्तु-वर्णन की पद्धति नहीं अपनाई, अपितु वस्तु-वर्णन में भी सजीवता और चित्रात्मकता उत्पन्न कर दी है। हवा से झूमती बेला और जुही का कानों-कानों में बातें करना सचेतनता का द्योतक तो है, पर स्पष्ट मानवीय आरोपण यहाँ नहीं है।

वसंत ऋतु में भी प्रकृति सचेतन होकर झूम उठी है। लताएं किसलय दल के सुन्दर परिधान धारण कर प्रिय वृक्षों से गले मिल रही हैं। भ्रमर अपनी मधुर गुंजार से और कोयल अपनी सुरीली तान से वातावरण को सरस बना रही है। वन-उपवन में महा हर्ष और नवोत्कर्ष छा गया है

सखि वसंत आया।
भरा हर्ष वन के मन,
नवोत्कर्ष छाया।
किसलय-वसना नव वय-लतिका,
मिली-मधुर प्रिय-उर तरु पतिका।
मधुप-वृन्द बंदी—
पिक-स्वर नभ सरसाया। —गीतिका, गीत २।

निराला ने प्रकृति का शृंगारिक अर्थात् शृंगार रस-व्यंजक चित्रण बहुत किया है। 'जुही की कली', 'शेफालिका', 'अमरगीत', जैसी कई रचनाओं में तो आद्यन्त शृंगार रस ध्वनित हुआ है, पर अनेक रचनाओं में बीच बीच में शृंगारिक संकेत मिलते हैं। उपर्युक्त वसंत वर्णन में भी नव-वय-लतिकाओं का प्रिय वृक्षों से आलिंगन-रत होना शृंगार रस का ही संकेत देता है। प्राचीन आचार्यों ने प्रकृति के ऐसे शृंगारिक वर्णनों को शृंगार रसाभास कहकर निम्न कोटि में रखा था, पर यह

उनकी प्राप्ति हो थी। ऐसे वर्णन एक ओर तो प्रकृति का सुन्दर चित्र प्रस्तुत करते हैं, दूसरी ओर परिनिष्ठित शृंगार रस की अनुभूति कराते हैं। 'जुही की कली' की तरह पल्लव-पर्यंक पर सोती हुई शेफाली का प्रिय से मिलन होता है, 'आशा की प्यास एक रात में भर जाती है, सुबह को शेफाली झर जाती है।'

'परिमल' की 'भ्रमरगीत' कविता में भ्रमर की अनुभूति के माध्यम से निराला जी ने सौन्दर्य, यौवन और प्रणय का बड़ा सुन्दर प्रतीकात्मक चित्रण किया है। भ्रमर और पुष्प का यह महा मिलन संयोग शृंगार का भव्य चित्र प्रस्तुत करता है। जब कली खिली, नव यौवन गंध मधु का सवार हुआ तो आवाहन पाकर भंवरा गुंजार करता हुआ मँडराने लगा। प्रिया की नग्न कांति और नवलाज देख वह मुग्ध हो गया और तब एक प्राण हो दोनो मिल गए।

छायावादी कवियो ने प्रकृति के कोमल और सुन्दर रूप का चित्रण अधिक किया है, उसके परुष कठोर, ओजपूर्ण या भयावह रूप का दर्शन बहुत कम हुआ है। छायावादी कवियों में निराला की इस दृष्टि से भी यह एक विशिष्टता है कि उन्होंने प्रकृति के उपर्युक्त मधुर-कोमल रूपों के अतिरिक्त उसकी ओजस्वी आत्मा के भी दर्शन किये हैं। वस्तुतः प्रकृति के ओजपूर्ण वर्णन में निराला का अपना ओजस्वी व्यक्तित्व ही मुखर हो उठा है। 'बादल राग' कविता में बादल भव्य क्रांति का प्रतीक है। इस कविता म निराला ने प्रकृति को जन-जीवन में नई चेतना जगाने का माध्यम बनाया है। इन पंक्तियों में बादल के साथ निराला के ओजस्वी व्यक्तित्व का उद्घाटन हो रहा है

ऐ स्वच्छन्द !
मद चंचल-समीर रथ पर उच्छृंखल !
ऐ उद्दाम !
अपार कामनाओं के प्राण।
बाधा रहित विराट !
ऐ विप्लव के सावन !

'अनामिका' की 'नाचे उस पर श्यामा' कविता में निराला जी ने प्रकृति का प्रलय रूप भयावह चित्रण किया है, कुछ पंक्तियाँ देखिए

अधकार उद्गीरण करता अंधकार घनघोर अपार
महाप्रलय की वायु सुनाती श्वासों में अगणित हुंकार।
इस पर चमक रही है रविनिभ विद्युज्ज्वाला बारम्बार
फेनिल लहरें गरज चाहतीं करना गिरि-शिखरों को पार।
भीम घोष गंभीर, अतल धस टलमल करती धरा अधीर
अनल निस्सरण देह भूमितल, चूर हो रहे अचल शरीर। —अनामिका

प्रकृति से उपदेश-संदेश ग्रहण—'तुलसीदास' में प्रकृति को शक्ति या प्रेरणा

की प्रतीक बनाया है। ऐसी सशक्त प्रेरणामयी प्रकृति मानव को जीवन के अनेक सन्देश और उपदेश प्रदान करती है। प्रकृति के माध्यम से उपदेश देना बहुत प्राचीन कवि-परिपाटी है। छायावादी कवियों ने तो प्रकृति को मानवीय रूप प्रदान कर उसके अनेक क्रिया-कलापों से जीवन के सन्देश प्राप्त किये हैं। पंत जी के हँसमुख प्रसून हँस हँस कर जीवन बिताने और जग के आँगन को सौरभ से भर जाने का सन्देश देते हैं, महादेवी के बादल और पुष्प भी आत्मोत्सर्ग की प्रेरणा देते हैं। निम्न गीत में निराला जी ने झरने की गतिशीलता को मानव के लिए प्रगति पथ पर गाते हुए बढ़ते जाने की प्रेरणा का द्योतक बताया है

ऊँचा रे, नीचे आता,
जीवन भर भर दे जाता,
गाता, वह केवल गाता—
"बन्धु, तारना तरना।" —गीतिका गीत १००

प्रकृति से सहानुभूति

'रास्ते के फूल से' नामक कविता में निराला जी ने प्रकृति के असहाय और दयनीय रूप का भी दर्शन किया है। दलित कुसुम की व्यथा को कवि ने सहृदयता के साथ सुना है। यही नहीं कवि, ने स्वार्थी और निर्दय मानव को भी फटकारा है जिसने अपना स्वार्थ सिद्धकर पुष्प को धरती पर फेंक दिया :

"ढके हृदय में स्वार्थ लगाए ऊपर चन्दन,
करते समय नवीश नदिमो का अभिनंदन,
तुम्हें चढ़ाया कभी किसी ने था देवी पर,
× × × ×
किन्तु देखकर तुम्हें जरा से जर्जर,
फेंक दिया पृथ्वी पर तुमको
रखे हुये हृदय में अपने उस निर्दय ने पत्थर ?"

उद्दीपन रूप में प्रकृति-प्रयोग—निराला जी ने अपनी दो चार कविताओं में प्रकृति के माध्यम से यौवन और प्रणय की प्रथम लहरों के संचार का बड़ा सुन्दर चित्रण किया है। 'परिमल' की 'दूत, अलि, ऋतुपति के आए' ऐसा ही गीत है जिसमें वर्षा के प्रथमपयोद के आगमन से प्रकृति में नव यौवन और मादकता के संचार का वर्णन किया गया है और साथ ही जिससे नारी में यौवन, सौन्दर्य, प्रणय की प्रथम लहर और लज्जा का संचार भी सांकेतिक है। कुछ पंक्तियाँ देखिए—

दूत, अलि, ऋतुपति के आये।
काँप उठो विटपो यौवन के
प्रथम कम्प मिस, मन्द पवन से,
सहसा निकल लाज चितवन के भाव सुमन छाये।

बही हृदय-हर प्रणय-समीरण
छोड़ छोर नभ-ओर उड़ा मन,
रूप-राशि आयी जगती-तल, खुले नयन आये। —परिमल

प्रकृति का वियोग उद्दीपनकारी चित्रण भी 'परिमल' के 'अलि, घिर आये घन पावस के' गीत मे प्रकट हुआ है। पावस के मनोमुग्धकारी दृश्य विरहिणी को व्याकुल बना रहे हैं :

अलि घिर आये घन पावस के।
छोड़ गये गृह जब से प्रियतम
बीते अपलक दृग्य मनोरम,
क्या मैं हूं ऐसी ही अक्षम, क्यों न रहे बस के—
अलि घिर आये घन पावस के। —परिमल

'गीतगुंज' और 'आराधना' में कवि ने जो चौमासा-वर्णन के गीत रचे है, वे भी वियोग-उद्दीपनकारी हैं। उनका उदाहरण हम ने ऋतु-वर्णन मे प्रस्तुत किया है।

पृष्ठभूमि के रूप मे प्रकृति-चित्रण :

वातावरण या पृष्ठभूमि-निर्माण के लिये भी प्रकृति का प्रयोग काव्य मे--विशेषतः प्रबन्ध काव्य मे किया जाता है। प्रसाद जी ने कामायनी मे ऐसे प्रयोगो की अद्भुत क्षमता प्रकट की है। किसी विशेष भाव, घटना या परिस्थिति के प्रभाव को अतिशय बनाने मे अनुकूल वातावरण सृजन का बहुत महत्त्व है। निराला ने 'राम की शक्ति-पूजा', तथा 'तुलसीदास' मे विशेष रूप से प्राकृतिक वातावरण का सफलतापूर्वक चित्रण किया है। दुर्दन्त रावण और उसकी शक्ति के कारण आशंका और भय का यह वातावरण कितना भाव और परिस्थिति के अनुकूल है, निम्न पंक्तियों मे देखिए—

है अमा निशा, उगलता गगन घन अन्धकार;
खो रहा दिशा का ज्ञान; स्तब्ध है पवन-चार;
अप्रतिहत गरज रहा पीछे अम्बुधि विशाल;
भूधर ज्यों ध्यानमग्न, केवल जलती मशाल।
स्थिर राघवेन्द्र को हिला रहा फिर-फिर संशय
रह-रह उठता जग-जीवन में रावण-जय भय।

—राम की शक्तिपूजा

निराला ने अपनी अनेक कविताओं मे प्रातःकाल और संध्या के सुन्दर वातावरण चित्रित किये हैं। 'अनामिका' की 'दान' कविता के आरम्भ मे उन्होने प्रात.काल का जो सुन्दर सजीव वातावरण चित्रित किया है, वह उनके प्रकृति-निरीक्षण और वर्णन-शक्ति का परिचय देता है। वसंत ऋतु का स्वच्छ वातावरण हसता-हसता कोमल-कोमल गति से उदित हुआ है। तरुणियों के समान चचल किरणें चारो ओर फैल गई हैं। खिलती हुई सुन्दर कलियों और किसलयों के रक्ताभ और रसपूर्ण अधरो पर नई

उमंग से भर कर भौंरे मडराने लगे हैं। प्राणों को तृप्त कर देने वाली त्रिविध समीर डोल रही है। भाव-भंगिमा और चंचलता से भरी क्षीण-कटि गोमती नदी नवल नटी बनी नृत्यरत है। कवि ऐसे सुहावने प्रात समय में सैर को निकला है।

'सध्या सुन्दरी' में सध्या के मानवीकरण के अतिरिक्त सध्या के शांत वातावरण का सजीव चित्रण भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं। कवि ने 'सिर्फ एक अव्यक्त शब्द-सा "चुप चुप चुप" है गूँज रहा सब कहीं'-जैसी पंक्तियों से सध्या का शांत-स्निग्ध वातावरण उपस्थित कर दिया है। इसी प्रकार 'वनवेला', 'नर्गिस' आदि लम्बी कविताओं में भी सध्या और रात्रि के सुन्दर वातावरण का चित्रण हुआ है।

अलंकरण-हेतु प्रकृति प्रयोग (Metaphorical use of Nature)

उपमान रूप में प्रकृति-प्रयोग काव्य साहित्य के जन्म से ही आरम्भ हो गया था। प्राचीन साहित्य में भी कवियों ने प्रकृति से सुन्दर उपमानों को चुनकर अपने भाव तथा वस्तु-वर्णन को अलंकृत किया है। आधुनिक कवियों ने एक ओर तो प्रकृति से नवीन उपमानों का चयन किया, दूसरे परम्परामुक्त उपमानों का भी नवीन ढंग से प्रयोग किया। प्रकृति के उपमानगत प्रयोग में जहाँ रूपक उपमा, उत्प्रेक्षा आदि सादृश्यमूलक अलंकारों की योजना हुई है, वहाँ प्रतीक रूप में भी प्रकृति की सुन्दर और प्रभावी योजना की गई है। छायावादी कवियों की अभिव्यक्ति सांकेतिक अधिक होने से उन्होंने प्रतीक विधान, रूपकातिशयोक्ति, अन्योक्ति, समासोक्ति आदि का बहुत सहारा लिया है। निराला-काव्य से एक उदाहरण प्रतीक-योजना का देखिए —

उनके बाग में बहार,
देखता चला गया।
कैसा फूलों का उभार
देखता चला गया। —बेला पृ० ३७

यहाँ बाग शरीर का प्रतीक है, बहार यौवन के निखार का और फूल अंगों के प्रतीक हैं। इन प्राकृतिक प्रतीकों की योजना से सौन्दर्य-चित्रण प्रभावी हो गया है। 'अणिमा' में वार्द्धक्य से हताश कवि कह उठता है—

मैं अकेला।
आ रही मेरे गगन की सान्ध्य वेला।

यहा गगन जीवन का तथा सध्या वृद्धावस्था का प्रतीक है। 'कुकुरमुत्ता' में निराला ने गुलाब को उच्च वर्ग का तथा कुकुरमुत्ता को सर्वहारा वर्ग का प्रतीक बनाया है। इस प्रकार की प्रतीक-योजना कवि द्वारा प्रकृति के मानवीकरण का ही अंग है। 'कुकुरमुत्ता' की तरह 'कण', 'अनुताप', 'बादल' आदि अनेक कविताओं में अन्योक्ति शैली का सफल निर्वाह हुआ है।

इसी सांकेतिक शैली में निराला ने सावयव रूपकों का भी सफल प्रयोग किया है। तुलसीदास' में तुलसी युग की सांस्कृतिक अवस्था को स्पष्ट करने के लिए उन्होंने सध्या का रूपक बाँधा है।

प्रकृति के प्रतीकात्मक चित्रण द्वारा कवि ने जीवन की अभिव्यक्ति अनेक कविताओं में की है। सच तो यह है कि कवि की कोई भी अनुभूति बिना प्रकृति का सहारा लिये मानस पटल से नहीं उतरती। अनामिका की 'उक्ति' कविता में ग्रीष्म काल के दग्ध दाह और लू आँधियों के पश्चात् सजल मेघमाला के क्षितिज पर प्रकट होने का जो प्रतीकात्मक चित्रण या रूपक बाँधा है, वह दग्ध जीवन को नव आशा-सवलित करने के लिए ही है

जला है जीवन यह आतप में दीर्घकाल,
सूखी भूमि, सूखे तरु, सूखे सिक्त आल बाल,
बंद हुआ गुंज, धूलि धूसर हो गए कुंज,
किन्तु पड़ी व्योम उर बन्धु, नील मेघ माल। —अनामिका

ऐसी समासोक्तियों या प्रतीकात्मक प्रस्तुत योजनाओं से निराला की सैकड़ों रचनाएँ भरी पड़ी हैं।

निराला के कतिपय नवीन प्राकृतिक उपमान देखिये—विधवा की दीन और उपेक्षापूर्ण अवस्था को स्पष्ट करने के लिए निराला कहते हैं—"वह टूटे तरु की छुटी लता-सी दीन"। 'तुलसीदास' में एक सादृश्य चित्र देखिए—

बिखरी छूटीं शफरी अलकें,
निष्णात नयन नीरज पलकें।

बिखरी और छूटी अलकों के लिए मछली की उपमा नई है, नेत्रों के लिए कमल परम्परायुक्त उपमान ही है।

अमूर्त का मूर्त्त विधान भी आधुनिक काल की एक विशेषता है। निराला को यौवन मद की बाढ़ नदी-सी और जीवन प्रात समीर-सा लघु प्रतीत होता है। 'स्मृति' को उन्होंने 'सुप्त वृन्तों की कलियाँ' कहा है। स्मृति उषा के समान सुप्त पलकों (भावों) पर कोमल हाथ फेर कर जगा देती है—

ऊषा-सी क्यों तुम कहो द्विदल
सुप्त पलकों पर कोमल हाथ
फेरती हो ईप्सित मंगल,
जगा देती हो नहीं प्रभात। —स्मृति (परिमल)

'पंचवटी प्रसंग' में लक्ष्मण अपनी गृहहीन लक्ष्यहीन दशा की तुलना सलिल-प्रवाह में बहते शैवाल-जाल से करता है। निराला को प्रेयसी का रूप तरल तरंग-सा या ज्योतिर्मयी लता-सा प्रतीत होता है, कपोल कुसुम दल से, आँखें कमल सी, मन परिमल-सा और उर सरिता-सा लगता है। प्रकृति के ये उपमान कितने भव्य हैं!।

प्रकृति में रहस्य-दर्शन—निराला ने प्रकृति के माध्यम से अपनी दार्शनिक एवं आध्यात्मिक भावनाओं को व्यक्त किया है। अद्वैत दर्शन के उद्‌गाता निराला ने जड़-चेतन सबको एक ही प्राण सत्ता से अनुप्राणित अनुभव किया है। प्रकृति में विराट्-

उमंग से भर कर भौंरे मडराने लगे हैं। प्राणों को तृप्त कर देने वाली त्रिविध समीर डोल रही है। भाव भंगिमा और चचलता से भरी क्षीण कटि शोभती नदी नवल नटी बनी नृत्यरत है। कवि ऐसे सुहावने प्रात समय में सैर को निकला है।

'सध्या सुन्दरी' में सध्या के मानवीकरण के अतिरिक्त सध्या के शात वातावरण का सजीव चित्रण भी कम महत्त्वपूर्ण नही। कवि ने 'सिर्फ एक अव्यक्त शब्द सा "चुप चुप चुप" है गूँज रहा सब कही'-जैसी पंक्तियों से सध्या का शात-स्निग्ध वातावरण उपस्थित कर दिया है। इसी प्रकार 'वनबेला', 'नर्गिस' आदि लम्बी कवितायों म भी सध्या और रात्रि के सुन्दर वातावरण का चित्रण हुआ है।

अलकरण हेतु प्रकृति प्रयोग (Metaphorical use of Nature)

उपमान रूप में प्रकृति प्रयोग काव्य साहित्य के जन्म से ही आरम्भ हो गया था। प्राचीन साहित्य मे भी कवियो ने प्रकृति से सुन्दर उपमानों को चुनकर अपने भाव तथा वस्तु वर्णन को अलकृत किया है। आधुनिक कवियो ने एक ओर तो प्रकृति से नवीन उपमानो का चयन किया, दूसरे परम्पराभुक्त उपमानों का भी नवीन ढग से प्रयोग किया। प्रकृति के उपमानगत प्रयोग मे जहाँ रूपक उपमा, उत्प्रेक्षा आदि सादृश्यमूलक अलकारो की योजना हुई है, वहाँ प्रतीक रूप में भी प्रकृति की सुन्दर और प्रभावी योजना की गई है। छायावादी कवियों की अभिव्यक्ति साकेतिक अधिक होने से उन्होंने प्रतीक विधान, रूपकातिशयोक्ति, अन्योक्ति, समासोक्ति आदि का बहुत सहारा लिया है। निराला काव्य से एक उदाहरण प्रतीक योजना का देखिए —

उसके बाग मे बहार,
देखता चला गया।
कैसा फूलों का उभार
देखता चला गया। —बेला पृ० ३७

यहाँ बाग शरीर का प्रतीक है, बहार यौवन के निखार का और फूल अगो के प्रतीक हैं। इन प्राकृतिक प्रतीको की योजना से सौन्दर्य-चित्रण प्रभावी हो गया है। 'अणिमा' मे वार्द्धक्य से हताश कवि कह उठता है—

मैं अकेला।
आ रही मेरे गगन की सान्ध्य बेला।

यहा गगन जीवन का तथा सध्या वृद्धावस्था का प्रतीक है। 'कुकुरमुत्ता' में निराला ने गुलाब को उच्च वर्ग का तथा कुकुरमुत्ता को सर्वहारा वर्ग का प्रतीक बनाया है। इस प्रकार की प्रतीक-योजना कवि द्वारा प्रकृति के मानवीकरण का ही अग है। 'कुकुरमुत्ता' की तरह 'वन', 'अनुताप', 'बादल' आदि अनेक कवितायों मे अन्योक्ति शैली का सफल निर्वाह हुआ है।

इसी साकेतिक शैली में निराला ने सावयव रूपको का भी सफल प्रयोग किया है। 'तुलसीदास' म तुलसी-युग की सास्कृतिक अवस्था को स्पष्ट करने के लिए उन्होंने सध्या का रूपक बाँधा है।

प्रकृति के प्रतीकात्मक चित्रण द्वारा कवि ने जीवन की अभिव्यक्ति अनेक कविताओं में की है। सच तो यह है कि कवि की कोई भी अनुभूति बिना प्रकृति का सहारा लिये मानस पटल से नहीं उतरती। अनामिका की 'उक्ति' कविता में ग्रीष्म काल के दग्ध-दाह और लू-आँधियों के पश्चात् सजल मेघमाला के क्षितिज पर प्रकट होने का जो प्रतीकात्मक चित्रण या रूपक बाँधा है, वह दग्ध जीवन को नव आशा-सवलित करने के लिए ही है :

जला है जीवन यह आतप में दीर्घकाल,
सूखी भूमि, सूखे तरु, सूखे सिक्त आल बाल,
बंद हुआ गुंज, धूलि धूसर हो गए कुंज,
किन्तु पड़ी व्योम-उर बंधु, नील मेघ माल। —अनामिका

ऐसी समासोक्तियों या प्रतीकात्मक प्रस्तुत योजनाओं से निराला की सैकड़ों रचनाएँ भरी पड़ी हैं।

निराला के कतिपय नवीन प्राकृतिक उपमान देखिये—विधवा की दीन और दयनीय अवस्था को स्पष्ट करने के लिए निराला कहते हैं—"वह टूटे तरु की छुटी लता-सी दीन"। 'तुलसीदास' से एक सादृश्य चित्र देखिए—

बिखरी छूटीं शफरी अलकें,
निष्पात नयन-नीरज पलकें।

बिखरी और छूटी अलकों के लिए मछली की उपमा नई है, नेत्रों के लिए कमल परम्परायुक्त उपमान ही है।

अमूर्त का मूर्त विधान भी आधुनिक काल की एक विशेषता है। निराला को यौवन मद की बाढ़ नदी-सी और जीवन प्रात समीर-सा लघु प्रतीत होता है। 'स्मृति' को उन्होंने 'गुप्त-वन्तों की कलियाँ' कहा है। स्मृति उषा के समान गुप्त पलकों (भावों) पर कोमल हाथ फेर कर जगा देती है—

ऊषा-सी क्यों तुम कहो दिवस
गुप्त पलकों पर कोमल हाथ
फेरती हो ईप्सित मंगल,
जगा देती हो कहो प्रभात। —स्मृति (परिमल)

'पंचवटी प्रसंग' में लक्ष्मण अपनी गृहहीन लक्ष्यहीन दशा की तुलना सलिल-प्रवाह में बहते तिनके से करता है। निराला को प्रेयसी का [illegible] तरल तरंग-सा या उर्मिमयी लता-सा प्रतीत होता है, नवीन कुसुम-दल [illegible] जल सी, परिमल-सा और उर सरिता-सा लगता है। प्रकृति के ये [illegible]

प्रकृति में रहस्य-दर्शन—निराला ने प्रकृति के [illegible] आध्यात्मिक भावनाओं को व्यक्त किया है। अद्वैत दर्शन [illegible] केवल सबको एक ही आत्म-सत्ता से अनुप्राणित अनुभव [illegible]

दर्शन की प्रवृत्ति को साहित्यिक बताते हुये निराला ने स्वयं कहा है—'लीलाम्बरी ज्योतिर्मूर्ति की सृष्टि कर चतुर साहित्यिक फिर उसे अनन्त नीलमण्डल में लीन कर देते हैं। पल्लवो के हिलने में किसी अज्ञात चिरन्तन अनादि सर्वज्ञ को हाथ के इशारे अपने पास बुलाने का इंगित प्रत्यक्ष करते हैं। इस तरह चित्रो की सृष्टि असीम सौंदय मे पर्यवसित की जाती है।" (परिमल की भूमिका, पृ० १८)

प्रकृति के रमणीय दृश्यो मे निराला ने अदृश्य परमसत्ता का आभास पाया है। उस असीम सौन्दर्य सत्ता के दर्शनो को कवि व्याकुल हो उठता है। सौर ब्रह्माण्ड सब उसी के प्रकाश के बल से उद्भासमान है। गगन, घन, विटपी, सुमन, नक्षत्र मालिका—सबमे उसी परम सत्ता की मधुर मुस्कान छिटकी हुई है—

गगन घन विटपी, सुमन नक्षत्र ग्रह मध जाल।
बीच मे तू हँस रही ज्योत्स्ना-वसन परिधान।
देखने को तुझे बढ़ता विश्व पुलकित प्राण। —गीतिका गीत ५९

प्रकृति म रहस्यभाव छिपे हैं। कवि ने जिज्ञासा के प्रश्न भी प्रकृति से किये हैं। तरगो को देखकर कवि सहसा पूछ उठता है, तुम कहाँ से आती हो ? किसे मिलने जाती हो ? किसके गान गाती हो ?—

किस अनन्त का नीला अचल हिला हिलाकर
आती हो तुम सजी मण्डलाकार ?
एक रागिनी मे अपना स्वर मिला मिलाकर
गाती हो ये कैसे गीत उदार ?
× × × ×
चल चरण बढ़ाती हो, किससे मिलने जाती हो ?

यही जिज्ञासा निराला की इन पक्तियो मे पाई जाती है—

कौन तम के पार ?—(रे कह)
अखिल पल के स्रोत, जल जग
गगन घन घन धार—(रे, कह)

प्रकृति के माध्यम से निराला ने अपने अद्वैत दर्शन और अध्यात्मभाव को अनेक कविताओं मे प्रकट किया है। उनकी 'तुम और मैं' कविता भी उनके दर्शनपरक रहस्यवाद का सुन्दर उदाहरण है। ब्रह्म यदि हिमालय शृंग है तो कवि की जीवात्मा सुरसरिता है, जीव ब्रह्म का ही अंश है—

तुम तुंग हिमालय शृंग
और मैं चचल गति सुर सरिता
× × × ×
तुम दिनकर के खर किरण जाल
मैं सरसिज की मुस्कान।

राष्ट्रीय गीतों में प्रकृति चित्रण—निराला जी ने देश-प्रेम के रूप में भी जननी जन्मभूमि भारत के प्राकृतिक दृश्यों का चित्रण किया है। उनका 'भारति, जय, विजय करे!' नामक प्रसिद्ध गीत भारत माता का भौगोलिक चित्र प्रस्तुत करने वाला सुन्दर राष्ट्रगीत है :

भारति जय विजय करे!
कनक शस्य-कमलधरे!
लंका पदतल शतदल,
गर्जितोर्मि सागर-जल
धोता शुचि चरण युगल
स्तव कर बहु अर्थ भरे!
तरु तृण-वन लता वसन,
अंचल में खचित सुमन,
गंगा ज्योतिर्जल-कण
धवल धार हार गले।
मुकुट शुभ्र हिम-तुषार,
प्राण प्रणव ओंकार,
ध्वनित दिशाएँ उदार,
शतमुख-शतरव-मुखरे! —गीतिका

'अणिमा' के निम्न गीत में निराला जी ने भारत को जीवनधन मानकर उसकी प्राकृतिक सुषमा और महिमा का सुन्दर वर्णन किया है—

भारत ही जीवनधन, ज्योतिर्मय परम रमण,
सर सरिता वन उपवन।
तप पुंज गिरि-कन्दर, निर्झर के स्वर सुन्दर,
दिक् प्रांतर मर्म-मुखर, मानव, मानव-जीवन। —अणिमा

'परिमल' की 'जागरण' कविता में निराला जी ने नवीन भारत के "हरित पत्रों से हरे, श्यामल छाया के शान्ति के निविड़ नीड़, मलयज सुवास स्वच्छ पुष्प-रेणु पूरित" उपवन वाक्यों का मनोरम चित्र खींचा है।

ऋतुवर्णन—यद्यपि निराला ने लगभग सब ऋतुओं का वर्णन अपनी विभिन्न रचनाओं में किया है तथापि उन्हें वर्षा ऋतु और उसके बादल से विशेष मोह है। 'परिमल' से लेकर 'सांध्यकाकली' तक उनकी समस्त रचनाओं में बादल और वर्षा उनका सबसे प्रिय विषय है। 'परिमल' में ही 'बादल' का निराला ने अनेक रूपों में सम्बोधन किया है। छः भागों में रचित 'बादल राग' निराला की एक प्रसिद्ध कविता है। निराला के व्यक्तित्व के कोमल और परुष दोनों ही रूपों की अभिव्यंजना 'बादलराग' से हुई है। अपने कोमल रूप में बादल अपनी प्रिया श्यामा के अधरों की प्यास मिटाता

है, जग को जलदान कर नवजीवन प्रदान करता है। वह पौधों को हँसाता और धरती के अंकुरों को उगाता है। उसका परुष रूप स्वच्छन्दता और विद्रोह का परिचायक है। वह अर्जुन-जैसा वीर है, इन्द्रधनुष उसका धनुष है और गगन गडगडाहट उसके रथ का घरघर रव है। वह विप्लव-वीर अन्यायी शोषकों को आतंकित करता है और कृषक को आनन्दित। वह 'कुसुम-कोमल कठोर पवि' है। कवि ने बादल को 'धरा के खिन्न दिवस के दाह', 'सिन्धु के अश्रु', 'अनन्त के चचल शिशु', 'तरु के सुमन', 'जीवन के पारावार', 'विप्लव के वीर', 'नयन मनोरंजन, नयन-अंजन', 'इन्द्रधनुर्धर', 'मुग्ध-बालाओं के सुख-स्वागत!', 'विश्व में नव जीवन भर', 'मन्द चपल-समीर-रथ पर उच्छृंखल!' 'अरे वर्ष के हर्ष' आदि कल्पनाप्रवण सम्बोधनों से पुकारा है।

'अनामिका' की 'विनय', 'उत्साह' आदि कविताओं में भी कवि ने बादल का गरजने-बरसने और तप्त धरा को जल से शीतल कर देने का आवाहन किया है। उद्बोधन कविता तो 'परिमल' की 'बादलराग' कविता की ही पूरक प्रतीत होती है। कवि बादल से गरजने-बरसने और नव जीवन सरसाने का आवाहन करता हुआ प्राचीन को बिखर झर जाने देना चाहता है। कवि ने नवमेघ के माध्यम से नव्य विराट् की कामना की है। यहाँ भी बादल नव्य क्रान्ति का दूत बना हुआ है—

'गरज गरज घन अंधकार में गा अपने संगीत',
जीर्ण-शीर्ण जो दीर्ण धरा में प्राप्त करे अवसान,
रहे अवशिष्ट सत्य जो स्पष्ट।
साल-साल से रे सदियों के जकड़े हृदय कपाट,
खोल दे कर कर कठिन प्रहार,
आये अभ्यतर संयत चरणों से नव्य विराट्,
करे दर्शन, पाये आभार। — अनामिका

'गीतिका' के रहस्य-गीतों में कहीं उन्होंने बादल के रूप में जीवन धन के आने का अनुभव किया है—'बादल में आये जीवन-धन', कहीं वर्षा सुन्दरी का मानवीकृत सुन्दर चित्रण किया है—'मेघ के घन केश वाली चपलाचपल-नयनी वर्षा का पवन पट सर्वत्र लहरा-फहरा जाता है', तो कहीं निराला जी ने 'परिमल' की 'बादल राग' कविता की तरह बादल को गर्जन वर्षण के लिए पुकारा है—

घन, गर्जन से भर दो वन
तरु-तरु पादप पादप-तन।
× × ×
गरजो हे मन्द्र, वज्र-स्वर,
थर्राये भूधर-भूधर,
झरझर झरझर धारा झर
पल्लव-पल्लव पर जीवन। —गीतिका गीत ५४

'बेला' और 'नये पत्ते' तथा अन्तिम गीतों में कवि निराला ग्रामश्री के अवलोकन का बढ़ा। अब उसे ग्राम प्रकृति का यथातथ्य ऋतु-रूप भाने लगा। यही कारण है कि इन रचनाओं में कवि ने अरहर, मूंग, ज्वार, सन और धान के खेतों, अखाड़े में कुश्ती लड़ते ग्राम युवकों, बहते हुए नालों, चरते हुए ढोरों और हिरणों, पुरवाई के मन्द झोंकों में ही सच्चा आनन्द प्राप्त किया है—

घने घने बादल हैं एक ओर गड़गड़ाते,
पुरवाई चलती है,
तालों में करेंबुए कोकनद खिले हुए;
ढोर चरते हुए,
कहीं हिरणों का झुंड, आम पकते हुए,
नाले बहते
युवक अखाड़ों में जोर करते हुए। —नये पत्ते

'गीतगुंज' में कवि ने प्रकृति के काव्यात्मक नागर सौंदर्य का अवलोकन भी किया है। कई गीतों में निराला जी ने वर्षा सुन्दरी के मनोहर चित्र प्रस्तुत किये हैं। कई गीतों में वर्षा का लोक-मंगलमय आवाहन है। कवि ने अन्धकार में बिजली के चमकने, बादलों की गर्जन-तर्जन, पुरवाई के झोंकों, फुहारों के पड़ने, नीम पीपल आदि पेड़ों के झूमने और कजली-मलार आदि के गाए जाने का बड़ा सजीव वर्णन किया है।

'आराधना' में भी वर्षा और घन का वर्णन तीन-चार गीतों में पाया जाता है। कुछ पंक्तियाँ देखिए—

पाये धाराधर धावन हे!
गगन गगन गाजे सावन हे!
प्यासे उत्पल के पलकों पर
बरसे जल धर धर-धर-धर-धर,
श्याम दिगन्त दाम छवि छाई,
बही प्रमुकुलित पुरवाई,
शीतलता शीतलता आई। —आराधना पृ० ३

अंतिम संग्रह 'सान्ध्यकाकली' की आधी से अधिक कविताएँ प्रकृति या ऋतु-वर्णन से सम्बन्धित हैं। यहाँ भी एक बात लक्ष्य करने की यह है कि कवि ने अधिकतर कविताएँ सावन की बरसती ऋतु में रची हैं और वे मुख्यतः वर्षा ऋतु से ही सम्बन्धित हैं। लगता है जैसे अपनी असंतुलित अवस्था में भी कवि वर्षा के काले-काले बादलों को देखकर झूम उठता होगा। इन कविताओं में कवि का हृदयोल्लास हरियाली बना प्रतीत होता है। वर्षा का मानवीकरण प्रथम कविता की निम्न पंक्तियों में देखिए—

प्राण, तुम सावन सावन गात,
जलज-जीवन यौवन अवदात।

मृदु बूँदों चितवन की लड़ियाँ,
केश मेघ, मुख, पलक अलड़ियाँ,   —माध्यकाकली

कई कविताओं में वर्षा का यथातथ्य चित्र उपस्थित किया गया है—

श्याम गगन नव घन मडलाये।
कानन गिरि-वन आनन छाये।
लदे बाग ग्रामों के परसे,
धानों के खेतो पर बरसे
युवती निकलीं गागर कर ले,
पुरवी प्रिय को गले लगाये।
कमल ताल के जल बलखाये,
नाले उमड उमड कर आये
नद जल के मद व्याकुल धाये
तट के नीम हिंडोले लाये।   (पृ० १८)

कवि वर्षा के बादलो से निवेदन प्रार्थना करता है। वह उन्हे बरसने और जन-जन के प्राणो को सरसाने का आवाहन करता है—आँगन आँगन स्नेह का स्पंदन छा जाय, हरियाली के झूले झूलें और ग्राम-युवतियाँ अपने दुःख भुलाकर हर्ष आनन्द मे भर जायें—

आओ, आओ वारिद वदन!
बरसो सुख बरसो प्राण धन!
जन जन के प्राणो मे सरसो,
हरियाली के झूले झूलें,
ग्रामवधू सुख से दुख भूलें,   (पृ० ७२)

और कवि के आवाहन पर वाकई सरस घटा घट घट को सरसा देती है, जीवन पर हरियाली छा जाती है, दिशाएँ झूम उठती हैं, मृदग वादन और बूँदो की रिमझिम से सगीतमय वातावरण उपस्थित हो जाता है। आनन्द और पशु सुख की प्राप्ति ही कवि का उद्देश्य नही है, वह यहाँ भी बादल को शक्ति का अग्रदूत और जीवन के विकास का सम्बल बनने को पुकार करता है। वह चाहता है कि विकृत भाव नष्ट हो जायँ और सत्यधर्म की प्रतिष्ठा हो—

बरसो मेरे आगन बादल,
नई शक्ति अनुरक्ति जगा दो,
विकृत भाव की भक्ति भगा दो,
उत्पादन के मार्ग लगा दो,
साहित्यिक वैज्ञानिक के बल।   —पृ० ४८

इस प्रकार निराला काव्य म आद्योपात बादल और वर्षा ऋतु का विशेष

वर्णन पाया जाता है। यह ऋतु उन्हे विशेष मन-भावनी रही है और इसमे उनका हृदय कमल खूब खिला है।

अन्य ऋतुओं मे वसत और शरद का वर्णन भी कई सग्रहों की कई कविताओ मे हुआ है, पर यह ऋतु वर्णन अधिकतर यथातथ्य परिचयात्मक ही है। यहाँ कल्पना की रगीनी नहीं दिखाई देती। 'अनामिका' की 'खुला आसमान' कविता मे निराला जी ने बहुत दिनों की झडी के बाद आसमान के खुल जाने का बडा तथ्यपूर्ण चित्रण किया है

> बहुत दिनों बाद खुला आसमान।
> निकली है धूप, हुआ खुश जहान।
> दिखीं दिशाएँ, झलके पेड,
> चरने को चले ढोर गाय, भैंस-भेड,
> लोग गाँव गाव को चले,
> कोई बाजार, कोई बरगद के पेड के तले —अनामिका

शरदागम पर "बादलों का रग बदल गया, पुरवाई बद हो गई, ओस पडने लगी, हरसिंगार मुस्काने और झरने लगे, मालती खिली, शीत हवा सरसाई, नद के उद्गार घटे, निकले तट बटे छटे, फैली हल चलवाई।" (आराधना पृ० २३)

वसत के आगमन पर आम्रमजरियाँ बौरा गई हैं, भौंरे गूज रहे हैं, तितलियाँ फूलों का रस ले रही हैं, शीतल मद, सुगध समीर डोल रहा है। टूर तरफ बहार छा गई है। वन के मन मे हर्ष छा गया है, किसलय-वसना लतिकाए प्रिय तरु-उर से जा मिली हैं, पिक-स्वर नभ मे सरसा गया। (गीतिका पृ० ५)

निराला जी ने 'आराधना' और 'गीत गुज' की एक एक कविता मे मध्ययुगीन बारहमासा वर्णन की परम्परा मे चौमासा-वर्णन किया है। इनमे असाढ, सावन, भादों और क्वार के चार महीनों मे प्रकृति का उद्दीपनकारी चित्रण हुआ है। 'गीतगुज' के गीत में विरहिणी को मदन सताता है और हरमास उसके लिए नई व्याकुलता उत्पन्न करता है। अन्त में प्रतीक्षारत नायिका का प्रियतम से मिलन हो जाता है। 'आराधना' म निराला जी ने इस विरह भाव को प्रियतम हरि से सम्बद्ध करके एक तरह कृष्ण काव्य की बारहमासा परम्परा का निर्वाह किया है। गाढ असाढ दहकता आया, विरहिणी का तन और भी जल उठा, रात मे उसे चैन नहीं, नयनों से नीर, नदी बहने लगी। भला हरि के सिवा उसकी पीर कौन जान सकता है! सावन अरसावन सुमन भावन आया, घर-घर झूले पडे, सखियाँ नई सँवारी साडियों में झूले झूलने लगीं, पर विरहिणी प्रिय बिना मन मूरती रह जाती है। मोर का शोर और पपीहे की पी पी पुकार सुनकर विरहिणी के प्राण डोल जाते है

> फिर सया सावन सुमन भावन, झूलने घर घर पडे।
> [illegible]

वन मोर चारो ओर बोले, पपीहे पी पी रटे,
ये बोल सुनकर प्राण डोले, ज्ञान भी मेरे हरे। —आराधना ६६

इसी प्रकार भादों और क्वार के महीनों मे विरहिणी विषम विरह-ज्वाल मे जलती-बसती है। प्रिय के वियोग मे न वह तीज का त्योहार मना पाती है न आश्विन या दुसहरा और रामलीला ही उसे आमोद प्रदान करते हैं।

निराला की 'देवी सरस्वती' कविता मे विभिन्न ऋतुओ का एक साथ वर्णन हुआ है। यह रचना इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि इसमे शरद ऋतु वर्णन के सहारे कवि ने भारतीय ग्राम्य-जीवन की सजीव झांकी प्रस्तुत की है। खेत खलिहानो का गवई वातावरण और ग्राम जीवन तथा प्रकृति का सौन्दर्य यहा एकाकार हो गया है। कवि ने वर्षा से ऋतु वर्णन आरम्भ किया है और प्रत्येक ऋतु मे प्रकृति के नवरूपो का ग्राम-जीवन से सामजस्य स्थापित किया गया है।

इस प्रकार निराला-काव्य सर्वत्र प्रकृति की रगस्थली बना हुआ है। उसमें प्रकृति के नाना विध प्रयोग पाये जाते हैं। समस्त काव्य मे एक भी कविता ऐसी नही जिसमे प्रकृति किसी-न किसी रूप मे न आई हो। उन्हे प्रकृति की अनिवार्यता स्थान-स्थान पर अनुभव हुई है। चाहे प्रकृति के सौन्दर्य चित्र निराला काव्य मे पत-काव्य जैसे न हो, चाहे प्रकृति का सश्लिष्ट चित्रण निराला पत जैसा न कर पाये हों, पर यह ध्रुव सत्य है कि ऋतु वर्णन और प्रकृति के मानवीकरण मे पत जी से जरा भी पीछे नही। प्रतीकात्मक रूप में प्रकृति का जैसा कल्पनाप्रवण प्रयोग निराला ने किया है, वह पत और प्रसाद नही कर सके।

अन्य रस-भाव

इस विमर्श मे विवेचित उदात्त करुण रस, उदात्त घृणा (वीभत्स रस), उदात्त हास्य-व्यग्य, सौन्दर्य-शृगार, भगवद्भक्ति, देशभक्ति या राष्ट्रीय भावना तथा प्रकृति-सौन्दर्य और अनुराग के अतिरिक्त वीर रस, वात्सल्य रस, भ्रातृप्रेम, शान्त रस आदि और भी अनेक रस भाव निराला काव्य की पयस्विनी मे यत्र-तत्र भरे पडे हैं। ओजपूर्ण कर्मोत्साह और वीर भाव के प्रसग 'जागो फिर एक बार', 'बादलराग', 'शिवाजी का पत्र', 'तोडती पत्थर' (कर्मोत्साह) आदि कविताओ का विवेचन करते हुए हम पीछे बता चुके हैं। 'राम की शक्तिपूजा' निराला का वीर रस-प्रधान एक लघु खण्ड काव्य है। उसमे आद्यन्त उदात्त वीर रस की जो व्यजना हुई है, उसका भी सोदाहरण विवेचन हम द्वितीय विमर्श मे इस रचना की समीक्षा के प्रकरण मे कर आये हैं, यहा दोहराना व्यर्थ है।

वात्सल्य रस का सुन्दर प्रकाशन 'सरोज-स्मृति' और 'तुलसीदास' मे हुआ है। 'सरोज-स्मृति' मे पिता कवि का करुण मिश्रित वात्सल्य स्थान-स्थान पर उमडा पडा है। कवि को इस बात का खेद है कि वह अपनी प्रिय पुत्री का उत्तम लालन-पालन पोषण शिक्षा-सस्कार न कर सका। इस दुख के मूल मे वात्सल्य की अजस्र धारा ही प्रवहमान है.

'धन्ये, मैं पिता निरर्थक था, कुछ भी तेरे हित न कर सका।'
'शुचिते, पहनाकर चीनांशुक, रख सका न तुझे अत दधिमुख।'

—सरोज स्मृति

अपनी पुत्री के बाल्य-क्रीडा-केलि के ही नहीं, यौवनागम और यौवन-सौन्दर्य का चित्रण करते हुए अपनी पुनीत गहन वात्सल्य भावना को प्रकट करने की क्षमता निराला में ही थी। कवि अपनी पुत्री का विवाह एक योग्य वर ढूँढकर स्वयं अपनी रीति से करता है। उसके इस समस्त प्रयास में वात्सल्य की स्नेह-छाया ही दृष्टिगत होती है। पुत्री के विदा होने पर कवि ने जो मनिन्त भावोद्गार व्यक्त किया है, वह कण्व ऋषि द्वारा शकुन्तला की विदाई की याद दिला देता है :

प्रिय मौन एक संगीत भरा, नव जीवन के स्वर पर उतरा।
माँ की कुल शिक्षा मैंने दी, पुष्प-सेज तेरी स्वयं रची,
सोचा मन में — 'वह शकुन्तला, पर पाठ अन्य यह, अन्य कला।'"

'तुलसीदास' में वात्सल्य का एक और ही भव्य रूप मिलता है। उपर्युक्त वात्सल्य भी वियोग की करुण छाया में व्यक्त हुआ है और 'तुलसीदास' का वात्सल्य वियोग पक्ष का ही अन्य उदाहरण है। रत्नावली विवाह के बाद अपने पति तुलसीदास के मोह के कारण पति गृह में ही रहती है। आसक्त तुलसी अपनी सुन्दरी पत्नी को पलभर के लिए अपने से दूर नहीं करते थे। रत्नावली के नैहर से कई बार बुलावे आने पर तुलसीदास ने कोई बहाना कर टाल दिया, पत्नी को नहीं भेजा। उधर रत्नावली के माता पिता अपनी पुत्री से मिलने के लिए तड़प उठते हैं। एक दिन रत्नावली का भाई आता है और माता पिता तथा परिजनों की वात्सल्य-व्यथा का वर्णन करता है। भाई कहता है 'रतन! तू कितनी दुबल हो गई है! बहन! घर पर माँ, बापू जी, भाभियाँ और पड़ोस की सभी स्नेहमयी नारियाँ तुझ से शीघ्र मिलने को व्याकुल हैं। तुम्हारी सब सहेलियाँ ताने देकर कहती हैं कि माँ बाप ने लड़की का ब्याह क्या किया वर के हाथों बेच ही डाला।'

"बहन! तुझ से पीछे ससुराल गई लड़कियाँ कई बार नैहर आ चुकी हैं, जबकि तू एक बार भी नहीं आई। आँखों में आँसू भरकर रुंधे कंठ से माँ ने कहा है—रतन से जाकर कहना—क्या तुझे अब माँ की बिल्कुल ममता नहीं रही जो तू एक बार भी मिलने नहीं आती?" बहन! माँ ने तुझे पति अनुराग की शिक्षा देकर क्या कोई अपराध किया था कि उन्हें बेटी के दर्शन तक दुर्लभ हो गए?"

"बहन! बापू ने कहा है—"मैं तो अब कुछ ही दिनों का मेहमान हूँ, न जाने कब चल दूँ। अत यदि तू अब भी न आई तो अपने बापू से कभी मिलन नहीं होगा। नदी तट के वृक्ष की तरह जाने कब मैं काल के प्रवाह में बह जाऊँ, कोई भरोसा नहीं। यही कामना है कि आखिरी बार जामाता जी के चरण छू लूँ।"

"बहन! तुम्हारी भाभी ने कहलाया है—मेरी कुसुम-सी शोभावर्णा ननद को अवश्य लाना और ऐसा कहते-कहते वह प्रेमगद्गद् हो न जाने क्या-क्या स्नेह-

प्रलाप करने लगी थी। परन्तु सबसे बढ़कर तो माँ का करुण विलाप था, जिसका दुख अवर्णनीय है।"

"तुम्हारे न जाने से गाँव वाले समझते हैं कि हम तुझे बुलाना नहीं चाहते और इस तरह तेरे न जाने से हमें गाँव वालों के आगे लज्जित होना पड़ रहा है। क्यों बहन ! ब्याह हो जाने से क्या माता पिता-भाई-बन्धुओं से यों नाता तोड़ लिया जाता है ? हमने अपनी कन्या देकर श्रीवर जी के चरण पूजे हैं क्या इसी से हम पराये हो गये ? जरा सोचो तो, ऐसी उपेक्षा क्या उचित है ?"

आकुल हृदय की कितनी स्नेह वेदना इन उद्‌गारों में भरी है ! वात्सल्य-अन्तर्गत दैन्य, विनय, ग्लानि, शोक, उपालम्भ आदि की अनेक सुन्दर संचारी भावनाएं यहाँ व्यक्त हुई हैं।

शान्त रस की सुन्दर व्यंजना भी निराला की कई विरक्तिपरक कविताओं तथा उनके खण्ड काव्य 'तुलसीदास' में हुई है। इस प्रकार निराला-काव्य का भाव-वैभव अप्रतिम है।

चतुर्थ विमर्श

बुद्धिपक्ष दार्शनिकता

- अध्यात्म दर्शन और साधना।
- जीवन-दर्शन और प्रगतिशीलता।

: १ :

अध्यात्म दर्शन और साधना

निराला काव्य का दार्शनिक आधार अत्यन्त पुष्ट है। निराला की अध्यात्म-भावना और मानववाद का आधार अद्वैत दर्शन है। सच तो यह है कि निराला का समस्त काव्य अद्वैत दर्शन की भूमिका पर आधृत है। निराला का सम्बन्ध रामकृष्ण आश्रम से रहा था। आश्रम के आचार्यों के वे सम्पर्क में रहे थे। उन्होंने आश्रम की आध्यात्मिक पत्रिका 'समन्वय' का सम्पादन और रामकृष्ण विवेकानन्द साहित्य का हिन्दी अनुवाद भी किया था। अतः स्वामी विवेकानन्द के नव्य वेदान्त दर्शन का उन पर बहुत प्रभाव पड़ा। वस्तुतः छायावादी काव्य के लिए उस युग में स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, रवीन्द्रनाथ टैगोर आदि युग-मनीषियों ने आदर्शात्मक आध्यात्मिक चिन्ताधारा का निर्माण कर दिया था। यह दर्शन प्रवृत्तिमूलक अद्वैत दर्शन था। इसका मूल हमें उपनिषदों में मिलता है। उपनिषदों की विचारधारा का सार-तत्व मुण्डकोपनिषद् के निम्न श्लोकांश में निहित है "तमेव भान्तमनुभाति सर्वम् तस्य भासा सर्वमिदम् विभाति।" समस्त सृष्टि में एक ही परमतत्व की व्याप्ति का विचार ही, जिसे एकात्मवाद या सर्वात्मवाद कहा जा सकता है छायावाद का मूल दर्शन है और निराला ने भी इसे ही वेदान्त की आधुनिक भावभूमि पर प्रतिष्ठित किया है। निराला-काव्य की समस्त भावाभिव्यक्ति के मूल में यही भावना है। इसी के फलस्वरूप निराला समस्त चराचर में एक अखण्ड जीवन समष्टि का अनुभव करते हैं, प्रकृति के कण-कण में इसी के कारण एक सचेतन सत्ता का आभास पाते हैं। व्यष्टि और समष्टि में सर्वत्र वही अखण्ड ज्योति समायी हुई है, उसी के परम प्रकाश से सौरमण्डल भासमान है :

जिस प्रकाश के बल से, सौर-ब्रह्माण्ड को उद्भासमान देखते हो
उससे नहीं वंचित है एक भी मनुष्य भाई।
व्यष्टि और समष्टि में समाया वही एक रूप,
चिद्घन आनन्द कन्द। (पंचवटी-प्रसंग)

यहाँ राम के माध्यम से निराला ने उस परम तत्त्व को सच्चिदानन्द कहा है। 'मैं' और 'तुम' का भेद भ्रांति है। वेदान्तियों की तरह निराला भी जीवन के सब सुखों

दुखो, जय-पराजय जीवन की सम्पूर्ण हलचल के मूल मे उसी सत्ता को मानते हैं और अन्ततः सबका पर्यवसान भी उसी में होता है :

जीवन की विजय, सब पराजय,
चिर अतीत आशा सुख, सब भय,
सबमें तुम, तुममें सब तन्मय।

ससार मे जीव माया के भ्रमजाल मे फँसकर अपने वास्तविक रूप को भूल जाता है, माया ही भ्रम उत्पन्न करती है :

भेद उपजाता भ्रम—
माया जिसे कहते हैं।

इस भ्रम-जाल से बचने के लिए जब जीव प्रबुद्ध होता है, योगियो के ससर्ग मे रहकर योग सीखता है, अथवा भाव भक्ति को अपनाता है या स्वार्थ-सम्बन्धों से ऊपर उठकर प्रेम-सेवा-कर्म मे लीन होता है और इस प्रकार स्थूल से सूक्ष्म और सूक्ष्मातिसूक्ष्म हो जाता है, तब उसे अपने ही भीतर ज्ञान का अजस्र प्रकाश पुंज दिखाई देता है, तभी उसकी भेद-बुद्धि नष्ट हो जाती है और वह अपने स्वरूप को पा लेता है :

आती जिज्ञासा जिज्ञासु के मस्तिष्क मे जब—
भ्रम से बच भागने की इच्छा जब होती है—
जागता है जीव तब,
योग सीखता है वह योगियों के साथ रह,
स्थूल से वह सूक्ष्म, सूक्ष्मातिसूक्ष्म हो जाता;

निराला निर्गुणवादी हैं या सगुणवादी ? यह प्रश्न भी यहाँ स्वभावतः उठता है। 'पंचवटी-प्रसग'-जैसी दो-चार रचनाओं मे कवि ने अवतारी राम के प्रति अपनी श्रद्धा और पूज्य-भावना व्यक्त की है। निम्न पंक्तियो मे अवतारी राम श्याम को ही आराध्य बनाया हुआ है :

अतारण-तारण राम
काम के छवि-धाम।
ऋषि मुनि मनोहंस,
रवि वंश अवतंस,
कर्मरत निश्शस
पूरो मनस्काम।
जानकी मनोरम
नायक सुचारुतम,
प्राण के समुद्यम,
धर्म-धारण श्याम। —आराधना पृ० ४८

इसमें सदेह नही कि अपनी कई आत्मनिवेदनात्मक भक्ति-रचनाओ मे निराला ने राम श्याम अवतारी रूप को अपनाया, शारदा व शक्ति के साकार रूप को भी मन मे बसाया है, पर तत्वत तो उनके आराध्य निर्गुण निराकार हैं ही, साधना के आलम्बन रूप में भी वह अधिकतर निराकार भगवान के ही उपासक प्रतीत होते हैं। उनके राम नि स्पृह, नि स्व, निर्लेप, निराकार है

नि स्पृह, नि स्व निरामय निर्मम,
निराकांक्ष, निर्लेप, निरुद्‌गम,
निर्भय, निराकार, निरसम राम। —आराधना पृ० ५०

भारतीय साधना के तीनों ही मार्गो—ज्ञान योग, भक्ति-योग और कर्म-योग पर निराला ने आस्था प्रकट की है। इनमे कोई भेद नहीं, सब जीव को परम सिद्धि कराते हैं। हमारे ऋषियो मुनियो ने मन की गति पहचान कर विशेष-विशेष अधिकारियों के लिए ये भिन्न-भिन्न मार्ग निश्चित किये थे, पर इनमे अन्तर कुछ नही

भक्ति योग कर्म ज्ञान एक ही हैं
यद्यपि अधिकारियों के निकट भिन्न दीखते हैं।

यद्यपि द्वैत भाव भ्रम है क्योंकि जीव ही ब्रह्म है, तथापि साधना की दृष्टि से भ्रम के भीतर से ही भ्रम के पार जाना समीचीन है। इसी से द्वैतभाव-भावकों के लिए भक्ति का मार्ग भी उचित ही है और सेवा-जन्य प्रेम भी उतना ही महत्व-पूर्ण है जितना ज्ञान। 'सेवा से चित्तशुद्धि होती है। शुद्ध चित्तात्मा में उगता है प्रेमांकुर।"

इस प्रकार निराला ने ज्ञान-भक्ति-कर्म-योग का समन्वय स्वीकार करते हुए प्रेम-तत्व की महत्ता पर प्रकाश डाला है। यही प्रेम-तत्व निराला को मानव प्रेम की निरछल भूमिका मे ले जाता है। वेदान्त की सीमा में ये तीनों ही योग समाहित हो जाते हैं। सिद्धांतत निराला ज्ञानमार्गी थे परन्तु व्यवहार में उन्हें भक्ति, प्रेम और सेवा का मार्ग ही रुचिकर प्रतीत हुआ। तत्वत. वे आत्म-ज्ञानी थे। उनके 'पास ही रे हीरे की खान खोजता कहाँ और नादान' जैसे गीतों-प्रगीतों में उनका आत्मज्ञानी रूप स्पष्ट लक्षित होता है। परन्तु साथ ही वे परम भावुक जीव भी थे। उनकी भावात्मकता भी दो सिरों को छूती है। एक है भग-वद् प्रेम और भक्ति का वैयक्तिक साधना का छोर जो उनकी 'तुम और मैं' जैसी कविताओं और आत्मनिवेदन के पदों में दृष्टिगत होता है और दूसरा है लोक-प्रेम सेवा करुणा का उज्ज्वल कर्म-पथ। वस्तुत ये दोनों एक ही प्रेम तत्व के दो जुड़े छोर हैं। 'भिक्षुक'-जैसी कविताओं मे उनके लोक-करुण प्रेम के दिव्य दर्शन होते हैं। इस प्रकार निराला में ज्ञान (आत्मज्ञान), भक्ति, (आत्म निवेदन) और कर्म (लोक-करुण) तीनों का भव्य संगम है।

अपनी 'जागरण' कविता में निराला जी ने अपने ही 'सोऽहम्' और 'तत्वमसि'

का अनुभव व्यक्त किया है। माया का आवरण भेदकर, अगणित वासनाओं और इन्द्रियों के इन्द्रजाल से निकलकर कवि महामोह की दशा समाप्त कर अपने निजरूप को प्राप्त करता है। मुक्ति या सिद्धि में प्रेम ही एकमात्र उपकरण था

पहुँचा मैं लक्ष्य पर।
अविचल निज शांति में
क्लांति सब खो गई—
डूब गया अहंकार
अपने विस्तार में—
टूट गये सीमा-बन्ध—
छूट गया जड़ पिण्ड—
पाया स्वरूप निज,
× × × ×
उपकरण नहीं ये अनेक,
एक आभरण प्रेम था।

कवि में यह भव्य भावात्मक परिवर्तन हुआ। मोहमयी सृष्टि विनष्ट हुई, एक नये जीवन का उदय हुआ, जिसमें प्रेम ही एकमात्र साधन हुआ। वेदना में प्रेम और अपनापन था। रसना में भोग की अभिलाषा नहीं रही। अहं का इतना विस्तार हुआ कि संकीर्ण अहंकार समाप्त हो गया।

स्पष्ट है कि सिद्धांत की भूमिका पर चाहे यह आत्मज्ञान ज्ञानमार्ग कहा जाय, पर व्यवहार के क्षेत्र में निराला प्रेम, सेवा और भक्ति का ही प्रतिपादन करते हैं। यह मुक्ति मोहमाया से ही मुक्ति की परिचायक है, जीवन को ब्रह्म में लीन होने की निर्विशेष कैवल्य प्राप्ति नहीं है। पंचवटी-प्रसंग में निराला ने लक्ष्मण के माध्यम से कहा है कि मैं तो सेवक हूं, सेवा और प्रेम ही मेरा अवलम्ब है, मुझे मुक्ति नहीं चाहिए, भक्ति बनी रहे, यही बहुत है। आनन्द बन जाना अच्छा नहीं, आनन्द पाना ही श्रेयस्कर है

जीवन का एक ही अवलम्ब है सेवा,
× × × ×
मुक्ति नहीं जानता मैं, भक्ति रहे, काफी है।
× × ×
आनन्द बन जाना हेय है,
श्रेयस्कर आनन्द पाना है,

निराला की अध्यात्मभावना प्रवृत्तिमूलक है। वे मुक्ति के निवृत्तिपरक मार्ग को नहीं अपनाते। वह शंकर के निवृत्तिमूलक अद्वैत दर्शन की बजाय स्वामी विवेकानन्द स्वामी रामतीर्थ आदि आधुनिक चिंतकों का सामाजिक भावनाओं से युक्त वेदान्त

दर्शन है। नवयुग के इन विचारकों ने वेद, उपनिषद्, गीता, वेदान्त तथा वैष्णव धर्म को मिलाकर एक ऐसे नव अध्यात्मवाद को जन्म दिया जो देश की प्राचीन दार्शनिक परम्परा में होता हुआ भी वर्तमान युग की सामाजिक आवश्यकताओं के अनुकूल था। निराला आदि हमारे इन कवियों ने व्यक्ति और समाज, समाज और राष्ट्र, राष्ट्र और विश्वात्मा तथा विश्वात्मा और परमात्मा का समन्वय प्रस्तुत करते हुए नये मानवतावादी अध्यात्म दर्शन की व्याख्या की। भारत के चिर पुरातन अध्यात्मदर्शन का समाजीकरण हुआ।

मुक्ति के स्थान पर भक्ति की कामना तो मध्ययुग के भक्तों ने भी की थी, पर उनकी भक्ति में वैयक्तिक भाव था, निराला की भक्ति लोक-सेवा और प्रेम का प्रतिरूप है। प्राचीन भक्तों ने भी जगत् को भगवान् का सत्स्वरूप होने से सत्य माना था, पर उसकी सत्यता केवल तात्त्विक थी। निराला जी यद्यपि सिद्धान्त रूप में संसार को मायावृत मानते दिखाई देते हैं, पर जगत् के व्यावहारिक अस्तित्व को वे सदा मानते रहे हैं। "माया है, सब माया है"—कहने वाला कवि जीवन की महानता का ही ज्ञान कराना चाहता है —

जागो फिर एक बार !
पशु नहीं, वीर तुम, समर-शूर क्रूर नहीं,
कालचक्र में हो दबे आज तुम राजकुँवर ! समर-सरताज!
पर क्या है, सब माया है—माया है।
मुक्त हो सदा ही तुम, बाधा विहीन-बंध छन्द ज्यों,
डूबे आनन्द में सच्चिदानन्द रूप।

इस संसार को ही निराला स्वर्ग बनाना चाहते हैं। इसे छोड़कर उन्हें अधिवास की भी इच्छा नहीं

छूटता है यद्यपि अधिवास,
किन्तु फिर भी न मुझे कुछ त्रास। —अधिवास (परिमल)

जब तक निराला के हृदय में विश्ववेदना का भाव है, भला तब तक वे अधिवास की बात कैसे कर सकते हैं ? अपने प्रभु या अपनी पूज्या आदिशक्ति से भी निराला ने "जग को ज्योतिर्मय कर" देने की ही प्रार्थनाएं की हैं।

निराला ने कर्मयोग को प्रेम और और सेवा के रूप में ग्रहण किया है। सात्त्विक निश्छल प्रेम और करुणा ही लोक-सेवा के कर्म-पथ की प्रेरणा देती है। यही कारण है कि निराला ने प्रेम तत्त्व का बहुल महत्त्व प्रदान की है। उनके परमात्म प्रेम को हमने आगे रहस्यवादी भावना के रूप में प्रस्तुत किया है। प्रेम अत्यन्त पावन तत्त्व है। यह क्षुद्र जीवों के बस का राग नहीं। "प्रेम की महोर्मिला तो क्षुद्र सकीर्णताओं को तोड़ डालती है जिसमें संसारियों के सारे क्षुद्र मनोवेग तृणसम बह जाते हैं।" (पंचवटी प्रसंग)

अपनी कई कविताओं में निराला ने विराट् सत्ता के प्रति अपना आकर्षण और प्रेम भक्ति भाव व्यक्त किया है। यह विराट वस्तुत कोई अलौकिक तत्त्व नही अपितु समस्त विश्व की व्यापक विश्वात्म शक्ति या एकात्मकता का प्रतीक है।

कुछ विचारकों को निराला के अध्यात्मवाद मे विरोधी और असगत विचार प्रतीत होते हैं। इसमें सदेह नही कि कहीं-कहीं निराला ने शकर अद्वैत के अनुसार जगत् को नश्वर, भ्रमात्मक और माया कहा है, परन्तु उनका यह कथन जीव को सद्-बुद्धि करने के लिए ही प्रकट हुआ है। इसी प्रकार बगीय सस्कृति के प्रभाव से वे 'शक्ति' के आराधक भी बने। उनके राम शक्ति की पूजा करते हैं और चक्र-भेद तथा पुरश्चरण-जैसे आगमिक साधन अपनाते हैं। इससे यह कहा जा सकता है कि उन पर शैववादी या शाक्ताद्वैतवादी आगमिक आस्तिक दर्शन का भी प्रभाव था। इस सबन्ध मे यही कहा जा सकता है कि निराला का मूल दर्शन अद्वैतवादी था। न तो शाकर अद्वैत से उनका कोई विरोध था और न शावाद्वैत से—वस्तुत किसी भी अद्वैतवाद से उनका विरोध नही था। उन्होने 'शून्य और शक्ति' नामक अपने एक निबन्ध म भी कहा है कि शास्त्रानुसार शून्य और शक्ति म कोई भेद नही। निम्न पक्तियो मे सृष्टि के सम्बन्ध मे उनके विचार दोनों ही अद्वैत दृष्टियों के परिचायक है

इच्छा हुई सृष्टि की,
प्रथम तरग वह आनन्द सिंधु मे,
प्रथम कपन में सम्पूर्ण बीज सृष्टि के
पूर्णता से खुला मैं पूर्ण सृष्टि शक्ति से
वीचियाँ ही हैं अगणित शुचि सच्चिदानन्द की।

उनकी 'तुम और मैं' जैसी एक दो कविताओं के आधार पर भी उनके शाकर अद्वैतवादी होने मे सदेह किया गया है। इसमे सदेह नही कि 'तुम और मैं' कविता मे आत्मा परमात्मा के सम्बन्ध का अटूट मानते हुए भी निराला दोनों की आकृति प्रकृति का अन्तर व्यक्त करते हैं और इस दृष्टि से उन्हें कोई विशिष्टाद्वैतवादी भी कह‌ा जा सकता है। किन्तु इससे निराला के मूलत अद्वैतवादी होने की बात का खण्डन नही होता। यह निराला ने कई बार कहा है कि जीव इस भ्रमात्मक ससार मे आकर द्वैत या भ्रम का भाव अपना लेता है और इसी द्वैत मे अद्वैत अर्थात भ्रम से ही भ्रम के पार जाना उचित है। अत साधना की स्थिति मे 'मैं' और 'तुम' का भेद—लघु और महान् का अन्तर तो रहता ही।

'राम की शक्तिपूजा' तथा एक दो और कविताओ मे निराला ने योग साधना पर भी आस्था प्रकट की है, परन्तु इससे उन्हें योग दर्शनवादी मानना भी भूल होगी। वस्तुत यह योग साधना भी उनकी अद्वैत साधना की सहायक और उसका अग ही है। 'पास ही रे हीरे की खान' वाली रचना मे निराला ने अत साधना को इसी हेतु महत्त्वमण्डित किया है, निम्न पक्तिया देखिए

सत्र के सूक्ष्म छिद्र के पार,
बेधना तुझे मीन, धार मार,
चित्त के जल मे चित्र निहार,
कर्म का कार्मुक कर मे धार।
मिलेगी कृष्णा सिद्धि महान,
खोजता कहाँ उसे नादान।

सच तो यह है कि 'जागरण', 'पचवटी प्रसग' जैसी एक-दो कविताओं के सिवा निराला व्यर्थ की सैद्धान्तिक दार्शनिक ऊहापोह मे कहीं नही पड़े। उन्होंने स्वामी विवेकानन्द की तरह अध्यात्म दर्शन के व्यावहारिक रूप पर दृष्टि केन्द्रित रखी।

कुछ लोग निराला के परवर्ती यथार्थोन्मुख प्रगतिवादी विचारों को भौतिक और जड़वादी भूमिका पर मानते हुए कह उठते हैं कि परवर्ती काव्य मे निराला ने अध्यात्मवादी दर्शन त्याग दिया और भौतिकवादी बन गये थे। इसमे सदेह नही कि 'कुकुरमुत्ता', 'नये पत्ते' और 'बेला' की अनेक कविताओं मे निराला जी ने वस्तुवादी दृष्टि अपनाई थी, पर, जैसा कि हम आगे देखेंगे, उसका उनके मूल अद्वैतवादी दर्शन से कोई विरोध नहीं। सच तो यह है कि वह भी उनके अद्वैतदर्शन की ही देन है और जीवन तथा समाज में साम्य या एकात्म भाव की प्रेरक है। इसी समय की कुछ अन्य रचनाएँ तथा १९३९ के बाद की 'अर्चना', 'आराधना' आदि सग्रहो के गीत भी इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि निराला ने अपनी अध्यात्मवादी प्रवृत्ति का कभी त्याग नही किया था, बल्कि अन्तिम समय के गीतो मे तो वह और भी सुस्पष्ट और सक्रिय हो गई थी। 'भगवान् बुद्ध के प्रति' कविता मे निराला जी ने वैज्ञानिक जड़वाद या भौतिकवाद का विरोध ही किया है :

आज सभ्यता के वैज्ञानिक जड़ विकास पर
गर्वित विश्व नष्ट होने की ओर अग्रसर
स्पष्ट दिख रहा
केवल वैसे, आज लक्ष्य में हैं मानव के।
विमुख भोग से, राजकुवर त्यागकर सर्वस्थित--
एकमात्र सत्य के लिए, रूढ़ि से विमुख, रत
कठिन तपस्या में, पहुँचे लक्ष्य को तथागत॥

'बेला' सग्रह की रचनाओं से भी पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है कि निराला सदा आस्तिक, आस्थावादी और आध्यात्मिक बने रहे हैं। एक रचना में उन्होंने स्पष्ट कहा है कि ईश्वर की शरण मे जाने से मानव की समस्त सासारिक कठिनाइया और विपन्नताएँ दूर हो जाती हैं, मृत्यु का भय मिट जाता है :

नाथ, तुमने गहा हाथ, वीणा बजी,
विश्व यह हो गया साथ, द्विविधा लजी।

छोटे से घर की लघु सीमा में
बंधे हैं क्षुद्रभाव
यह सच है प्रिये
प्रेम का पयोधि तो उमड़ता है
सदा ही निःसीम भू पर।

घर-परिवार की लघु सीमाओं में बंधे रहना, अपने ही स्वार्थों में डूबे रहना कहाँ की मनुष्यता है ? जीवन के सभी क्षेत्रों में संकीर्णता का विरोध करते हुए निराला अपने बादल राग में कहते हैं

ताल ताल से रे सदियों के जकड़े हृदय कपाट
खोल दे कर कठिन प्रहार
आये अभ्यन्तर संयत चरणों से नव्य विराट
करे दर्शन, पाये आभार।

कवि सदियों से जकड़े हुए हृदय कपाट को खोलकर नव्य विराट के आगमन की आकांक्षा करता है। जिन गली-सड़ी परम्पराओं और संकीर्णताओं में जीवन बद्ध पड़ा है, वह उनको मृत्युदण्ड देना चाहता है

आँखों में नव जीवन की तू अंजन लगा पुनीत
बिखर झर जाने दे प्राचीन।
जीर्ण शीर्ण जो दीर्ण धरा में प्राप्त करे अवसान,
रहे अवशिष्ट सत्य जो स्पष्ट। — उद्बोधन

जीवन में नव-जागरण की प्रभाती गाता हुआ कवि अमर सन्तान भारतवासियों को 'जागो फिर एक बार' की आवाज देता है। योग्य जन ही जीता है। इसलिए योग्य बनो, अपने योग्य पूर्वजों का स्मरण करो, जिन्होंने सवा सवा लाख पर एक को चढ़ाने का संकल्प किया था। तुम वीर हो, समर शूर हो, शेर हो, आज शेरों की मांद में स्यार (विदेशी अंग्रेज) चला आया है, तुम जागो और अपनी सिंह गर्जना करो—

शेरों की मांद में आया है आज स्यार—
जागो फिर एक बार!
× × ×
योग्य जन जीता है,
पश्चिम की उक्ति नहीं—
गीता है, गीता है—
स्मरण करो बार-बार—
जागो फिर एक बार

योग्य जन को ही जीने का अधिकार है। इस जीवन दर्शन को पाश्चात्य— 'Survival of the fittest' उक्ति का अनुवाद नहीं समझना चाहिये। यह तो विशुद्ध भारतीय दृष्टि है, गीता का संदेश है।

निराला का जीवन दर्शन आशा और पौरुष के स्वरों से ओजस्वी बना है। उसमें निराशा और पलायन का लेश भी नहीं। 'रूखी री यह डाल वसन वासन्ती लेगी' जैसी रचनाओं में आशा का ही संदेश है। 'कुकुरमुत्ता' से दूसरों की सहायता के बिना अपने पैरों पर ही खड़ा होने वाले साहसी जीवन की प्रेरणा मिलती है।

कायरता, कामपरता, स्वार्थ, आलस्य आदि तुच्छ और दीन-हीन भावनाओं को त्यागने का संदेश देता हुआ कवि भारतवासियों में आशा, वीरता, महानता स्वाभिमान आदि उच्च गुणों को जगाता है :

तुम हो महान्, तुम सदा हो महान्,
है नश्वर यह दीन भाव,
कायरता, कामपरता,
ब्रह्म हो तुम, —जागो फिर एक बार

मनुष्य की इस महानता के गायक निराला जब मानव द्वारा मानव की दुर्गति और अपमान देखते हैं तो दुख से तड़पते हुए अहंवादी मानव को समझाने का प्रयत्न करते हैं

छोड़ दो, जीवन यों न मलो।
ऐंठ अकड़ उसके पथ से तुम
रथ पर यों न चलो।
मिला तुम्हें, सच है अपार धन
पाया कृश उसने कैसा तन?
क्या तुम निर्मल, वही अपावन?
सोचो भी समलो।

अंतिम पंक्ति में कवि ने शांतिपूर्वक समझाने का प्रयत्न किया है। पर जीवन की बीभत्स विषमताएँ केवल समझाने से शांतिपूर्वक भला कब दूर हो सकती थीं? इसीसे निराला का विद्रोह, आक्रोश और क्रांति का भैरवनाद भी करना पड़ा। निराला के अध्यात्म-दर्शन ने सामाजिक वैषम्यों को एकात्मबोध में बाधक समझा। इस बाधा को समाप्त करने के लिए ही उन्हें विद्रोह और विप्लव का उग्र जीवन-दर्शन भी अपनाना पड़ा। वे क्रांतिकारी समाजद्रष्टा भी बने। 'बादल राग' जैसी कविताओं में आरम्भ से ही उन्होंने शांतिपूर्वक उपायों के साथ-साथ क्रांतिकारी भावनाओं को व्यक्त किया। बादल को क्रांति का दूत बनाकर उन्होंने वैषम्यों को मिटा डालने का आवाहन किया है

विप्लव रव से छोटे ही हैं शोभा पाते।
× × × ×
रुद्ध कोष, है क्षुब्ध तोष
अंगना-अंग से लिपटे भी

आतंक अंक पर कांप रहे हैं
धनी, वज्र गर्जन से बादल !
त्रस्त नयन मुख ढांप रहे हैं।
जीर्ण बाहु, है शीर्ण शरीर,
तुझे बुलाता कृषक अधीर,
ऐ विप्लव के वीर !
चूस लिया है उसका सार,
हाड मात्र ही है आधार, —बादलराग' (परिमल)

इसी प्रकार 'एक बार बस और नाच तू श्यामा' कविता में निराला ने आध्यात्मिक प्रतीक द्वारा अत्याचार और अनाचार के विनाश की आकांक्षा की है। जैसा कि कहा जा चुका है, निराला की यह मानवतावादी विचारधारा, जो मानव साम्य कामना और वैषम्य के विनाश की द्योतक है, उनके प्रवृत्तिमूलक नवीन सामाजिक अद्वैत की ही देन है।

अपनी परवर्ती कुछ रचनाओं—'कुकुरमुत्ता', 'बेला' और 'नये पत्ते' आदि में निराला के जीवन दर्शन ने एक और मोड़ लिया। कवि जीवन की यथार्थ लौकिक भूमिका पर उतर आया। वह प्रगतिशील तो आरम्भ से ही था, पर इन रचनाओं में उसकी यथार्थवादी और प्रगतिवादी प्रवृत्ति को खुलकर प्रकट होने का अवसर मिला। अपनी आरंभिक रचनाओं में भी यद्यपि निराला ने धर्म के ढोंग और मानवीय स्वार्थपरता पर मीठा व्यंग्य किया था

"छिपे हृदय में स्वार्थ लगाए ऊपर-चन्दन,
करते समय नदीश नदिनी का अभिनन्दन,
तुम्हें चढ़ाया कभी किसी ने था देवी पर,
× × × × ×
किन्तु देखकर तुम्हें जरा जर्जर,
फेंक दिया पृथ्वी पर तुमको
रखके हुये हृदय में अपने निर्दय ने पत्थर? —रास्ते के फूल से
(परिमल)

परन्तु आरंभिक रचनाओं में निराला ने जीवन के कटु यथार्थ को आध्यात्मिक या प्राकृतिक प्रतीकों के रूप में प्रच्छन्न रूप में व्यक्त किया है और अपनी व्यंग्यात्मक या घृणापूर्ण प्रतिक्रिया स्पष्ट व्यक्त न करके अधिकतर सहानुभूति और करुणा का परिचय दिया था। 'परिमल' की 'भिक्षुक' और 'विधवा' कविताएँ निराला की कारुणिक प्रतिक्रिया की ही परिचायक हैं। 'विधवा' कविता में भारत की दीन दलित विधवा की करुण दशा का मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया गया है। कवि उसके दुर्भाग्य पर विधाता को भी आड़े हाथों लेता है

दैव अत्याचार कैसा घोर और कठोर है !
क्या कभी पोछे किसी के अश्रुजल ?
या किया करते रहे सबको विकल?

भिक्षुक कविता मे 'दो टूट कलेजे के करते' भिक्षुक का दर्दनाक चित्र है। उसके बच्चे भूठी पत्तलो पर कुत्तो की तरह झपटते हैं, कैसा मार्मिक व्यग्य है !—

चाट रहे जूठी पत्तल वे कभी सड़क पर खड़े हुए,
और झपट लेने को उनसे कुत्ते भी हैं अड़े हुए।

पर परवर्ती रचनाओ मे निराला सीधे तीखे व्यग्य और भर्त्सना के उद्गार उगलने-लगे। अब भिक्षुक के प्रति करुणा बहा कर ही उन्हे तोष नही हुआ, अपितु मानव की निर्दयता और धार्मिक ढकोसले पर व्यग्य का तीर छोड़ना भी अभीष्ट हो गया। 'अनामिका' की 'दान' कविता मे कपियों को मालपुए खिलाकर पुण्य कमाने वाले और मानव (भिक्षुक) की उपेक्षा करने वाले धर्म-ध्वजियों पर व्यग्य देखिए :

झोली से पूए निकाल लिये
बढ़ते कपियों के हाथ दिये।
देखा भी नहीं उधर फिर कर
जिस ओर रहा वह भिक्षु इतर। (अनामिका)

अर्थ के अनर्थ को भी निराला बखूबी समझते थे। उन्हे विदित था कि राजनीति का ढाचा भी अर्थ पर टिका है। देश का नेता और कर्णधार वही बनता है जो अपने अर्थ के बल पर लोगों से प्रशस्तिया लिखा सकता है, अपनी नेतागिरी का जयघोष करा सकता है। उन्होंने धनी बुर्जुआ लोगो पर अत्यन्त कठोर व्यग्य किये हैं :

मैं भी होता यदि राजपुत्र—
जितने पेपर, सम्मानित कण्ठ से गाते मेरी कीर्ति अमर,
लखपति का यदि कुमार
होता मैं शिक्षा पाता अरब समुद्रपार .
देश की नीति के मेरे पिता परम पंडित
चुनती जनता राष्ट्रपति उन्हें ही सुनिर्धार,
पैसे में दस राष्ट्रीय गीत रचकर उन पर
कुछ लोग बेचते गा गा गर्दभ मर्दन-स्वर।

अतिम पक्ति मे पैसे पर बिकने वाले कवि-कलाकारों पर भी कैसा मार्मिक व्यंग्य है ! भले ही निराला के कुछ राजनीतिक और सामाजिक व्यग्य व्यक्तिगत हो गये हैं, पर उनकी सत्यता को आप चुनौती नही दे सकते। आनन्द भवन-जैसे वैभव-सम्पन्न प्रासाद के सामने इलाहाबाद के पथ पर निराला ने पत्थर तोड़ती मजदूरिन को देखा था, उन्होने दो टूक कलेजे के करते पछताते पथ पर आते भिक्षुक को भी देखा था, पर जहा पहले कवि भिक्षुक के प्रति करुणा और सहानुभूति जता कर ही रह गया

वहा अब वह केवल करुणा और सहानुभूति ही प्रकट करके नही रह जाता, सामाजिक विषमता पर व्यग्य का प्रहार भी करता है। पत्थर तोडती हुई स्त्री जलती दोपहरी, झुलसती लू मे अपना खून-पसीना बहा रही है, पर सामने ऐश्वर्य-भवन है !

गर्मियों के दिन,
दिवा का तमतमाता रूप,
उठी झुलसाती हुई लू,
रुई ज्यों जलती हुई भू—
सामने तरु मालिका अट्टालिका, प्राकार ,

नारी-भावना—मध्ययुगीन सतों भक्तों ने नारी को 'सिद्धि मार्ग की बाधा' और माया-मायाविनी कहकर उसकी उपेक्षा ही की थी। रीतिकाल मे वह विलास-वासना की पूर्ति का साधन मात्र बनी रही। आधुनिक काल मे विशेषत छायावादी कवियो ने नारी के अन्तर्मन को पहचाना। निराला ने नारी के 'शक्ति' रूप की उपासना की। नारी-जाति के प्रति उन की अपार श्रद्धा थी। उनकी नारी प्रेयसी के रूप में बाह्य रूप सौन्दर्य की ही प्रतिमा नही अपितु अन्तर्प्रकृति के सौन्दर्य से भी विभूषित है। वह काम-कामिनी कदापि नही। माता के रूप मे नारी पूज्या आदिशक्ति का ही प्रतिरूप है। 'पचवटी प्रसग' मे लक्ष्मण माता सीता को आदिशक्ति स्वरूपा ही मानता है। माता की चरण रेणु ही उसकी परम शक्ति है। वह प्रभु से यही वरदान चाहता है कि सदा सती-साध्वी, गुण-गरिमा-सम्पन्न माता की सेवा मे ही तन-मन से लगा रहे, उसे मुक्ति की भी कोई आकाक्षा नही

माता की चरण-रेणु मेरी परम शक्ति है—
× × × ×
सारे ब्रह्माण्ड के जो मूल मे विराजती है
आदि शक्ति रूपिणी,
शक्ति से जिनकी शक्तिशालियो मे सत्ता है,
माता हैं मेरी वे
× × ×
नारियों की महिमा— सतियो की गुण गरिमा मे
जिनके समान जिन्हें छोड कोई और नहीं
माता हैं मेरी वे।

स्वय सती-साध्वी सीता अनुसूया तथा सती-जैसी पातिव्रत्य-धर्मपूत नारियों की वन्दना करती है

और लाल मेरे लाओ फूल मालती के,
गूँथ कर माला स्वय
सती शिरोरत्न के

पद युगल कमलो मे
अर्पण करूँगी मैं।

नारी की अपार शक्ति पर निराला का विश्वास था। उन्हे स्वय अपनी पत्नी से हिन्दी भाषा और साहित्य के अध्ययन-अध्ययन की प्रेरणा मिली थी। अतः नारी को उन्होंने सदा प्रेरक शक्ति माना है। 'तुलसीदास' की रत्नावली नारी वह ज्योति-किरण है, जो मानव जीवन के समस्त अधकार-समूह को विनष्ट करती है।

निराला ने नारी की दीन हीन असहाय अवस्था पर करुणा के आसू बहाये है, पर साथ ही उसके असहाय और दीन रूप मे भी उसे प्रेरणा और शक्ति का स्रोत अनुभव किया है। 'विधवा' उन्हे 'इष्टदेव के मन्दिर की पूजा'-सी पवित्र और दीप-शिखा-सी शान्त और उज्ज्वल प्रतीत होती है। रत्नावली नारी का जो भव्य चित्र 'तुलसीदास' म प्रस्तुत हुआ है, वह तो नारी को अबला मे सबला, कामिनी से काम-दाहिनी 'अनल प्रतिमा', सीमित गृहिणी से 'नील-वसना शारदा' और अम जग-व्यापिनी शक्ति सिद्ध करता है। वह तुलसी के जड सीमा-पुलिनो मे स्वर्गगा बनकर प्रवाहित होती है। और 'नश्वरता पर आलोक मधुर दृक् करुणा' बन जाती है। यह शक्तिमती 'काम के सुत' तुलसीदास को जिन शब्दो मे धिक्कारती है, उससे हो तुलसी को आत्म-बोध होता है.

धिक्! धाए तुम यों अनाहूत,
धो दिया श्रेष्ठ कुल धर्म-धूत,
राम के नहीं, काम के सुत कहलाए
हो बिके जहाँ तुम बिना दाम,
वह नहीं और कुछ, हाड चाम।

रत्नावली सरस्वती और अनला कमला के रूप मे कवि तुलसीदास की समस्त प्रेरणाओ, समस्त पूत भावनाओ का स्रोत बन जाती है।

परवर्ती रचनाओ म भी नारी के प्रति श्रद्धा और विश्वास की पूर्ण व्यजना हुई है। निराला की नारी भावना निम्न पक्तियो मे भी स्पष्ट है— नारी नवजागरण की प्रतीक है, मोह-शयन या माया नही प्रत्युत् मोह-पटल मोचन है·

तन की मन की, धन की हो तुम।
नव जागरण, शयन की हो तुम।
काम-कामिनी कभी नहीं तुम,
सहज स्वामिनी सदा रही तुम,
स्वर्ग दामिनी नदी बहीं तुम,
अनयन नयन नयन की हो तुम।
मोह पटल मोचन आरोचन,
जीवन कभी नहीं जन शोचन,
हास तुम्हारा पाश विमोचन · आदि।

इस प्रकार प्रगतिशीलता निराला के काव्य की एक प्रमुख प्रवृत्ति है। कोई उन्हें प्रगतिवादी कवि भी कहना चाहे तो कह सकता है, पर उसे यह याद रखना होगा कि निराला किसी वाद या विशिष्ट राजनीतिक विचारधारा में कभी बंधे नहीं थे। उनका प्रगतिवाद मार्क्सवाद का पर्याय नहीं। वाद से सम्बद्ध हो जाने के कारण उन्हें प्रगतिवादी न कहकर प्रगतिशील कहना ही उचित होगा।

निराला की प्रगतिशीलता भी उनकी अन्तर्ध्वनि का ही एक रूप है। वह न तो प्रयास के रूप में कुछ दिन के लिए अपनाई हुई प्रवृत्ति है, न आरोपित प्रगतिशीलता है। वह कोरी बौद्धिक और मौखिक भी नहीं है। विचारों के साथ-साथ वह आत्मा और मन की वस्तु बनी हुई है। वह निराला के अन्तराल से उद्भूत है। कवि पंत और निराला की प्रगतिशीलता का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए बहुत से आलोचकों ने पंत की क्रान्तियों के प्रति सहानुभूति को कोरी बौद्धिक और मौखिक कहा है, पर निराला की अनुभूति को हार्दिक बताया है। एक समीक्षक का कथन उल्लेख्य है "सुमित्रानन्दन पंत और निराला, दोनों ही कवियों की प्रगतिशील रचनाओं को पढ़कर मुझे सदैव ऐसा अनुभव होता रहा है कि जैसे पंत किसी मजदूर को उसके छप्पर से बाहर बुलाकर उसकी कैफियत पूछ रहे हैं और निराला स्वयं उस मजदूर के छप्पर में घुसकर अपनी बाहरी और अन्दरूनी दोनों प्रकार की आँखों से उस छप्पर के समस्त दयनीय वातावरण को पीते चले जा रहे हैं।" (सरस्वती के निराला विशेषांक १९६२ में प्रकाशित प्रो० देवेन्द्र दीक्षित का लेख)। यद्यपि ऐसे आलोचक पंत जी के प्रति कुछ अन्याय ही कर बैठे हैं, तथापि इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि निराला का प्रगतिशील काव्य पंत के ऐसे काव्य की अपेक्षा अधिक संवेदनापूर्ण है।

राष्ट्रीयता की ही भांति निराला की प्रगतिशीलता भी राजनीतिक या आन्दोलनात्मक नहीं है। उन्होंने नारेबाजी का प्रचार कार्य नहीं किया। उनकी अनुभूतिशील प्रगतिशीलता का कारण है उनका निजी अनुभव। महिषादल राज्य में अपने आरंभिक जीवन में ही उन्होंने जनता की आर्थिक विपन्नता और शोषण का अनुभव पा लिया था। अपने प्रदेश बैसवाड़े में भी ताल्लुकेदारों और जमींदारों की काली करतूतों से वे पूरी तरह वाकिफ हो चुके थे, और कलकत्ता, लखनऊ आदि बड़े शहरों में रहकर उन्होंने स्वयं पत्थर तोड़ती हुई श्रमिक बाला तथा फुटपाथों पर सोने वाले, जूठी पत्तलों के लिए लालायित भिक्षुकों की भूखी-नंगी टोलियां और असन्तुष्ट श्रमिकों का आर्त क्रन्दन देख सुन लिया था। भारत के इस दरिद्रनारायण के बीच निराला स्वयं बसते थे, रहते थे। अतः जीवन के वैषम्य और उसकी कुरूपता पर व्यंग्य विरोध की लानत-फटकार निराला की निजी अनुभूति के सत्य से प्राणप्राण है। कुछ लोग इन यथार्थवादी रचनाओं के कारण उन्हें समाजवादी प्रगतिवादी कवि बनाने की भूल करते हैं। वास्तव में उनका लगाव किसी भी वाद से नहीं था। '[illegible]' कविता में उन्होंने ढोंगी समाजवादी को भी नहीं छोड़ा और उसके आडम्बर का भण्डा फोड़ डाला।

'नये पत्ते' संग्रह मे साम्राज्यवादी और पूंजीवादी शोषण पद्धति का विरोध करते हुए उन्होंने एक कविता मे कहा है

बानिज के राज ने लक्ष्मी को हर लिया।
टापू में चलकर रखा और कैद किया।
× × ×
आज भी ऐसा चला
कि थोड़ों के पेट मे
बहुतों को आना पड़ा।

ढोंगी समाजवादी पर फब्ती कसने वाले कवि ने ढागी कांग्रेसी नेताओं को भी अपना लक्ष्य बनाया तो इसमे असगति क्या है ? यह विरोध भी निष्पक्ष निराला की सिद्धि ही है। नेहरू जी के प्रति उनका व्यंग्य कुछ अधिक स्पष्ट और व्यक्तिगत हो गया है, फिर भी उसके मूल मे सचाई ही है

आजकल पडित जी देश मे विराजते हैं
कुदरीपुर गाव मे व्याख्यान देने को
आए हैं मोटर पर
लदन के ग्रेजुएट, एम०ए० और बैरिस्टर।
× × × ×
मिलों मे मुनाफे खाने वालो के अभिन्न मित्र

प्रगतिवाद काव्य के सदर्भ मे निराला के प्रगतिवाद पर हम अगले विमर्श मे भी विचार कर रहे हैं, यहा केवल निराला के प्रगतिशील जीवन दर्शन का परिचय करना ही अभीष्ट था।

पंचम विमर्श

आधुनिक वाद और निराला

- युगकवि निराला
- छायावाद और निराला
- रहस्यवाद और निराला
- प्रगतिवाद और निराला
- प्रयोगवाद और निराला

: १ :

युगकवि निराला

समस्त युगीन उत्तरदायित्वों, सांस्कृतिक हलचलों, काव्य-प्रवृत्तियों को अपने व्यक्तित्व में समेट लेने की जैसी अपार क्षमता निराला ने दिखाई, वैसी अन्य किसी आधुनिक कवि में दिखाई नहीं देती।

निराला-काव्य के दो मुख्य पहलू हैं। एक है जीवन के उच्च सांस्कृतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा का सैद्धांतिक या वैचारिक पक्ष और दूसरा है लोक-जीवन की कारुणिक एवं व्यंग्यात्मक यथार्थ अभिव्यक्ति। आधुनिक कवियों में जनता की इतनी निकटता और सहसंवेदना पाने वाला तथा साथ ही उच्च सांस्कृतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा करने वाला—व्यावहारिक और बौद्धिक दोनों क्षेत्रों में समान अवगाहन करने वाला निराला के सिवा दूसरा कोई कवि दिखाई नहीं देता। पंत प्रसाद, महादेवी में जन-जीवन की यथार्थ अभिव्यक्ति का अभाव-सा ही है। सांस्कृतिक पक्ष अर्थात् उच्च आदर्शों और सिद्धांतों की प्रतिष्ठा चाहे प्रसाद, पंत आदि में भी निराला के ही स्तर तक पाई जाती हो पर जन-जीवन की वास्तविक व्यावहारिक झलक उनमें नहीं मिलती।

छन्द के बंध टूट रहे थे। कुछ लोग निराला पर क्षुब्ध हुए कि उन्होंने काव्य बंध और काव्य-मर्यादा के साथ छल किया, पर यह सर्वथा भ्रांति है। यदि निराला मुक्त छन्द की आवाज बुलन्द न भी करते, तो भी मुक्त छन्द का आविर्भाव निश्चित था। वास्तव में निराला तो निमित्त-मात्र बन गए, मुक्त-छन्द तो युग-काव्य की स्वाभाविक गति स्थिति था। अतुकांतता और मुक्तछन्द की प्रवृत्ति तो हमारे आधुनिक कवियों की अंग्रेजी बंगला आदि के प्रभाव के कारण पहले ही बन रही थी, हाँ, निराला ने उसकी अनुगूँज जल्दी ही प्रभावी स्वरों में फैला दी। अतः युग-शैली के रूप में ही मुक्त छन्द का आगमन समझना समीचीन है। निराला ने इस युग शैली को अपनाकर इसका भी एक आदर्श निकाय स्थापित किया। आधुनिक (वर्तमान) युग की जितनी भी काव्य शैलियाँ हैं, उन सबके प्रवर्तन और संस्कार का श्रेय निराला को प्राप्त है। वे न केवल एक सफल मुक्त छन्दकार थे, अपितु अपने युग के श्रेष्ठ गीतकार भी थे। शास्त्रीय और शास्त्र मुक्त दोनों ही शैली बंधों में उनका सानी

नही। सगीत तत्त्व का जो योग उनकी गीतियो मे पाया जाता है, उसे उन्होने अपने मुक्त छन्द मे भी समाविष्ट किया।

युगीन विरोधो और विषमताओ का जैसा सामजस्य निराला-काव्य मे है वैसा अन्यत्र मिलना कठिन है। आज अनेकानेक वादो और नई-नई शैलियो के कवि उन्हे अपना आदिगुरु और मार्ग-दर्शक मानते है तो इसका कारण यही है कि निराला ने सम्पूर्ण युग बोध को आत्मसात् कर लिया था। वे एक साथ ही छायावाद के प्रवर्तक भी थे और प्रगतिशील या प्रयतिशीलता के प्रेरक भी,वे राष्ट्रवादी भी थे और साथ ही अन्तर्राष्ट्रवादी मानवतावादी भी थे। उनकी कविता एक ओर परम्परा के अजस्र स्रोत से जीवन प्राप्त करती थी, दूसरी ओर प्रयोगों से नव-नवोन्मेष करती थी। गीत-प्रगीत, छन्द मुक्त छन्द, मुक्तक प्रबधक, वैयक्तिकता सामाजिकता, आदर्श यथार्थ, अन्तर्मुखी प्रवृत्ति-बाह्यमुखी प्रवृत्ति, सिद्धात-व्यवहार, छायावाद प्रगतिवाद, प्रयोग परम्परा, अतीत-वर्तमान, आक्रोश-करुणा, परुषता कोमलता, व्यग्य विनम्रता आदि अनेक द्वन्द्वो का अद्भुत समन्वयकारी काव्य आधुनिक युग मे और किस कवि का है? अनेक युगीन वाद और शैलियाँ उनके काव्य मे अन्तर्भूत है, पर वे किसी एक की सीमा मे बध कर नही रहे, सभवत वे उन सब के स्रष्टा होकर भी उन सब से परे रहे। सपूर्ण युग के सभी सघर्षों से गुजरने वाला दूसरा कवि नही है।

निराला ने किसी सामयिक विषय या युग बोध को किसी मजबूरी या ऊपरी प्रभाव या दबाव से नही अपनाया, अपितु वे सब उनके प्राणो मे अन्तर्भूत होकर प्रकट हुए हैं। उन्होने पूजीवाद का विरोध तथा दलितो की हिमायत फैशन के बतौर नहीं की या राष्ट्रीय भावना का प्रकाशन किसी राजनीतिक नेता के प्रभाव से नहीं किया, अपितु वे सब विषय उनकी सच्ची अनुभूति से रगे हुए हैं। वे सच्चे अर्थों मे समाजवादी थे (साम्प्रदायिक या राजनीतिक नहीं), सच्चे राष्ट्रकवि थे। इस विमर्श में हम आधुनिक वादो के सदर्भ मे उनके काव्य का अध्ययन प्रस्तुत करेंगे।

: २ :

छायावाद और निराला

दो महायुद्धों के बीच अर्थात् सन् १९१८ से सन् १९३७ ई० के बीच हिन्दी कविता में नया भाव-बोध, नई विचार-धारा, नयी सौन्दर्य दृष्टि और नव भाषा-शैली का जो विकास हुआ, उसे ही छायावाद कहते हैं। आरम्भ में इस नवीन काव्य-पद्धति का बहुत विरोध हुआ, बाहरी प्रभाव की कृत्रिमता का उस पर आरोप लगाया गया, 'वाद' का लेबिल लगाने की चेष्टा की गई, पर यह काव्य तो सामयिक राजनीतिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक एवं साहित्यिक परिस्थितियों एवं प्रेरणाओं के फलस्वरूप हमारे कवि मानस का उन्मुक्त प्रवाह था जो आधुनिक हिन्दी साहित्य की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि सिद्ध हुआ।

आधुनिक हिन्दी कविता का विकास और छायावाद काव्य या निराला काव्य की पृष्ठभूमि —जब कोई नव काव्य-धारा साहित्य में अपना स्थान बनाती है तो उसके पीछे अनेक प्रेरक शक्तियाँ होती हैं। छायावाद या निराला काव्य की पृष्ठभूमि भी बहुमुखी है। साहित्यिक और सामाजिक परिस्थितियों का इस पर विशेष प्रभाव पड़ा है। खड़ी बोली ने कविता में स्थान अभी बनाया ही था। द्विवेदी काल में भाषा में व्यवस्था और एकरूपता तो आई और उसकी काव्योपयोगिता सिद्ध करने में भी हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्त, रूपनारायण पाण्डेय आदि द्विवेदी युगीन कवि प्रयत्नशील थे, परन्तु अभी (सन् १९१५ के आस-पास) यह गद्यवत ही बनी थी। उसमें शुष्कता, इतिवृत्तात्मकता और कल्पना के फीके रंगों का दोष था। काव्य भाषा में जो कल्पना की रंगीनी, प्रवाह, रसात्मकता और ध्वन्यात्मक चित्रमयता होनी चाहिए उसका द्विवेदी कालीन काव्य में अभाव ही रहा। यह अभाव और भी खटकने लगा जब हमारे युवक कवियों ने बंगला की भावात्मक एवं कलात्मक शैली से परिचय प्राप्त किया। अतः हिन्दी काव्य शैली नवीन अभिव्यक्ति के लिए उत्सुक हो उठी।

द्विवेदी कालीन कविता नैतिकता, इतिवृत्तात्मकता और वाह्योन्मुखता अर्थात् स्थूलता से बंधी हुई थी। छायावाद के मूल में इन की प्रतिक्रिया स्वरूप अभिधा अर्थ व वर्णन के स्थान पर कल्पना प्रवणता, स्थूल की बजाय सूक्ष्म की आस्था थी और भावपरक

भाव-वस्तु-बोध के स्थान पर वैयक्तिक वेदना तथा सौन्दर्य के प्रति नवीन अपरिमित अनुराग था।

बगला से अनुवाद भी इन्ही दिनो (१६१४ के आसपास) होने लगे थे। यें, वर्डस्वर्थ आदि अंग्रेजी कवियो की रचनाओं के भी कुछ अनुवाद हुए। हमारे नवीन कवि निराला, प्रसाद, पत आदि बगला भाषा से भी अच्छी तरह परिचित थे। अत बगला की भावात्मक, सूक्ष्म रहस्यात्मक एव कलात्मक शैली का प्रभाव एकदम पडा। 'गीताजलि' की धूम ने हमारे कवियो मे भी इसी प्रकार के नवीन सूक्ष्म काव्य के सृजन की प्रेरणा जगाई।

अंग्रेजी के रोमैंटिक कवियों का प्रभाव भी हमारे कवियो पर अमिट रूप से पडा। बाइरन, वर्डस्वर्थ, शेले, कीट्स आदि पाश्चात्य रोमैंटिक कवियों को पढने वाले नवयुवक कवियो की भावना स्वच्छन्दता की ओर बढी। पुरानी लकीर पीटने से हमारे नये कवियों को सख्त नफरत हो गई। नवीन कल्पनायुक्त अभिव्यजना प्रणाली, नवीन सौन्दर्य दृष्टि, प्रकृति के प्रति नया दृष्टिकोण, सर्ववाद या मानवतावाद का नवीन जीवनदर्शन, कलावाद, शैलीगत सौष्ठव, कल्पना की उन्मुक्त उडान, स्वच्छन्द, भाव-प्रकाशन, सवेदना का वैशिष्ट्य और तीव्र आतरिक अनुभूति आदि अनेक नई प्रवृत्तियाँ हमारे नये कवियों ने अपनाई।

छायावादी कवियो के लिए द्विवेदीयुग में ही स्वच्छन्दतावादी काव्य पूर्व-पीठिका बन चुका था। इस स्वच्छन्दतावादी काव्य-धारा को प्रारभ करने वालो में श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी, मैथिलीशरण गुप्त, मुकुटधर पाडेय, बद्रीनाथ भट्ट उल्लेखनीय हैं। इन कवियो मे कल्पना एवं भावनाओं की नव कोमलता के साथ साथ सर्वप्रथम अभि-व्यजनागत कुछ मृदुता भी दिखाई देने लगी थी। श्रीधर पाठक को आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी का पहला सच्चा स्वच्छन्दतावादी कवि ठीक ही कहा है। रामनरेश त्रिपाठी के 'मिलन', 'पथिक' और 'स्वप्न' नामक खण्ड काव्यो मे हमे उनकी सच्ची स्वच्छन्दता का आभास मिलता है। कल्पित आख्यानो की ओर झुकाव स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति का ही द्योतक है। प्रकृति के शीतल क्रोड मे स्वच्छन्द विचरने की कामना त्रिपाठी जी की निम्न पक्तियो मे कैसी कमनीय है .

प्रतिक्षण नूतन वेष बनाकर रग बिरग निराला।
रवि के सम्मुख थिरक रही है नभ में वारिद-माला ॥
नीचे नील समुद्र मनोहर, ऊपर नील गगन है।
घन पर बैठ बीच मे विचरूँ, यही चाहता मन है ॥ —पथिक

इसी प्रकार मैथिलीशरण गुप्त की 'नक्षत्रनिपात', 'अनुरोध' (१६१४-१५), 'पुष्पाजलि' आदि कविताओं मे नवीन भावनाएँ दर्शनीय हैं। 'पुष्पाजलि' की निम्न पक्तियाँ देखिए

मेरे आगन का एक फूल,
सौभाग्य भाव से मिला हुआ,

स्वासोच्छ्वासन से हिला हुआ,
ससार-विटप मे खिला हुआ,
झड पडा अचानक झूल झूल । —पुष्पाजलि

मुकुटधर पाडेय की भी नई कविताएँ नवीन मानवतावाद तथा रहस्य-चेतना से ओतप्रोत थी

हुआ प्रकाश तमोमय रग में, मिला मुझे तू तत्क्षण जग मे ।
दपति के मधुमय विलास में शिशु के स्वप्नोत्पन्न हास मे
वन्य कुसुम के शुचि सुवास मे, था तव क्रीडा स्थान ।।

इसी प्रकार प०बदरीनाथ भट्ट भी नयी कल्पनामयी शैली मे नए भाव-व्यजक और सुन्दर गीत १६१३ १४ ई० के करीब रचते आ रहे थे। शुक्ल जी ने अपने इतिहास मे इन स्वच्छन्दतावादी कवियो के सम्बन्ध मे लिखा है "ये कवि जगत और जीवन के विस्तृत क्षेत्र के बीच नई कविता का सचार चाहते थे। ये साधारण असाधारण सब रूपो पर प्रेम-दृष्टि डालकर उसके रहस्य भरे सच्चे सकेतो को परखकर, भाषा को अधिक चित्रमय ,सजीव और मार्मिक रूप देकर कविता का एक अकृत्रिम स्वच्छन्द मार्ग निकाल रहे थे। भक्ति क्षेत्र मे उपास्य की एकदेशीय या धर्म विशेष में प्रतिष्ठित भावना के स्थान पर सार्वभौम भावना की ओर बढ़ रहे थे जिसमे सुन्दर रहस्यात्मक सकेत भी रहते थे।" (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ६५०) ।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि छायावाद के पूर्व ही हिन्दी मे एक स्वच्छन्दतावादी काव्य-प्रवृत्ति का विकास हो रहा था। परन्तु काव्य मे छायावाद की प्रतिष्ठा का श्रेय रामनरेश त्रिपाठी, मैथिलीशरण गुप्त आदि इन कवियों को नही। बगला के अध्येता प्रसाद, निराला, पत ही छायावाद के प्रवर्तक कवि हैं। श्रीधर पाठक आदि की तरह प्रसाद जी की प्रारम्भिक कविताएँ भी स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति की द्योतक हैं, और वस्तुत सन् १६०५ से ही वे इस ढंग के काव्य की रचना कर रहे थे। परन्तु छायावाद के अन्तर्गत नवीन शैली और नवीन भावो से ओतप्रोत उनकी कविताएँ 'झरना' मे ही प्रकाशित हुई। इसमे सदेह नही कि स्वच्छन्दतावादी काव्य ने छायावाद की पुष्ट पृष्ठ-भूमि का निर्माण किया और यह भी कहा जा सकता है कि छायावाद स्वच्छन्दतावादी कविता का ही नया चरम विकास था।

सामाजिक, राजनैतिक तथा मनोवैज्ञानिक पीठिका —छायावाद के मूल में वैयक्तिक एव सामाजिक असंतोष की भावना मानी जाती है। वस्तुत जीवन के प्रति दृष्टिकोण बदल रहा था। प्राचीन रूढियो और व्यर्थ के नैतिक बधनों ने नवयुवकों की अन्तश्चेतना को कु ठित कर रखा था। प्राचीन परम्परागत विवाह सम्ब ध प्रेम की आंतरिक उमग पर आधृत नही था। पाश्चात्य सभ्यता और शिक्षा के प्रभाव से नव वर्ग उन्मुक्त प्रेम के अभिलाषी बनने लगे थे। समाज की गली-सडी रूढ़ियों से उन्हें बहुत चिढ़ थी। अत उनका मानसिक असतोष कविता में प्रकट होने लगा।

वैज्ञानिक भौतिक युग की उपज पूंजीवादी पद्धति और उसके द्वारा शोषण ने समाज को विनाश, उत्पीडन एव व्यथा मे डुबा दिया था। राजनीति मे गाधीवाद आत्मपीडन का आदर्श प्रस्तुत कर रहा था। इस युग का प्रभाव भी छायावादी कवियों पर पडना स्वाभाविक था। विदेशी ब्रिटिश सरकार का दमनचक्र भी प्रबुद्ध वर्ग के मानस पर क्षोभ और निराशा की काली छाप लगा रहा था। यही कारण है कि वैयक्तिक और सामाजिक जीवन की करुणा छायावादी कवियो ने व्यथापूर्ण स्वरो में प्रकट होने लगी।

वैयक्तिक जीवन मे भी हमारे नव कवियो को बराबर विफलताओ का सामना करना पडा था। निराला का जीवन तो व्यथा की ही कहनी है। जीविका चलाना भी दूभर था। इच्छाएँ और आकाक्षाएँ कल्पना के सुनहले पख लगाकर आकाश मे ऊँची उडानें भरती थी, किन्तु वास्तविकता अपने कठोर आघातो से उन्हे धराशायी करती जा रही थी। उन्मुक्त प्रेम तो क्या, बहुधा ये कवि प्रेम से सर्वथा वचित ही रहे।

इस प्रकार वैयक्तिक एव सामाजिक व्यथा से असन्तोष की उग्र भावना हमारे कवियो मे जाग्रत हुई। वे 'कोलाहल की 'अवनि' से हटकर प्रकृति की शीतल छाया मे अपने विदग्ध हृदय को सान्त्वना देने लगे। एक ओर समाज की रूढियो के प्रति असतोष व्यजित करने लगे, दूसरी ओर बाह्य जीवन के सघर्षो के स्थान पर अपने ही अन्तर की झाकी लेने लगे।

छायावाद की दार्शनिक पृष्ठभूमि—छायावादी काव्य एक दृढ दार्शनिक भित्ति पर आरूढ है। स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, रवि बाबू एव गाधी जी ने छायावादी काव्य के लिए दार्शनिक भूमिका निर्मित कर दी थी। आदर्शात्मक आध्यात्मिक चिन्तनधारा का प्रभाव छायावादी काव्य पर खूब पाया जाता है। प्रथम महायुद्ध के पश्चात् वैयक्तिक अहम् का प्रसार होने लगा था। छायावादी कवियो की आत्माभिव्यक्ति की आकाक्षा उनकी आत्मप्रसार की ही आकाक्षा थी। ज्ञान के नव-प्रकाश ने उन्हें ससार और प्रकृति का विराट रूप दिखलाया। पुरानी पारिवारिक सीमाओ मे नव कवियो का दम सा घुट रहा था। पुरानी रूढियो से कवि टकरा गए। निराला के राम 'पचवटी प्रसग' मे सीता को आत्मप्रसार का सदेश देते हुए कहते हैं

छोटे से घर की लघु सीमा मे
बधे हैं क्षुद्र भाव
प्रेम का पयोधि तो उमडता है
सदा ही नि सीम भू पर।

'आत्मप्रसार की भावना ने केवल परिवार की चारदीवारी पर ही प्रहार नही किया, वरतुन उसने जीवन के सभी क्षेत्रो मे सकीर्णता का विरोध किया। घन का उद्बोधन करते हुए निराला कहते हैं -

ताल ताल से रे सदियों के जकडे हृदय-कपाट
खोल दे कर कठिन प्रहार

आये भव्यतर सयत चरणों से नव्य विराट
करे दर्शन, पाये आभार ।

सदियों से जकड़े हृदय कपाट को खोलकर कवि नव्य विराट की आकांक्षा करने लगा । सब संकीर्णताओं को मिटाकर वह चाहने लगा—'एक कर दे धरती आकाश' ।

नवयुग के नवीन सामाजिक आध्यात्मिक दर्शन ने ही आत्म विकास की यह भावना जगाई । स्वामी विवेकानन्द आदि हमारे इन मनीषियों ने जिस विश्वबंधुत्व और विश्वमानवतावाद का प्रचार किया, उसी उदार दृष्टिकोण को हमारे इन कवियों ने अपनाया । निराला पर स्वामी विवेकानन्द की विचारधारा का प्रभाव अमिट पड़ा । प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी आदि सभी छायावादी कवियों ने प्राचीन दर्शन का भी गहन अध्ययन किया । फलस्वरूप अद्वैत दर्शन, प्रत्यभिज्ञा दर्शन तथा बौद्ध दर्शन ने इनके काव्य में अभिव्यक्ति पाई । नव्य अद्वैतवाद और सर्वात्मवाद छायावाद का मूल दर्शन कहा जा सकता है । छायावादी काव्य में इसी सर्वात्मवादके फलस्वरूप एक अखण्ड जीवन-समष्टि के दर्शन होते हैं । छायावादी कवि प्रकृति के कण कण में इसी के कारण एक सचेतन सत्ता का आभास पाता है । इसी से वह तृणलता गुल्म सबसे रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करता है । इसी भावना से उसका प्रेम आत्मिक प्रेम है । शैले की निम्न पंक्तियों से स्पष्ट होता है कि किस प्रकार अंग्रेजी रोमैंटिक कवियों की भांति हमारे छायावादी कवियों ने भी एक अखण्ड जीवन की कल्पना की

The fountains mingle with the river
And the river with the ocean
Nothing in the world is single
All things by a law divine
In one Spirit meet and mingle
Why not I with thine ? (Love's Philosophy)

सभी जड़चेतन एक ही प्राण-सत्ता से अनुप्राणित हैं । एक ही तत्त्व (Spirit) में सब मिलते हैं, यह सर्वात्मवाद या सर्ववाद (Pantheism) की भावना छायावाद के प्रत्येक कवि में पाई जाती है । 'पंचवटी प्रसंग' में निराला के राम कहते हैं :

जिस प्रकार के बल में सौर ब्रह्माण्ड को उद्भासमान देखते हो
उससे नहीं वंचित है एक भी मनुष्य भाई ।
व्यष्टि औ' समष्टि में समाया वही एकरूप ।

छायावाद पर वर्तमान युग के आध्यात्मिक दर्शन का ही प्रभाव पड़ा है । शंकर के निवृत्तिमूलक अद्वैतवाद की बजाय इस पर स्वामी विवेकानन्द, रामतीर्थ, रविबाबू आदि के सामाजिक अध्यात्म का प्रभाव पड़ा है । नवयुग के इन विचारकों ने वेद, उपनिषद्, गीता, वेदान्त तथा वैष्णव धर्म का मिलाकर एक ऐसे अध्यात्मवाद

को जन्म दिया जो देश की प्राचीन दार्शनिक परम्परा मे होता हुआ भी वर्तमान युग की सामाजिक आवश्यकताओ के अनुकूल था। व्यक्ति और समाज, समाज और राष्ट्र राष्ट्र और निखिल विश्व तथा विश्व, विश्वात्मा और परमात्मा का समन्वय प्रस्तुत करते हुए हमारे कवियों ने अध्यात्म की नई व्याख्या प्रस्तुत की। प्राचीन दर्शन की नवीन सामाजिक और मानवतावादी व्याख्या छायावादी कवियो की अद्भुत विशेषता है। भारत के चिर पुरातन अध्यात्मदर्शन का इसे सामाजीकरण कहना बहुत समीचीन है। अध्यात्म दर्शन के इसी सामाजीकरण के कारण छायावादी दर्शन प्रवृत्तिमूलक है। आधुनिक कवि ससार को सत्य और वास्तविक मानकर चले हैं। चराचर विश्व छायावादी कवि को सुन्दर प्रतीत होता है, इसी के साथ वह अपना रागात्मक प्रसार करता है। पंत ने अपने 'गु जन' मे तथा प्रसाद ने 'कामायनी' के आनन्दवादी दर्शन मे विश्व के सौन्दर्य और सत्य का साक्षात्कार कराया है। निराला यद्यपि कुछ मायावाद की ओर भी झुके हैं, किन्तु व्यावहारिक रूप मे वे भी इस हासाश्रुमय जगत की सत्यता को सदा मानते रहे हैं। 'माया है सब माया है' कहने वाला कवि जीव की महानता का ही ज्ञान कराना चाहता है :

मुक्त हो सदा ही तुम, बाधा विहीन बध छन्द ज्यो,
डूबे आनन्द मे सच्चिदानन्द रूप। —जागो फिर एक बार
(परिमल)

इस ससार को ही निराला ने भी स्वर्ग बनाना चाहा है। इसे छोडकर उन्हे 'अधिवास' की भी वाछा नही।

जैसाकि ऊपर कहा जा चुका है, छायावादी कवियों को सामाजिक एव वैयक्तिक व्यथा ने दबाया हुआ था। अत छायावाद की कविता मे व्यथा, वेदना और दु खवाद का स्वर गू ज उठा। दु खवाद भी छायावाद का एक प्रमुख तत्त्व है। निराला तो अन्त तक यही कहते रहे—

दुख ही जीवन की कथा रही
क्या कहूँ आज जो नहीं कही।

महादेवी का तो समस्त काव्य दु ख और पीडा से ही भरा है। पर यह दु ख-वाद, निराशा और वेदना सध्या की कालिमा नही, प्रत्यूष की निहारिका समझनी चाहिये। दु ख और करुणा को इन कवियो ने एक ऐसा तत्त्व बना दिया, जो जीवन को मरुस्थल नही, अपितु उर्वर कुसुमाकर बनाता है। शेले की निम्न पंक्तियाँ इनके दु खवाद पर भी लागू होती हैं

Our Sweetest songs are those
That tell of sadest thoughts

उर्दू के एक कवि की यह उक्ति—'सारे जहाँ का दर्द हमारे दिल मे है'—भी छायावादी कवियो के दु खवाद की प्रत्यायक है। छायावादी कवियों ने इस वेदना और दु ख को एक व्यापक सार्वभौम तत्त्व के रूप मे चित्रित किया। इसी से महादेवी

पीड़ा में ही अपने प्रियतम को ढूंढ़ती रही हैं। निराला का हृदय भी करुण स्वर से भरा हुआ है। जब तक उनके हृदय में यह करुणा और वेदना की भावना है, भला तब तक वे 'अधिवास' की बात कैसे कर सकते हैं? इस विश्ववेदना की तुलना में वे वैयक्तिक मुक्ति को भी ठुकरा देते हैं :

छूटता है यद्यपि अधिवास, किन्तु फिर भी न मुझे त्रास।

—अधिवास (परिमल)

छायावादी कवि इसी विश्ववेदना के भाव से जीवन विमुख व्यक्तिगत मुक्ति का निषेध करता है, वह इस संसार के बंधन में ही अपनी मुक्ति मानता है। जीवन और जगत की लालसा निराला आदि छायावादी कवियों में बराबर पाई जाती है। सुख दुख के सामंजस्य से पूर्ण यह चराचर विश्व प्रसाद, पंत निराला सब को सुन्दर लगा है। निराला-काव्य में पंत, प्रसाद और महादेवी जैसी सुख दुख के समन्वय की स्पष्ट भावना नहीं पाई जाती। फिर भी वे इससे अछूते भी नहीं रहे। 'यमुना के प्रति' कविता में उन्होंने अतीत के सुख दुखमय जीवन की कल्पना इस प्रकार की है :

वह अविकार निविड़ सुख दुख गृह,
कहां कनक कोरों के मौरव, अश्रु-कणों में भर मुसकान,
विरह मिलन के साथ ही खिल पड़ते वे भाव महान।

सुख दुख से युक्त इस मानव जीवन को पूर्ण बनाने की आकांक्षा सभी छायावादी कवियों में पाई जाती है। छायावाद का मूल दर्शन आत्मिक है। अतः छायावादी कवियों ने आत्मसाधना, आत्म परिष्कार, आत्म विस्तार एवं आत्मबलिदान से ही जीवन को पूर्ण बनाने की कल्पना की है। छायावादी दर्शन की मूल प्रेरणा सांस्कृतिक होने के कारण सत्य, सेवा, त्याग आदि उच्च सांस्कृतिक मूल्यों की इसमें प्रतिष्ठा हुई। जग को नव सांस्कृतिक जीवन प्रदान करने की प्रार्थना करते हुए निराला ने गाया—

जग को ज्योतिर्मय कर दो!
प्रिय कोमल पद गामी मन्द उतर
जीवन मृत तरु तृण गुल्मों की पृथ्वी पर—
हंस हंस निज पथ आलोकित कर नूतन जीवन भर दो!

—परिमल

छायावादी कवियों ने नवयुग का आह्वान बड़े उत्साह से किया। वे मानवता को नये हरे-भरे परिधान में देखना चाहते थे। नवयुग में प्राचीन मृतप्राय और गली-सड़ी सामाजिक परम्पराओं को वे कैसे सहन करते? इसी से प्रायः सब कवियों ने प्राचीन जीर्ण शीर्ण रूढ़ियों को मृत्यु दण्ड दिया है। निराला अपनी 'उद्बोधन' कविता में कहते हैं :

गरज गरज घन अन्धकार में गा अपने संगीत,

आँखों में नव जीवन की तू अंजन लगा पुनीत
बिखर झर जाने दे प्राचीन।
जीर्ण-शीर्ण जो दीर्ण धरा मे प्राप्त करे अवसान
रहे अवशिष्ट सत्य जो स्पष्ट।

किन्तु पुरातन के इस खण्डन के साथ ही छायावादी कवियो ने स्वर्णिम अतीत के पुनरुत्थान अथवा भारत के अतीत सांस्कृतिक गौरव का गान भी किया है। यह अतीत-मोह छायावादी कवियो की सांस्कृतिक एव राष्ट्रीय भावना का ही एक रूप है। वर्तमान जीवन की विषमता, पराधीनतापूर्ण अपमान की ठेस को भुलाने के लिए हमारे कवियों ने अतीत के स्वर्णयुग का सहारा लिया। वर्तमान की हार और हीनता का उत्तर उन्होंने अतीत की जीत और ऐश्वर्य से दिया। निराला की 'यमुना के प्रति', 'छत्रपति शिवाजी का पत्र', 'जागो फिर एक बार' (परिमल), 'दिल्ली', 'खण्डहर के प्रति, (अनामिका) जैसी रचनाएँ इसी प्रवृत्ति की ही परिचायक हैं।

इस प्रकार छायावादी कविता हमारे राष्ट्रीय और सांस्कृतिक आन्दोलन को भी बडी सूक्ष्मता के साथ छूती है। भारतेन्दु और द्विवेदी कालीन स्थूल और संकीर्ण देश-प्रेम से छायावादी देश-प्रेम और राष्ट्रीय भाव अधिक भावात्मक एव व्यापक था। निराला की भारती वंदना मे भारत लक्ष्मी का सूक्ष्म रेखांकित भाव-सौन्दर्य का विलक्षण उदाहरण है।

किन्तु छायावादी कवि जीवन की यथार्थ समस्याओं और उसकी विभीषिका मे संघर्षशील नही हुआ। जीवन की वास्तविकता उसे कई बार खिन्न बना देती थी और वह ऐसे क्षणो मे 'कोलाहल की अवनी' को छोड़कर, प्रकृति अथवा अतीत की सुखद छाया मे चला जाना चाहता था। कुछ विचारकों ने इसे छायावादी कवियों की पलायन वृत्ति कह डाला है। पर ये कवि जीवन के गायक थे और कभी-कभी कुछ देर के लिए ही जीवन के कुत्सित यथार्थ से झुंझला कर कल्पना के लोक मे विचरण करना चाहते थे। निराला का काव्य छायावाद की प्रगतिशील प्रवृत्ति का ज्वलंत उदाहरण है। उन्होंने संघर्ष और कर्मठता की जो भावना जगाई, वह उन्हें अन्य छाया-वादी कवियो से विशिष्टता प्रदान करती है।

रहस्यभावना—जिस विराट् रहस्यमय सौन्दर्य-सत्ता के प्रति छायावादी कवियो ने जिज्ञासा और विस्मय की भावना व्यक्त की है, उसी की छवि का पान करने की तीव्र आकांक्षा इनमे पाई जाती है। आधुनिक रहस्यवाद का प्रथम सोपान—जिज्ञासा और उत्कंठा—सभी छायावादी कवियो मे पाया जाता है। छायावादी कवि पंत ने प्रकृति के कण-कण मे उस परोक्ष सत्ता के संकेत और मौन निमन्त्रण सर्वाधिक अनुभव किये हैं। ब्रह्मज्ञानी निराला में यह विस्मय और उत्कंठा की भावना अपेक्षाकृत कम है। फिर भी वे उस अनन्त के प्रति जिज्ञासु पाये जाते हैं। वह स्वयं तरंगो से पूछते हैं :

किस अनंत का नीला अंचल हिला हिलाकर,
आती हो तुम सजी मंडलाकार ! —परिमल

इस प्रकार छायावाद का एक दृढ दार्शनिक पक्ष है जिसे निराला ने पुष्ट किया। इस छायावादी दर्शन में अनेक तत्त्वों का सामजस्य पाया जाता है। जड़-चेतन, व्यष्टि समष्टि, पुरुष नारी, सुख दुःख, प्रवृत्ति निवृत्ति, मुक्ति-बंधन, जीवन-मृत्यु, पलायन और प्रगति, द्वैत और अद्वैत, सांत और अनंत तथा राष्ट्रीयता और अन्तर्राष्ट्रीयता आदि सब ने सामजस्य का अद्भुत प्रयास किया गया।

छायावाद-रहस्यवाद

छायावादी काव्य मूलतः ऐहिक जीवनवादी होते हुए भी उपर्युक्त रहस्य भावना और आध्यात्मिक चेतना से ओत प्रोत है। इसी कारण बहुत से आलोचक छायावाद और रहस्यवाद में कोई भेद नहीं मानते। पर रहस्यवाद को छायावाद से मिला देना भ्रमात्मक ही है। छायावाद अपनी विशिष्ट विचारधारा, जीवन दर्शन, विशेष आत्मिक भाव संवेदन, नवीन काव्य शैली और कलात्मक अभिव्यक्ति के कारण एक व्यापक और विराट् काव्य धारा है, किन्तु रहस्यवाद अपने मूल रूप में केवल आत्मा का परमात्मा के प्रति प्रेम निवेदन है। दोनों में उपर्युक्त रहस्य-भावना तो समान कही जा सकती है किन्तु छायावाद जहाँ परमतत्त्व की जिज्ञासा और कौतूहल तक ही सीमित है वहाँ रहस्यवाद का वास्तविक उन्मेष आत्मा परमात्मा के विरह-मिलन की नाना अनुभूतियों में होता है। छायावाद केवल आधुनिक युग की देन है, जबकि रहस्यवाद प्राचीन काल से प्रचलित है - कबीर, जायसी, मीरा आदि सब में है। वास्तव में आधुनिक युग में दोनों की अभिन्नता का भ्रम इसलिए फैला कि पंत, निराला, महादेवी आदि हमारे छायावादी कवियों ने ही नवीन छायावादी शैली में रहस्यवाद की व्यंजना की। साथ ही छायावाद में उद्दाम वैयक्तिकता के कारण जिस सूक्ष्म प्रेम और सौन्दर्य की अभिव्यक्ति हुई, वह अपने में स्वयं विस्मय और रहस्य था।

आत्म, अनात्म और विश्वात्म परमात्म इन तीन तत्त्वों में सारी सृष्टि और सृष्टिकर्ता को लक्षित किया जा सकता है। कवि का निजी जीवन आत्म है, शेष सब दृश्यमान चराचर जगत् अनात्म है और परम्चालित परमात्म। जब छायावादी कवि आत्म का अनात्म से अर्थात् अपनी आत्मा का चराचर विश्व से सम्बन्ध और अनुराग स्थापित करता है और आत्म अनात्म की ही सीमाओं में अपनी भावाभिव्यक्ति करता है तो उसकी कविता छायावादी कविता कही जाती है, किन्तु जब वह अपनी आत्मा का परमात्मा से सम्बन्ध और प्रेम व्यक्त करता है तो उसका काव्य रहस्यवादी काव्य बन जाता है। इस प्रकार छायावाद और रहस्यवाद हिन्दी काव्य की दो स्वतन्त्र धाराएँ हैं। निराला जी में ये दोनों प्रवृत्तियाँ अपने चरम उत्कर्ष में पाई जाती हैं। उनके रहस्यवाद पर हम अलग प्रकाश डालेंगे, यहाँ केवल छायावादी प्रवृत्तियों को स्पष्ट कर रहे हैं।

आधुनिक रहस्यवाद और कबीर जायसी आदि के प्राचीन रहस्यवाद में जहाँ मूल भावना एक है वहाँ शैली और दर्शन में भेद भी है। छायावाद और आधुनिक

रहस्यवाद में रहस्यभावना और शैली का प्राय साम्य है, किन्तु मूल भावना में ऐक्य नहीं। छायावाद की रहस्य भावना के मूल में मुख्यत सर्वात्मवाद या सर्ववाद काम करता है, रहस्यवाद के मूल में अद्वैतदर्शन है। छायावाद ऐहिक तत्ववाद है तो रहस्यवाद पूर्णत अलौकिक आध्यात्मिक। अस्पष्ट, सूक्ष्म और रहस्यमयी भावाभिव्यक्ति दोनों में रहती है। प्रतीक योजना, अन्योक्ति शैली, नवीन उपमान योजना, लाक्षणिक प्रयोग, मूर्त्त अमूर्त्त विधान आदि शैली की विशेषताएँ आधुनिक रहस्यवादी काव्य में छायावाद के समान ही हैं। दोनों में आत्माभिव्यक्ति और वैयक्तिकता भी समान है। छायावाद में केवल सौन्दर्यमूलक और प्रकृतिपरक रहस्य भावना ही है, रहस्यवाद में इसके अतिरिक्त प्रकृतिपरक रहस्यवाद (मुख्यत निराला और महादेवी में), प्रार्थनापरक रहस्यवाद (निराला में), भक्तिपरक रहस्यवाद (कबीर मीरा, निराला आदि), दमनपरक रहस्यवाद (कबीर आदि प्राचीन और निराला) तथा प्रेमपरक रहस्यवाद (कबीर, निराला, महादेवी आदि सब में) आदि सभी रहस्यवादी प्रवृत्तियाँ सम्मिलित हैं। छायावाद में जीवन जगत, राष्ट्रीय भावना, सुख दु ख-वर्णन, प्रकृति का आलम्बनगत चित्रण, सेवा, त्याग, करुणा आदि जीवन की उच्च सांस्कृतिक भावनाएँ आदि विषय क्षेत्र की व्यापकता है, रहस्यवाद में केवल आत्मा की परमात्मा से साक्षात्कार और मिलन की तड़प का वर्णन रहता है। रहस्यवाद की असीम और निराकार के प्रति सीमित भाव-व्यंजना प्रबंध काव्य का विषय नहीं बन सकी, छायावाद की वैयक्तिकता ने कुछ प्रबंध काव्य भी दिए—'कामायनी'—जैसा महाकाव्य भी। निराला के रहस्यवाद पर हम आगे प्रकाश डालेंगे, यहाँ उनके छायावाद की विशेषताएँ बताना ही अभीष्ट है।

प्रकृति प्रयोग—जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, छायावादी कवियों की आत्मप्रसार और स्वच्छन्दता की वृत्ति उन्हें प्रकृति के उन्मुक्त प्रांगण में ले गई जहाँ उन्होंने अनन्त प्रेम, अपार सुषमा और सौन्दर्य, पवित्रता, निश्छलता और स्वच्छन्दता का अनुभव किया। नदी नालों, निर्झरों, पशु-पक्षियों, मेघ पवन आदि की स्वच्छन्द गति में उन्होंने अपनी स्वच्छन्द तान मिलाई। प्रकृति के साथ छायावादी कवियों ने आत्मीयता का सम्बन्ध स्थापित किया। प्रकृति के कण-कण को उन्होंने सचेतन व्यक्तित्व प्रदान किया। पुष्प, लता, पशु पक्षी, तृण गुल्म सब मानवीय क्रिया-कलाप करने लगे और अपने हृदय के छिपे रहस्यों को मानव के सम्मुख प्रकट करने लगे। प्रकृति और मानव में एकात्म्य स्थापित हुआ। प्रकृति के प्रति यह सहज अनुराग मध्ययुग की कविता में नहीं था।

छायावादी कवियों ने बहुधा प्रकृति के मानवीकरण रूप में प्रकृति के सश्लिष्ट चित्र प्रकट किए हैं। प्रकृति को नारी रूप में अधिक चित्रित किया गया है। निराला की 'संध्या सुन्दरी' जब परी-सी मेघमय आसमान से उतरती है, तो उसकी मधुर, धीर और गम्भीर, गात में हास्य-विलास का अन्त, तिग्ध और गंभीर वातावरण उतर आता

है। नारी-रूप मे प्रकृति का चित्रण करके छायावादी कवियों ने प्रकृति के माध्यम से अपनी शृंगार भावना को भी तुष्ट किया है। निराला की 'जुही की कली', 'शेफालिका' आदि कविताएँ इसी प्रवृत्ति की द्योतक हैं। इनमे प्रकृति का ऐन्द्रिक चित्रण (Sensuous treatment of nature) हुआ है। 'जुही की कली' का नायिका-रूप मे ऐसा चित्रण निम्न पंक्तियों मे देखिए :

विजन वन-वल्लरी पर सोई थी सुहागभरी
स्नेह स्वप्न मगन, अमल-कोमल तनु-तरुणी,
जुही की कली।
वासती निशा थी; फिर क्या? पवन—
उपवन-सर-सरित गहन-गिरि-कानन
कुंज-लता-पुंजों को पार कर
पहुंचा जहां उसने की केलि
हेर प्यारे को सेज-पास
नम्रमुखी हंसी-खिली
खेल रंग, प्यारे संग।

प्रकृति मानव के प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट करती है। छायावाद में प्रकृति की संवेदनशीलता का खूब वर्णन हुआ है। मानव भी अपनी सतवेदना प्रकट करता है। निराला जी का हृदय प्रकृति के कष्टों को देखकर करुणा-प्लावित हो जाता है। अम्लान पुष्प के उन्मुक्त सौरभदान और मृदु मुस्कान पर रीझ कर निराला को उसे धूल में मिलाने वाले माली और पुजारी पर क्रोध आता है :

तुम्हारा इतना हृदय उदार,
वह क्या समझेगा माली निष्ठुर गिरा मंदार।

'रास्ते के फूल' से महाकवि निराला ने और भी अधिक तादात्म्य और सहानुभूति दिखाई है। प्रकृति के अनेक अन्य रूपों—जैसे 'सरित', 'प्रपात', 'कण', 'वासन्ती', तरंग आदि से भी वे आत्मीयता का सम्बंध स्थापित करते प्रतीत होते हैं। तरंगों में विकलता और विह्वलता का अनुभव करता हुआ कवि उनसे प्रश्न करता है :

क्यों तुम भाव बदलती हो? हँसती हुई कर मलती हो!

छायावादी प्रकृति-प्रयोग का एक रूप है उसमे विराट् परम सत्ता की खोज विस्मय और जिज्ञासा की भावना तथा सर्वात्मवाद के माध्यम समस्त चराचर सृष्टि में एक ही अखण्ड आत्मा का आभास पाना। निराला-काव्य से इसके उदाहरण हम ऊपर दे चुके हैं। रहस्यभावना के अतिरिक्त प्रकृति का विराट् चित्रण भी निराला में खूब पाया जाता है। प्रकृति का अलंकार-रूप मे प्रयोग भी छायावादी कवियों ने नवीन ढंग से किया। उन्होंने प्रकृति के क्रोड मे सुन्दर उपमानों का चयन कर उनकी ऐसी अनूठी नियोजना की कि कविता 'कल्पना के कानन की रानी' और अभिनव सौन्दर्य-सुषमा की 'खानि' बन गई। निराला की ऐसी योजनाओं के उदाहरण हम आगे देते हैं।

के उस पार' ललकता है, कभी नाना वस्तु रूपो को भव्यता और विराटता प्रदान करता है और कभी भविष्य के आदर्श-लोक की स्थापना करना चाहता है।

द्विवेदी कालीन खडी बोली की आरभिक इतिवृत्तात्मक, गद्यवत्, शुष्क काव्यशैली को छायावादी कवियो ने लाक्षणिक भाव भगिमा से युक्त कल्पनाशील कलात्मक शैली के रूप मे परिवर्तित कर दिया। प्रकृति के क्रोड से उनकी सजग कल्पना अनेक नवीन उपमानो को खोज लाई। भाषा को नवीन छन्द, नवीन रगरूप, ध्वनि और पद लालित्य प्रदान हुआ। छायावादी कवियो का सौन्दर्य बोध अत्यन्त सूक्ष्म और "व्य था। नव गति, नव-लय-ताल-पद, छन्द और सब कुछ नव का जो आग्रह बढा, उसने एक नूतन कला का सृजन किया। पूर्वकाल की लालित्यहीन पदावली की जगह ध्वन्यर्थ व्यजक मधुर सगीतात्मक ललित पदावली से कवितारामनी का शृगार हो ने लगा।

भाव और भाषा का सामजस्य तथा स्वरैक्य स्थापित करने के लिए छायावादी कवियों ने ध्वन्यर्थ व्यजना (Onomatopoeia) का खूब प्रयोग किया है। शब्द-ध्वनि ही बहुत बार प्रसग और अर्थ का बोध कराकर एक चित्र सा प्रस्तुत कर देती है। निराला की ये पक्तियाँ पढिए

झूम झूम मृदु गरज गरज घनघोर!
राग अमर! अम्बर मे भर निज रोर!
झर-झर झर निर्झर गिरि सर मे,
घर, मरु तरु मर्मर, सागर मे,
अरे वर्ष के हर्ष! बरस तू बरस बरस रसधार।

उपर्युक्त शब्द-बध कैसा ध्वनि चित्र और नाद सौन्दर्य प्रकट कर रहे है!

छायावादी कवियो ने मधु, मधुर, सुधा, सुरभि, चचल, पलक, अलि, कलि, पलक, अधर, सुधि, सजल, करुणा, मृदुल, करुण, अरुण, सुमन, सेज, तरल, सिहरन, उर्मिल, कलकल, छलछल, मुग्ध, वासती, नीरव, गुञ्जन कम्पन, स्पन्दन, सुवर्ण आदि अनेक छोटे-छोटे तीन तीन चार-चार वर्णों के रोमानी शब्दो का मोहक और सजीव प्रयोग किया है। शब्दो का परिज्ञान इन कवियो को इस हद तक था मानों शब्दों के अन्तर मे पैठकर इन्होने उनके कलरव को सुना हो। लहर, तरग, वीचि, उर्मि, हिल्लोल जैसे पर्यायवाची शब्दो के सूक्ष्म अन्तर और भिन्न भिन्न अर्थ छायाओ का सूक्ष्म अनुभव इन्होंने किया। छायावादी कवियो ने अग्रेजी के अनेक रोमानी शब्दो को भी छायानुवाद करके ग्रहण किया। निराला की अपेक्षा पन्त में यह प्रवृत्ति अधिक दिखाई देती है। 'ब्रोकन हर्ट', 'हेवेन्ली लाइट', 'एटर्नल म्यूजिक आफ द स्फीयर' आदि के लिए क्रमश 'भग्नहृदय', 'स्वर्गीय प्रकाश', 'शाश्वत नभ के गान' आदि शब्दो का प्रयोग किया गया।

छायावादी कवियो के शब्दचयन की एक बहुत बडी विशेषता है साभिप्राय

विशेषणों का प्रयोग। सुन्दर लाक्षणिक, चित्रात्मक विशेषणों के प्रयोग में ये कवि बहुत कुशल हैं। निराला काव्य में सोई तान, स्निग्ध आलोक, ज्योतिर्मयी लता आदि अनेक सहज प्रयोग मिलते हैं। भाषा को चित्रात्मक शक्ति प्रदान करने का इन कवियों ने स्तुत्य कार्य किया। निराला अपने विराट् चित्रों के लिए प्रसिद्ध हैं। सध्यासुन्दरी, जुही की कली, रत्नावली आदि के अनेक चित्रों में उनकी चित्रशक्ति का परिचय मिलता है। लाक्षणिक मूर्तिमत्ता, मानवीकरण, विशेषण-विपर्यय आदि छायावादी शैली की सभी विशेषताएँ निराला की भाषा में पाई जाती हैं। 'नयनों का नयनों से वचन', 'स्पर्श' में—

लाज लगी, 'देखा मुझे उस दृष्टि से जो मार खा रोई नहीं',

आदि उदाहरणों में लाक्षणिक भाव-भंगिमा का सुन्दर पुट है। इसी प्रकार 'सूखी री यह डाल वसन वासती लेगी', 'प्रपात', 'सध्या सुन्दरी' जैसी अनेक कविताओं में प्रकृतिगत मानवीकरण के सुन्दर उदाहरण मिलते हैं। 'स्मृति' जैसी कविताओं में अमूर्त भावों के मानवीकरण की भी कमी नहीं। 'चल चरणों का व्याकुल पनघट', 'प्रिय की शिथिल सेज', 'किस विनोद की तृषित गोद में' आदि पंक्तियों में विशेषण-विपर्यय के अनेक सुन्दर उदाहरण केवल निराला की 'यमुना के प्रति' कविता से प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

सौन्दर्यमय प्रतीक-विधान के रूप में लाक्षणिक प्रयोग भी छायावादी कलात्मक शैली की एक विशेषता है। निराला ने प्रकाश ज्ञान के लिए, अन्धकार अज्ञान के लिए, वसंत आनन्द के लिए, पतझर दुःख के लिए, नीडमय पक्षी ससारबद्ध आत्मा के लिए, हीरे की खान आत्मतत्व के लिए तथा इसी प्रकार के अनेक प्रतीकात्मक प्रयोग स्थान-स्थान पर किये हैं। छायावादी शैली की सांकेतिकता और प्रतीकात्मकता की विशेषता भी निराला में खूब पाई जाती है।

छायावादी कवियों की सौन्दर्यचेतना ने अप्रस्तुत विधान को भी एक नवीन दीप्ति प्रदान की। प्रभाव-साम्य पर इन कवियों ने अधिक ध्यान दिया। परम्परागत रूढ़ उपमानों के स्थान पर इन्होंने नूतन सौन्दर्य-बोध के अनुरूप नवीन उपमान-योजना की। निराला अपनी भव्य उपमाओं के लिए आधुनिक कवियों में सर्वप्रसिद्ध हैं। रत्नावली के चले जाने पर तुलसीदास को वह उसी प्रकार और भी आकर्षक लगने लगी जिस प्रकार दूर की तान मीठी लगती है—

वह आज हो गई दूर तान, इसलिए मधुर वह और गान।

मूर्त प्रस्तुत के लिए मूर्त अप्रस्तुत-योजना भी निराला जी की अत्यन्त मार्मिक और नवीन होती है। भारत की विधवा के लिए वे कहते हैं—

वह टूटे तरु की छुटी लता सी दीन

'उनकी स्मृति' (परिमल) कविता में ही कितनी सूक्ष्म उपमाएँ एक साथ आई हैं। अमूर्त स्मृति के लिए मूर्त उपमान 'स्मृति' कविता में देखिए—

अमूर्त के लिए मूर्त —उषा सी क्यों तुम कहो, दिवस।
'उसकी स्मृति' में मुस्कान के लिए सुन्दर उपमा माला
(१) मृदु मुग्ध सी कोमल दल फूलों की।
(२) शशि किरणों की सी वह प्यारी मुस्कान।

*छायावादी कवियों की सांकेतिक अभिव्यक्ति अन्योक्ति, समासोक्ति, रूपकाति*शयोक्ति तथा रूपकों, सांगरूपकों आदि के रूप में भी प्रकट हुई है। प्रभावसाम्य क ही इनमें भी अधिक ध्यान रखा गया है। निराला की 'कण', 'जलद के प्रति' आदि कविताएँ पूरी की पूरी अन्योक्तियाँ हैं।

छायावादी कवियों की अन्तर्मुखी प्रवृत्ति के कारण उनकी कविता में अधिक तर अर्थालंकार ही मिलते हैं, तो भी अनुप्रास, श्लेष, यमक, वीप्सा, ध्वन्यर्थव्यंजन आदि शब्दालंकारों का भी छायावादी काव्य में स्वाभाविक प्रयोग यत्र तत्र मिलता है।

गीतिकाव्य

छायावादी कविता वैयक्तिक कविता है। कवियों के व्यक्तिगत सुख दु ख, हर्ष विषाद, उनकी अपनी अनुभूतियों का भावावेशमय चित्रण ही छायावाद में हुआ है यही कारण है कि छायावादी कविता मुख्यत प्रगीतात्मक ही रही। 'ग्रन्थि', 'राम की शक्तिपूजा', 'तुलसीदास' आदि जो दो-चार लघु खण्डकाव्य रचे गये, वे भी प्रगीतात्मक ही प्रतीत होते हैं, यहाँ तक कि छायावाद का एकमात्र महाकाव्य 'कामायनी' भी अपने ढंग का प्रगीतात्मक महाकाव्य है। छायावादी दृष्टि अन्तर्मुखी ही रही, इसी से इसमें बाह्यपरक प्रबन्धकाव्यों की रचना सभव नहीं हुई। निराला, पन्त और प्रसाद के क्रमश 'तुलसीदास', 'ग्रन्थि' और 'कामायनी' जैसे प्रयासों में भी भाव-प्रवणता, बाह्य घटनाओं और सघर्षों का अभाव, व्यंजक कलात्मक भाषा तथा प्रगीतात्मकता की प्रधानता के कारण प्रबन्ध काव्य की सफल योजना दिखाई नहीं देती। छायावाद ने गीतिकाव्य को पूर्णता प्रदान की। भाव प्रवणता, सगीतात्मकता, आत्माभिव्यंजना, भाषा की कोमल-कान्तता, संक्षिप्त भावाभिव्यक्ति आदि गीतिकाव्य की समस्त विशेषताएँ निराला, प्रसाद पन्त, महादेवी में पाई जाती हैं। निराला ने भारतीय और पाश्चात्य दोनों सगीत-पद्धतियों से गीत-प्रगीत का अच्छा सस्कार किया।

छन्द-प्रयोग—छन्द प्रयोग में भी छायावादी कवियों ने अद्भुत नूतनता दिखाई। परम्परागत काव्य रूढ़ियों और छन्द बन्धनों से इन्हें घृणा थी। इन कवियों ने नवीन *छन्दों का प्रयोग किया। मात्रिक छन्दों में ऐसे प्रकारों की सृष्टि हुई जिसमें प्रत्येक* चरण में भिन्न भिन्न छन्दों का प्रयोग मिलता है। छायावादी कवियों ने न केवल द्विवेदी जी द्वारा प्रेरित वार्णिक छन्दों की खड़ी बोली के लिए अनुपयुक्तता अनुभव की, अपितु मात्रिक छन्दों के प्रयोग में भी किसी चरण की मात्राओं को घटाने बढ़ाने की स्वतन्त्रता भी बरती और छन्द योजना में अनेक प्रयोग किये। तुकांत, अतुकांत आदि कई प्रकार के मिश्रित छन्दों का निर्माण हुआ।

निराला ने तो अपने मुक्त छन्द को ही बडी धूम धाम मे चलाया। छन्द-सम्बन्धी यह स्वतन्त्रता छायावाद की भाव-स्वच्छन्दता का ही परिणाम है। छायावाद के भावावेग ने छन्दो के साथ ही काव्यरूप मे भी पर्याप्त परिवर्तन किया। प्राचीन काव्यरूपो से भिन्न गीत, प्रगीत तथा 'राम की शक्तिपूजा', 'सरोज स्मृति' जैसी प्रलम्ब गीतियाँ तथा अग्रेजी के 'ओड', सान्नेट, एलेजी के ढग की सम्बोध गीतियाँ, चतुर्दशपदी गीतियाँ, और शोक गीत रचे गए। निराला ने 'तरगों के प्रति', 'खण्डहर के प्रति', 'यमुना के प्रति' आदि अनेक सम्बोध गीत रचे और 'सरोज स्मृति' उनका उच्चकोटि का शोकगीत है।

इस प्रकार छायावाद की कलात्मक अभिव्यक्ति, नवीन भाषा शैली, नई शब्द-छन्द योजना आदि सबकुछ नव के आग्रह से पुष्ट हुई। छायावादी कवियो की रगीन कला उनकी कल्पना शक्ति की अद्भुत देन है।

अन्त मे कहा जा सकता है कि छायावाद हमारी विशेष सामाजिक और साहित्यिक आवश्यकता का प्रतिफल है। वह न केवल अभिव्यक्ति की एक नूतन अनूठी पद्धति मात्र है, जैसा कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल आदि छायावाद के कतिपय प्रारम्भिक आलोचकों का मत था, न केवल प्रकृति को चेतना प्रदान करना मात्र छायावाद है जैसाकि श्री विश्वम्भर मानव उसे मानते हैं और न वह पलायन का काव्य है, जैसाकि कुछ प्रगतिवादी आलोचक कहते है। वस्तुत वह एक व्यापक जीवन दृष्टि और काव्य दृष्टि है। समाज और साहित्य को उसने जिस तरह पुरानी रूढियो से मुक्त किया, उसी तरह आधुनिक राष्ट्रीय और मानवतावादी भावनाओ की ओर भी प्रेरित किया।

छायावाद के चार स्तम्भ प्रसाद, निराला, पन्त और महादेवी उसकी गौरव-गाथा के प्रतीक हैं। चारों ने छायावाद के समस्त अगों को विकसित करने में योग दिया फिर भी किसी ने किसी पक्ष मे अधिक रग भरा, किसी ने अन्य मे। निराला जी छायावादी कविता मे भाव और अभिव्यजना के नए पथ निकालने और नए प्रयोग करने में सबसे आगे रहे। पन्त जी सौन्दर्य-चयन और अभिव्यजना शक्ति सवारने में अग्रणी रहे। महादेवी ने गीत-सगीत मे विशेष प्राण प्रतिष्ठा की। प्रसाद मे इन सबकी विशेषताओं के अश सम्मिलित हैं। इन चारों मे निराला का व्यक्तित्व सबसे अधिक विद्रोही और क्रान्तिकारी रहा। एक ओर उन्होंने भाषा और शैली में बहुल प्रयोग किये: कहीं सस्कृत की समासबहुल पदावली, कहीं सरल तद्भव शब्दावली तथा कहीं उर्दू अंग्रेजी के शब्दो को खूब अपनाकर विशेष प्रयोग किये और लय के ही आधार पर स्वच्छन्द छन्द का निर्माण किया, वहाँ विषय और भाव-क्षेत्रों में भी उनकी सी विविधता अन्य कवियो मे दिखाई नहीं देती। 'जुही की कली' सौन्दर्यवादी रोमैंटिक प्रवृत्ति की द्योतक है, तो 'भिक्षुक', 'विधवा', 'तोडती पत्थर' आदि यथार्थ प्रगतिशील दृष्टिकोण की परिचायक हैं। प्रकृति चित्रण, राष्ट्र प्रेम, विश्वप्रेम, रहस्य-भावना,

भक्तिभावना आदि अनेक भाव रूपों मे निराला जी की कविता धारा प्रवाहित हुई है। महादेवी और पन्त केवल कोमल अनुभूतियों के ही कवि रहे हैं, प्रसाद और निराला में ओज और संघर्ष भी पाया जाता है। इन दोनो मे भी निराला मे संघर्ष का स्वर अधिक मुखर और स्पष्ट है। 'राम की शक्ति पूजा', 'बादल राग' जैसी ओजस्विता प्रसाद की भी शायद ही किसी एक रचना में हो। प्रकृति के साथ भावमय तादात्म्य पन्त मे सर्वाधिक है। कल्पना की स्वच्छन्दता भी पन्त मे अधिक दिखाई देती है। महादेवी का काव्य इनम सबसे अधिक वैयक्तिक और सीमित है। उनकी भाषा शैली छायावादी है, भाव बोध मुख्यत रहस्यवादी है। इस प्रकार इन चारो कवियो की समष्टिचेतना छायावादी होते हुए भी प्रवृत्तियों की विशिष्टता इनके काव्य को अलग-अलग व्यक्तित्व प्रदान करती है।

छायावाद की दुर्बलताएँ और प्रतिक्रिया

छायावादी काव्य की उपर्युक्त विशेषताओ और उपलब्धियो पर प्रकाश डालने के पश्चात् यहाँ अब उसकी उन कमजोरियो का संकेत निर्देशन भी आवश्यक है, जिनके कारण इस काव्यधारा का पतन हुआ। छायावाद की सबसे बडी दुर्बलता तो यही रही कि इसका वैयक्तिक स्वर सीमित भाव भूमि मे ही रहा। निराला की 'विधवा', 'भिक्षुक' जैसी कुछ कविताओ के अपवाद के साथ यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि ये कवि अपने छायावादी रूप मे जरा भी बाह्योन्मुख न हो सके। समाज की यथार्थता का बोध इन्हे बहुत बाद मे हुआ, और जब वह हुआ तब स्वय इन्होने ही (विशेषत पन्त और निराला ने) अपनी छायावादी प्रवृत्ति को तिलाञ्जलि सी दे दी। केवल वैयक्तिक आन्तरिक मानसिक राग अलापने से समाज की क्षुधापूर्ण अशाति और असन्तोष की भावना सन्तुष्ट नही हो सकती थी। यही कारण है कि कल्पना के आदर्श-लोक मे ही विचरण करते रहना स्वय इन्हे ही असगत सा प्रतीत होने लगा, पन्त जी ने पुकारा—

> ताक रहे हो गगन? ·
> देखो भू को! जीव प्रसू को! मानव पुष्प प्रसू को!

निराला की 'बादल राग' जैसी कुछ कविताओं को छोडकर अन्य समस्त छायावादी काव्य मे केवल कोमल भावो की ही व्यंजना हुई। समाज को पूर्ण जाग्रत, समुन्नत और दृढ बनाने के लिए उत्साह, क्रोध साहस, वीरता आदि उदात्त, उग्र और प्रचड भावो की भी आवश्यकता थी, जिनकी स्पष्ट अभिव्यक्ति छायावाद में न हो सकी। छायावादी कवि की दृष्टि नाना वस्तुओ और विषयो पर तो गई, पर उन सबसे भी उसने वैयक्तिक सीमित अनुभूति या सूक्ष्म कल्पना की वायवी अनुभूति ही पाई, जीवन की नाना विध समस्याओं, ज्वलत यथार्थ प्रश्नों और युग बोधों से वह कटा-कटा सा रहा।

छायावादी कवि अपनी ऊहात्मक कल्पना की ताक-झोंक में कहीं कहीं बिल्कुल

अस्पष्ट भी हो गया है, ऐसा कि 'कुछ न समझे खुदा करे कोई।' छायावादी कवियों की कुछ क्लिष्ट कल्पनाएँ भी उनकी बहुत बड़ी दुर्बलता सिद्ध हुई। निराला को भी कुछ कविताओं में अस्पष्टता का यह दोष पाया जाता है। डा० देवराज ने 'छायावाद का पतन' शीर्षक लेख में लिखा है "अनामिका की प्रथम दस-बारह कविताओं मे पाठक किसी को पढकर समझने की कोशिश करें, उन्हें शायद ही पचास प्रतिशत भी सफलता हो। निराला के काव्य की कठिनाई का प्रमुख कारण अनुभूति का निरालापन है या समजस ग्रथन की अक्षमता, कहना कठिन है।" इसी प्रकार पन्त की 'स्याही की बूँद' जैसी कविताएँ छायावाद की दुर्बलता सिद्ध हुई।

अपनी बौद्धिकता और ऊहात्मक कल्पना पर आधृत अतिशय कलाप्रियता के कारण छायावादी कवि की अनुभूति बहुत बार निश्छल और विशुद्ध नही रही। बौद्धिक चिंतन मे रागात्मकता का ह्रास होने लगा था। उदात्त भावावेगो के स्थान पर शुष्क बौद्धिकता से छायावादी काव्य मे सरसता की भी कमी होने लगी थी।

छायावाद की प्रतिक्रिया प्रगतिवाद के रूप मे हुई, जो बहुत ही स्वाभाविक और प्रामणिक थी। कविता और जीवन का उखड़ा हुआ सम्बध जुड़ने लगा। छायावाद की क्षितिज के पार का गान गाने और पार जाकर निराला ससार बनाने की प्रवृत्ति का विरोध हुआ। स्वय निराला और पंत जैसे छायावाद के प्रवर्तक कवियो ने अपने अन्तर के आसू पोछ बाह्य जगत् मे छलाग लगाई। सौन्दर्य और कल्पना के रहस्य-लोक से लौटने वाले कवि पत स्वय कहते हैं, "छायावाद इसलिए अधिक नहीं रहा कि उसके पास भविष्य के लिए उपयोगी, नवीन आदर्शो का प्रकाश, नवीन भावना का सौन्दर्य-बोध और नवीन विचारो का रस नही था। वह काव्य न रहकर केवल अलकृत सगीत बन गया था। वह नये युग की सामाजिकता और विचारधारा का समावेश नही कर सका था। उसमे व्यावहारिक क्रांति और विकासवाद के बाद का भावना-वैभव तो था, पर महायुद्ध के बाद की अन्न वस्त्र की धारणा (वास्तविकता) नही आई थी।" ('आधुनिक कवि पत' की भूमिका)।

यह सब होते हुए भी छायावादी काव्य का ऐतिहासिक और साहित्यिक महत्त्व हिन्दी साहित्य मे आज तक अक्षुण्ण है और रहेगा। इस काव्य प्रवृत्ति का व्यापक प्रभाव समूचे हिन्दी साहित्य पर आज तक दिखाई देता है। क्या नये गीतकारो ने और क्या प्रयोगवादी या नई कविता के रचने वालो सबने छायावाद के दाय को किसी न-किसी सीमा तक अवश्य अपनाया है। एक तरह से देखा जाय तो कहा जा सकता है कि जहा पत के परवर्ती काव्य (ग्राम्या, युगवाणी आदि) और निराला के 'कुकुरमुत्ता' में छायावाद का एकदम पतन स्पष्ट दिखाई देता है वहाँ इन की परवर्ती रचनाओं मे उसके पुनरुत्थान की ही कहानी पाई जाती है। निराला के अनेक परवर्ती गीतो में शैली और भाव व्यजना बहुताश में छायावादी बनी रही है। इस दृष्टि से यह भी कहा जा सकता है कि छायावाद का सर्वथा अत कभी नहीं हुआ, आज तक नही हुआ। आज की कविताओं में भी छायावाद की अनेक प्रवृत्तियाँ जीवित दिखाई देती हैं।

: ३ :

रहस्यवाद और निराला

रहस्यवाद अर्थ और परम्परा—रहस्यवाद शब्द हिन्दी म अंग्रेजी के 'मिस्टिज्म' का पर्यायवाची है। अंग्रेजी के 'मिस्ट' शब्द का अर्थ है—अस्पष्ट धुंधला या कुहासे से ढका। सस्कृत के रहस्य शब्द का अर्थ भी एकात, गुप्त, भेद आदि से सम्बन्धित है। इसी आधार पर जीवन तथा व्यवहार में अस्पष्ट और भेद-भरी बातो को रहस्यमय कहा जाता है। आदि काल से आज तक मानव के लिए यह चित्र विचित्र सृष्टि, जन्म-मृत्यु, परिवर्तन, प्रकृति के नाना रूप रग रहस्यमय और विस्मयकारी रहे हैं। ऋग्वेद के नारदीयसूक्त मे भी इस रहस्यमयी सृष्टि और इसके रचयिता के बारे में जिज्ञासा व्यक्त हुई है। उपनिषद् साहित्य मे तो जगत्, जीव सृष्टिकर्ता आदि तत्वो का रहस्यमय अनुचिंतन और परोक्ष सत्ता के प्रति रहस्यमयी अनुभूति की स्पष्ट अभिव्यक्ति मिलती है।

आधुनिक युग मे साहित्य के अन्तर्गत रहस्यवाद से अभिप्राय है परोक्ष सत्ता के प्रति विस्मय, जिज्ञासा, खोज, रागात्मक अनुभूति और अद्वैत भावना का प्रकाशन। उपनिषद् काल मे आधुनिक तक भारतीय साहित्य मे रहस्यवाद की अनुभूति धारा किसी-न किसी रूप मे प्रवाहमान् रही है। कुछ आरंभिक विचारको, जैसे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रहस्यवाद का पश्चिम की देन मानने की भूल की थी, पर अब यह निर्विवाद रूप से प्रमाणित हो चुका है कि रहस्यवाद भारतीय अध्यात्म और दर्शन की अभिन्न प्रवृत्ति है।

हिन्दी साहित्य मे इसकी परम्परा का स्रोत आदिकाल से ही उपलब्ध हो जाता है। मध्यकालीन सतो सूफी फकीरो और भक्तो ने तो इस प्रवृत्ति से हमारे साहित्य को खूब समृद्ध किया। मध्ययुगीन कबीर, नानक, दादू, मीरा आदि म सच्ची अध्यात्म-साधना का बल था। उनका रहस्यवाद अनुभूति प्रधान था। आधुनिक रहस्यवादी कवि उस हद तक अध्यात्म लीन नही हो सकते थे, अत आधुनिक रहस्यवाद मे कल्पना और बौद्धिकता का पुट अधिक है। भारतीय विचारधारा और अद्वैत दर्शन के साथ-साथ आधुनिक रहस्यवाद पर कुछ कुछ पाश्चात्य विचारधारा का प्रभाव भी दिखाई देता है। यही कारण है कि आधुनिक रहस्यवाद मे प्रकृतिपरक रहस्यवाद भी खूब

पाया जाता है। प्राचीन रहस्यवाद और आधुनिक रहस्यवाद में कुछ भिन्नता होते हुए भी दोनों की मूल भावना एक ही है।

आधुनिक युग मे श्री रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ, अरविन्द आदि मनीषियों ने भारतीय वेदान्त दर्शन का नवोत्थान किया। बंगला में कवीन्द्र रवीन्द्र ने श्रेष्ठ रहस्यवादी काव्य की रचना की। हिन्दी मे छायावाद के चारो प्रमुख स्तम्भ—प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी, तथा बालकृष्ण शर्मा नवीन, रामकुमार वर्मा, तारा पांडेय आदि अनेक कवियो ने रहस्यवादी भावधारा प्रवाहित की। इन सब में निराला और महादेवी का स्वर सब से ऊंचा रहा।

रहस्यवाद का आधार अद्वैत दर्शन कहा जाता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रहस्यवाद की परिभाषा इन शब्दों मे दी थी, "जो चिंतन के क्षेत्र मे अद्वैतवाद है, वही भावना के क्षेत्र मे रहस्यवाद है।" डा० रामकुमार वर्मा का कथन है कि "रहस्यवाद जीवात्मा की उस अन्तर्हित प्रवृत्ति का प्रकाशन है जिसमें वह दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना शांत व निश्छल सम्बन्ध जोड़ना चाहती है। यह सम्बन्ध यहाँ तक बढ़ जाता है कि दोनों में कुछ भी अन्तर नहीं रहता।" (कबीर का रहस्यवाद)। यहाँ एक भ्रांति का निराकरण आवश्यक है। रहस्यवाद का आधार अद्वैत भाव है अद्वैत दर्शन नहीं। निराला की 'तुम और मैं' कविता के दर्शनपरक रहस्यवाद के विवेचन में हमने इस तथ्य को स्पष्ट किया है।

रहस्यवाद मे कवि अपनी आत्मा का परमात्मा से रागात्मक सम्बन्ध जताता हुआ दोनों के अद्वैत की व्यंजना करता है। रहस्यवाद मुख्यतः चार रूपो मे व्यक्त होता है—१. प्रकृतिपरक रहस्यवाद, २ दर्शनपरक रहस्यवाद, ३. भक्तिपरक रहस्यवाद और ४. प्रेमपरक रहस्यवाद। वैसे तो सभी प्रकार के रहस्यवाद के मूल में प्रेम भावना रहती है, किन्तु प्रेमपरक रहस्यवाद में आत्मा-परमात्मा के प्रणय की अभिव्यक्ति सीधी होती है। प्रकृतिपरक रहस्यवाद में प्रकृति के माध्यम से और दर्शनपरक रहस्यवाद मे कवि परमात्मा से अपना सम्बंध दार्शनिक आधार पर व्यक्त करता है। भक्तिपरक रहस्यवाद मे प्रेम के साथ श्रद्धा और भक्ति का योग रहता है। रहस्यवाद और छायावाद का भेद छायावाद के प्रकरण मे स्पष्ट किया गया है।

निराला-काव्य की पृष्ठभूमि का अध्ययन करते हुए हम पीछे देख चुके हैं कि किस प्रकार निराला की अभावपूर्ण दुखद जीवन परिस्थितियों तथा युगीन प्रभावों ने उनकी मानसिक प्रवृत्ति अध्यात्मोन्मुख बनाई। दुःख, करुणा, विधाता का प्रकोप, सामाजिक अन्याय और उपेक्षा की कसक—सबने मिलकर निराला में भौतिक जीवन से वैराग्य और वितृष्णा की भावना जगाई। उधर सयोगवश बंगला रहस्यवाद और अद्वैत दर्शन से उनका निकट सम्बन्ध स्थापित हो गया। रामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानन्द की आध्यात्मिक विचारधारा ही नहीं, रहस्यवादी अनुभूति भी निराला में संस्कारबद्ध हो गई। 'समन्वय' पत्रिका के सम्पादन-काल में ही निराला ने रहस्यवादी

अनुभूतियो को अपनी अन्तश्चेतना मे सचित कर लिया था। कवीन्द्र रवीन्द्र का प्रभाव भी अमिट रूप से पडा। निराला ने कवीन्द्र रवीन्द्र और विवेकानन्द की अनेक रहस्य वादी रचनाओं का हिन्दी मे अनुवाद भी प्रस्तुत किया।

निराला काव्य का दार्शनिक आधार अत्यन्त पुष्ट है। इसका एकमात्र कारण है उनकी अध्यात्म प्रवृत्ति। इस अध्यात्म प्रवृत्ति ने निराला काव्य के तीन प्रमुख पक्ष उद्घाटित किये—१ उच्च सास्कृतिक आदर्शों की आकाक्षा और मानव-प्रेम २ मानव प्रेम से परे आत्मा का परमात्मा या विराट् सत्ता के प्रति निश्छल प्रेम (रहस्यवाद) और ३ परमात्मा या परम शक्ति की आराधना वदना अर्थात् भक्ति-भावना। वस्तुत अतिम दो अर्थात् निराला का रहस्यवाद और भक्ति भावना परम सत्ता के प्रति उनके लगाव के ही दो रूप हैं या यों कहे कि निराला की धार्मिक वृत्ति के ही दो पहलू हैं। इन दोनों पक्षों से निराला आधुनिक युग के सत भक्त कवि कहे जा सकते हैं।

निराला में रहस्यवाद के सभी रूप पाये जाते हैं। दर्शनपरक, प्रकृतिपरक, प्रेमपरक और भक्तिपूर्ण आदि सभी प्रकार का रहस्यवाद निराला की ही विशेषता है। इस दृष्टि से वे आधुनिक रहस्यवादी कवियो मे सब से बडे बडे प्रतीत होते हैं। पत में जिज्ञासा भावना अधिक है, इसी से उनमे रहस्यात्मकता ही बनी रही, पत रहस्यवादी कवि नही बन सके। महादेवी वर्मा का यद्यपि मुख्य स्वर रहस्यवाद का ही है पर उनमे भी प्रेम की रहस्यमयी व्यंजना ही प्रबल बनी रही और विनयशीलता, वदना, प्रार्थना और भक्तिभाव का वह समावेश नहीं हो पाया, जो निराला के रहस्यवाद में है और जिसके कारण निराला-काव्य का अध्यात्म भाव महादेवी की अपेक्षा अधिक प्रबल और स्पष्ट प्रतीत होता है। निराला के रहस्यवाद की विशिष्टता यह है कि उसमें जिज्ञासा कम है और आस्था, आत्मनिवेदन वदन और प्रार्थना का स्वर अधिक ऊँचा है। निराला ने पत प्रसाद आदि की अपेक्षा उस परमसत्ता के प्रति प्रश्नमयी जिज्ञासा कम प्रकट की है और महादेवी की तरह प्रेम का रहस्यमय प्रकाशन भी कम किया है। उन्हें उस परमसत्ता का स्पष्ट आभास है और उसके प्रति उनकी अगाढ आस्था है इसी से वे उस परोक्ष शक्ति से आवेदन निवेदन अधिक करते हैं। फिर भी एक दो कविताओ मे कवि जिज्ञासा व्यक्त करता है कि मृत्यु निर्माण और नश्वर जीवन का वह प्याला बार-बार कौन भर देता है? किसके इशारे पर ये ग्रह, पृथ्वी, तारा मण्डल, वासती वात, वृक्ष सुमन नृत्यरत है? कौन दृश्यों में नये नये रंग भरता है? सुनहला प्रात और फिर विधुमुखी मधुरात कौन लाता है?—

मृत्यु निर्माण प्राण नश्वर
कौन देता प्याला भर भर?
नाचते ग्रह तारा मण्डल
पलक में उठ गिरते प्रतिपल,

कांपता है वासंती वात,
नाचते कुसुम दशन तरु पात
प्रात, फिर विधु ग्लावित मधु रात,

अद्वैतवादी कवि समस्त विश्व में उसी परमतत्त्व के सौन्दर्य का आभास पाता है, उस सौन्दर्य-दर्शन से वह ऐसा प्रभावित होता है कि प्राणों में आकुलता जाग उठती है :

कौन तुम शुभ्र किरण-वसना?
सीखा केवल हंसना केवल हंसना—
मन्द मलय भर अंग गंध मृदु,
बादल अलकावलि कुंचित ऋजु,
तारकहार, चन्द्रमुख, मधु ऋतु,
सुकर पुंज अशना। —गीतिका २६

प्रकृति की रूप राशि को देखकर कवि जिज्ञासा से भर जाता है। कैसा है यह रूप का सागर ? 'कौन ?' और 'कैसा ?' जैसे प्रश्न मन में नाचने लगते हैं। पर निराला की यह जिज्ञासा ज्ञानी और अनुभवशील प्राणी की आस्था और चिंतन की प्रगाढ़ता से ही पुष्ट है। उस रहस्यमय बांसुरी के बजने से समस्त जीवन ज्योतिर्मय हो उठा :

हृदय में कौन जो छेड़ता बांसुरी,
हुई ज्योत्स्नामयी अखिल मायापुरी।

वही परमप्रिय प्रकृति के सब रूपों में दिखाई देता है। वह जीवनधन बादल के रूप में आता है और अपनी रसधारा बरसा कर हृदय में प्रेमांकुर उगा जाता है। रूप-स्पर्श रस-गंध-शब्द पाकर प्रियतमा आत्मा धन्य हो जाती है :

बादल में आये जीवन धन।
× × × ×
नव-अपांग-शर-हत व्याकुल-उर
आतुर बारिद बारि धार स्फुर,
उगा रहा उर में प्रेमांकुर,
मधुर-मधुर कर-स्वर प्रशमित मन,
बरस गई अब धार विरत सुख,
दीर्घालिनी पा गई उदधि निज,
मुक्त हुए आ स्नेह के क्षितिज
रूप-स्पर्श रस-गंध शब्द धन। —गीतिका १३

उस अमल सत्ता के दर्शन पाकर दृगों की कलियां खिल उठीं, रूप इन्दु से सुधाबिन्दु पाकर सनाथ हो गईं, प्राण स्नेह के सर सर में नहा कर घुसकर उस अमल

निरञ्जन के ध्यान मे डूब गई :

> दृगों की कलियाँ नवल खुलो,
> × × × ×
> महा स्नेह का पूर्ण सरोवर
> श्वेत-वसन खोटों सलाज घर
> अलख सखा के ध्यान लक्ष्य पर
> डूबों, अमल घुलों। —गीतिका १७

आत्मा अब निवेदन, अनुनय विनय और मनुहार करने लगती है। महादेवी जैसे अपने 'पाहुन' को उर मे बसने को बुलाती है, वैसे ही निराला की आत्मा भी पुकार उठती है

> मेरे प्राणों मे आओ!
> शत शत, शिथिल भावनाओं के
> उर के तार सजा जाओ। —गीतिका ११

विरहानुभूति—विरहानुभूति भी रहस्यवाद का एक महत्वपूर्ण सोपान है। यद्यपि निराला मे महादेवी जैसी व्यापक और तीव्र विरहानुभूति नही पाई जाती तथापि उनकी आत्मा वियोग के क्षणों का अनुभव करती है। जब से प्रियतम द्वार छोड़ गए हैं, विरहिणी आत्मा का सारा ससार ही सूना पड गया है। उसकी जीवन की डाल सूनी और काल-रात्रि अँधेरी हो गई। कठ सूख गया, राग गाया नही जाता, सितार के तार खिचे रह गये हैं, न जाने स्वर, झकार कहाँ गई ? क्या वह प्यार-भरा प्रात फिर आवेगा ?—

> गये सब पराग, नहीं ज्ञात,
> शून्य डाल, रही अब रात,
> आयेगा फिर क्या वह प्रात,
> मरकर वह प्यार ? —गीतिका २३

विरहिणी की प्रतीक्षा का एक चित्र देखिए प्रिय का पथ कितनी आशा से जोह रही है ! प्रिय से निवेदन करती है कि शीघ्र मिलो, समय असमय का बहाना न करो—

> कब से मैं पथ देख रही, प्रिय,
> उर मे न तुम्हारे रेख रही, प्रिय!
> तोड दिये अब सब अवगुण्ठन,
> रहा एक केवल सुख लुण्ठन,
> तब क्यों इतना विस्मय कुण्ठन?
> असमय समय न करो, खड़ी, प्रिय! —गीतिका ३६

प्रिय सत्वर आओ ! कही विरहाग्नि सर्वथा जला ही न डाले, कही अभिलाषा

मधुरी ही न रह जाय !—

आओ मेरे आतुर उर पर
नव जीवन के आलोक सुघर!

× × × ×

यह काल क्षणिक यों बह न जाय,
अभिलषित मधुरी रह न जाय,
विरह की वह्नि दह न जाय,
सुषि के तरुण, आओ सत्वर! —गीतिका ३७

आशा और निराशा के झूल में झूलती वियोगिनी अपने करुणाकर से प्रश्न करती है कि क्या तुम्हारे उदार हृदय से मुझे प्यार का एक भी कण नहीं मिल सकेगा? क्या मेरी आशा की कली खिल न सकेगी?—

मुझे स्नेह क्या मिल न सकेगा?
स्तब्ध, दग्ध मेरे मरु का तरु
क्या करुणाकर, खिल न सकेगा? —गीतिका ४०

कैसी मर्म व्यथा है इस पुकार में! प्राणधन को स्मरण करते नयनों से अश्रुजलधारा प्रवाहित होती रहती है

प्राणधन को स्मरण करते नयन झरते—नयन झरते!

प्रियमिलन के लिए आत्मा अभिसारिका बनती है! शृंगार साजकर प्रियपथ का अनुगमन करती है। लज्जा कर भला कैसे रह जाय? उन चरणों के सिवा और ठौर कहाँ है?—

मौन रहो हार
प्रिय पथ पर चलती, सब कहते शृंगार!

× × × ×

शब्द सुना हो, तो अब लौट कहाँ जाऊँ?
उन चरणों को छोड़, और शरण कहाँ पाऊँ?—
बजे सजे उर के इस सुर के सब तार—
प्रिय पथ पर चलती, सब कहते शृंगार!—गीतिका ६

हृदय में ही प्रिय की रूप छवि समा गई है, हृदय विपंची बज उठी है। प्रियमना हृदय-मन्दिर में ही अपने मधुर को अर्घ्य चढ़ाती है

यह रूप जगा उर में
बजी मधुर वीणा किस सुर में!
कहता है कोई तू उठ अब,
अर्घ्य चढ़ा उनको जो जब तब
आते हैं तेरे मधुपुर में—
यह रूप जगा उर में!

वह अपने नाविक से प्रार्थना करती है कि इस अथाह पारावार में डगमगाती मेरी जीवन-नौका को पार करो !—

डोलती नाव, प्रखर है धार,
सभालो जीवन खेवनहार ! —परिमल

इस जग के पार प्रियतम के स्वर्ग लोक मे जाना ही उसे अभीप्ट है, जहां सदा प्रेम की रसधार बहती रहती है, ज्योति से ज्योति का मिलन हो जाता है

हमें जाना है जग के पार ।—
जहाँ नयनों से नयन मिले,
ज्योति के रूप सहस्र खिले,
सदा ही बहती नव रस धार—
वहीं जाना इस जग के पार । —परिमल

उस द्वार पर वह दस्तक देती है करुण पुकार करती है । सुरभित पुष्पों का हार यत्न से साज कर लाई है । अपने प्रियतम को पहनाने के लिए, प्रिय द्वार खोलो और यह उपहार ले लो—

बद तुम्हारा द्वार !
मेरे सुहाग शृ गार !
द्वार यह खोलो—!
सुनो ओ मेरी करुण पुकार ?
जरा कुछ बोलो ?
स्नेह रत्न, मैं बड़े यत्न से आज
कुसुमित कु ज द्रुमो से सौरभ साज
सचित कर लाई, पर कब से वचित!
× × × ×
पहन लो उसका यह उपहार,
मृदु गध परागो से उसके तुम कर दो
सुरभित प्रेम हरित स्वच्छन्द
द्वेष-विष जर्जर यह ससार ! —'अजलि' (परिमल)

मिलनानुभूति और अन्त मे कवि की आत्मा की करुण पुकार सुनी जाती है । प्रियतम से मिलन होता है । प्रिय ने बाह पकड ली, देह शीतल हो गई

मैं बैठा था पथ पर तुम आए चढ़ रथ पर
हँसे किरण फूट पडी टूटी जुड गई कडी
भूल गए पहर घडी आई इति पथ पर
उतरे बढ गही बाह पहले की पड़ी छाह
शीतल हो गई देह बीती अविकल पर —अणिमा

चाहे कितनी ही विरह-दग्ध रही हो, आत्मा को यह चिरविश्वास था कि मैं उनसे प्यार करती हूँ तो वे भी मुझे अवश्य चाहते हैं। इस प्रणय ने सांसारिक मोह-पाश तोड डाले हैं :

प्यार करती हूँ अलि, इसलिए मुझे भी करते हैं वे प्यार।
बह गई हूँ अजान की ओर, तभी यह बह जाता संसार। —गीतिका ३३

मिलन के अत्यन्त मादक चित्र निराला ने अपने कई गीतो मे प्रस्तुत किये हैं। प्रिय के स्पर्श से सहसा तो लाज लगी, चकित चचल, आशकित ठिठकी सी आत्मा ठगी सी रह गई। पर शीघ्र ही प्रेम का मधु प्राणो मे छा गया। प्रियतम के कठ से लगी मौन अधरासव पान करने लगी। इस प्रेम मिलन का क्या कहना! स्नेह की रसधारा से उर-अन्तर सब सिक्त हो गया, ससार के सब भय, शोक-शकाएँ भाग गये :

स्पर्श से लाज लगी,
× × × ×
मधुर स्नेह के मेह प्रखरतर,
बरस गये रस-निर्भर भर-भर,
उगा अमर अकुर उर-भीतर;
ससृति-भीति भगी। —गीतिका २८

"नयनों का नयनों से बधन" हो गया है! निराला ने अधिकतर इस प्रणय में स्वकीया भाव ही अपनाया है। पर एक-दो स्थलों पर परकीया भाव सा भी प्रतीत होता है। निम्न पक्तियाँ देखिए :

हुआ प्रात, प्रियतम, तुम जावगे चले!
कैसी थी रात, बधु थे गले-गले! —गीतिका ६१

कवि अपने 'चिर सुन्दर' के चरणो पर आत्मोत्सर्ग करने को प्रस्तुत है, तन-मन-धन सब न्योछावर कर देना चाहता है :

जन जन के जीवन के सुन्दर
हे चरणों पर
भाव-चरण भर
दूं तन मन धन न्योछावर कर। —अपरा, पृ० १६३

भक्तिपरक रहस्यवाद—निराला का भक्ति या प्रार्थनापरक रहस्यवाद बगला के विवेकानन्द, रवीन्द्र आदि के बगाली रहस्यवाद से साम्य रखता है। एक ओर वे रामकृष्ण परमहस और विवेकानन्द की मातृशक्ति या 'मा काली' के अनुयायी प्रतीत होते हैं, दूसरी ओर कवीन्द्र रवीन्द्र के प्रभाव से 'अखिल ज्योतिर्मयी', 'देवी', 'निखिल सुन्दरी' रूप में भी उन्होंने उस परमसत्ता का आवाहन किया है। निराला ने अधिकतर कबीर, मीरा आदि की तरह आत्मा को प्रेमिका नारी का और ब्रह्म परमात्मा

को प्रियपुरुष का रूप प्रदान किया है। पर उनकी अनेक रचनाओं में, इसके विपरीत, परमात्मा की नारीरूप में प्रतिष्ठा भी दृष्टिगोचर होती है। पर यह नारीरूप जायसी आदि के नारी प्रतीक से सर्वथा भिन्न है। यह बंगला रहस्यवाद की देन है। 'देवी तुम्हें मैं क्या दूँ,' 'एक बार बस और नाच तू श्यामा'—जैसी कविताओं में बंगला रहस्यवाद की छाप स्पष्ट है। निराला जी ने रवीन्द्रनाथ ठाकुर की तरह उस परम-सत्ता को निखिल सौन्दर्यमयी के रूप में प्रस्तुत किया है, उस सौन्दर्यसत्ता का ध्यान रहते जड़ जगत् का अज्ञान अधकार समाप्त हो जाता है

रहा तेरा ध्यान,
जग का गया सब अज्ञान।
गगन घन विटपी, सुमन नक्षत्र-ग्रह, नव ज्ञान
बीच में तू हँस रही ज्योत्स्ना वसन परिधान! —गीतिका ५६

इसी विश्वशक्ति की शरण में कवि जाना चाहता है, उसकी पुकार कितनी मार्मिक है

कितने बार पुकारा,
खोल दो द्वार, बेचारा!
मैं कितनी दूर का थका हुआ,
चल दुस्तर श्रम-पथ रुका हुआ,
आश्रय दो आश्रम वासिनी
मेरा हो तुम्हीं सहारा। —गीतिका ५८

उस परम शक्ति का मातृ रूप निम्न पंक्तियों में देखिए कवि संसार की रात्रि को पारकर उस जननी के द्वार पर आया है, उसकी शरण और चरणों का स्पर्श ही चाहता है।

प्रात तव द्वार पर,
आया जननी, नैश अन्ध पथ पार कर। —गीतिका ६५

कवि माँग करता है कि हे माँ, हमारे 'मानस के शतदल को खिला दो, निष्प्राणों को रसमय कर दो, तरु को तरुण पत्र मर्मर दो, खग को ज्योति-पुंज प्रात दो और जग को मंगलमय बना दो।' (आराधना, पृ० ८)।

कवि ने अपने आराध्यदेव के प्रति जो भक्तिभाव प्रकट किया है, वह रहस्य-वाद की परिधि में न आकर भक्तिभावना का ही विषय है। भक्तिपरक या प्रार्थना-परक रहस्यवाद में रहस्यसत्ता के प्रति कवि की प्रार्थना को ही रखा जा सकता है।

प्रकृतिपरक रहस्यवाद निराला में दो रूपों में व्यक्त हुआ है। एक तो निराला ने प्रकृति में अपने प्राणधन की छवि का अवलोकन कर, प्रकृति को ही उस सौन्दर्य-सत्ता का प्रतिरूप मानकर प्रकृतिपरक रहस्यवाद व्यक्त किया है ऊपर जो 'कौन तुम शुभ्र किरण वसना'-जैसे उदाहरण प्रस्तुत किये गए हैं, वे प्रकृति में चिर रहस्य-

दर्शन के ही द्योतक हैं। दूसरे प्रकार का प्रकृतिपरक रहस्यवाद उन कविताओं मे दिखाई देता है जहा स्वय प्रकृति उस परमप्रिय के अनुराग में पगी, उसके मिलन-वियोग मे डूबी साधिका बनी प्रतीत होती है। प्रकृति के ऐसे प्रणय व्यापारो मे लौकिकता में अलौकिकता का स्पष्ट आभास होता है। 'जूही की कली', 'शेफालिका'—जैसी कविताओं में यह अलौकिकता चाहे इतनी स्पष्ट न हो, निम्न पंक्तियो में प्रकृति का अलौकिक प्रणय व्यापार स्पष्ट है

अस्ताचल रवि जल छल छल छवि,
स्तब्ध विश्व कवि, जीवन उन्मन, —गीतिका ६३

निराला जी ने प्रकृति की अनन्त रूप छवियो मे अपने ब्रह्म का दर्शन और अनुभव किया है। निम्न पंक्तियों में कवि अमानिशा के प्रगाढ अधकार मे ब्रह्म-ज्योति का अवलोकन करता है

तुम आये,
अमा निशा थी,
शशधर से नभ मे छाये।
फैली दिङ् मण्डल में चादनी
बँधी ज्योति जितनी थी बाधनी
खुली प्रीति, प्राणों से प्राणों में आय।

कभी उनका प्रिय बादल के रूप मे आता है कभी वसंत की बहार में छा जाता है तो कभी प्रभात की अरुणिमा म मुस्काता है। इस प्रकार निराला का प्रकृतिपरक रहस्यवाद अधिकतर सौन्दर्यपरक रहस्यवाद अर्थात् सौन्दर्यसत्ता के दर्शन-रूप मे प्रकट हुआ है जो बड़ा ही मनोहारी है।

निराला मे योगियो के अन्त साधनापरक रहस्यवाद की झलक भी एक-दो कविताओं मे पाई जाती है। उनके प्रसिद्ध गीत 'पास ही रे हीरे की खान' की निम्न पंक्तियाँ अन्त साधना की ही द्योतक हैं

पास ही रे हीरे की खान
खोजता कहाँ और नादान ?
× × × ×
तुझी मे सकल सृष्टि की शान,
खोजता कहाँ और नादान ?
चक्र के सूक्ष्म छिद्र के पार,
बेधना तुझे मीन इस बार
चित्त के जल मे चित्र निहार,
दम का कार्मुक कर ले धार,
मिलेगी कृष्णा, सिद्धि महान्,

दर्शनपरक रहस्यवाद भी उपर्युक्त प्रारम्भिक पंक्तियों 'पास ही रे हीरे की खान' आदि में स्पष्ट है। निराला जी की प्रसिद्ध रचना 'तुम और मैं' दर्शनपरक रहस्यवाद का उत्कृष्ट उदाहरण है। इस कविता में कवि ने आत्मा के साथ अभिन्न सम्बन्धो का दार्शनिक निरूपण किया है। अद्वैत की भूमि पर इसमे द्वैताद्वैत, विशिष्टाद्वैत आदि की व्यंजना हुई है। वस्तुत. इस कविता मे निराला का उद्देश्य अटूट सम्बन्ध जताना ही है, न कि जीवात्मा और परमात्मा के स्वरूप और सम्बन्ध को किसी दार्शनिक वाद मे घटाना। निम्न पंक्तियो मे अश-अशो-भाव ही दृष्टिगोचर होता है :

तुम तुग हिमालय शृग
और मैं चचल-गति सुर-सरिता।
× × ×
तुम नन्दन वन-घन-विटप
और मैं सुख शीतल-तल शाखा।
× × ×
तुम पथ हो, मैं हूँ रेणु
× × ×
तुम अम्बर, मैं दिग्वसना

निम्न पक्तियों मे ब्रह्म-माया, शिव-शक्ति या पुरुष प्रकृति का अटूट सम्बन्ध वेदात के आधार पर प्रगट हुआ है

तुम शुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्म
मैं मनोमोहिनी माया।
× × ×
तुम स्वेच्छाचारी मुक्त पुरुष,
मैं प्रकृति, प्रेम-जजीर।
तुम शिव हो, मैं हूँ शक्ति,
तुम रघुकुल-गौरव रामचन्द्र,
मैं सीता अचला भक्ति। —परिमल

इसी प्रकार प्राण और काया आदि निम्न सम्बन्धो मे द्वैतभाव की अभिन्नता है:

तुम प्राण और मै काया,
तुम प्रेममयी के कठहार
मैं वेणी काल-नागिनी,
× × ×
तुम गध कुसुम-कोमल पराग
मैं मृदुगति मलय समीर,

× × ×

तुम आशा के मधुमास
और मैं पिक कल कूजन तान,
तुम मदन पंच शर हस्त
और मैं हूं मुग्धा अनजान !
तुम चित्रकार घन पटल श्याम,
मैं तड़ित् तूलिका रचना। आदि

हम ऊपर कह चुके हैं कि रहस्यवाद का आधार केवल अद्वैत दर्शन को मानना भ्रांति है। वस्तुत वह अद्वैत भाव पर आधृत है। शुद्ध दार्शनिक दृष्टि से देखा जाय तो उपर्युक्त सम्बन्ध अद्वैतवाद के अन्तगत नहीं आते। इनमें द्वैत दर्शन की स्थिति है, पर अद्वैत भाव यहाँ भी है—आत्मा और परमात्मा के सम्बन्ध की अभिन्नता यहाँ भी है, पर यह सम्बन्ध न तो स्वर्ण कुण्डल के अविकृत परिणामवादी अद्वैत दर्शन के अन्तर्गत घटित होता है और न दूध दही के विकृत परिणामवादी अद्वैतदर्शन की परिधि मे आता है। वस्तुत यहां द्वैत होते हुए भी अद्वैत भाव अर्थात् अभिन्नता का भाव स्पष्ट है। अत यह मानना चाहिये कि रहस्यवाद केवल अद्वैत दर्शन पर नही, अद्वैत भाव पर आधृत है। दर्शन तो उसके मूल मे द्वैत या द्वैताद्वैत भी हो सकता है।

इस प्रकार निराला का रहस्यवाद अपने नाना रूपों मे पूर्ण रहस्यवाद है। यह सत्य है कि निराला के रहस्यवाद में महादेवी के रहस्यवाद जैसी प्रणयानुभूति की व्यापकता और विस्तार नही है और शायद इसका सब से बड़ा कारण यह है कि महादेवी मात्र रहस्यवादी कवयित्री हैं निराला छायावादी, प्रगतिशील प्रगतिवादी, प्रयोगवादी, भक्तिवादी और रहस्यवादी—सभी कुछ हैं, फिर भी निराला के रहस्यवाद में जैसी स्पष्ट अध्यात्म और अलौकिक अनुभूति है, वह महादेवी में भी नहीं। महादेवी का रहस्यवाद रहस्यवाद ही है वह छायावाद के केवल शैली पक्ष को अपनाये है, जबकि निराला का रहस्यवाद छायावादी भाव भूमि को आत्मसात् करता हुआ उससे आगे रहस्यवाद की कुलदियों को पार करता हुआ भक्ति-लोक में पर्यवसान पाता है। औदात्य दोनों के रहस्यवाद मे है दोनों ही आत्म साधना और आत्मसिद्धि के साथ-साथ विश्वमगल की कामना से ओतप्रोत हैं।

: ४ :

प्रगतिवाद और निराला

सन् १७८६ की फ्रांस की क्रांति ने मानवीय समानता, बंधुत्व, स्वतन्त्रता आदि उच्च जीवन-मूल्यों के साथ साथ साहित्य और जीवन का भी निकट सम्बन्ध स्थापित कर दिया था। आगे चलकर साहित्य में यथार्थवादी प्रवृत्तियों का मूल्य बढ़ा। १९वीं शताब्दी के अंत तक पहुँचते-पहुँचते भौतिकवादी एवं यन्त्रवादी साहित्यिक प्रवृत्तियों को यूरोप में कार्लमार्क्स, ऐंजिल जैसे मनीषियों के जीवन दर्शन का सबल आधार मिल गया। कला और साहित्य को सामाजिक प्रगति का साधन माना जाने लगा। भौतिकवादी समाजवादी प्रगतिवादी जीवन-दर्शन पर आधारित सामाजिक प्रगति के काव्य को प्रगतिवादी या प्रगतिशील काव्य कहा जाने लगा। साहित्य में प्रगतिवाद एक संगठित आन्दोलन बनकर आया जिसका प्रवर्तन एवं विकास अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर यूरोप और रूस में हुआ, यद्यपि इस आन्दोलन को साहित्यिक आन्दोलन बनाने का भरसक प्रयास किया गया, किन्तु इसके पीछे मार्क्सवादी साम्यवादी दृष्टिकोण इतना प्रबल था कि यह एक राजनीतिक आन्दोलन बने बिना न रह सका। सन् १९३५ में पेरिस में 'प्रगतिशील लेखक संघ' (Progressive Writers' Association) की स्थापना हुई थी जिसने साहित्य के माध्यम से सामाजिक प्रगति को साहित्यकार का लक्ष्य घोषित किया था। सन् १९३६ में लखनऊ में भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ' कायम हुआ। जिसके प्रथम अधिवेशन का सभापतित्व मुंशी प्रेमचन्द ने किया था। सन् १९३८ का अधिवेशन रवि बाबू की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। यद्यपि आरम्भ से ही इस संघ के साथ वामपंथियों का सम्बन्ध जुड़ गया था, पर आरम्भ में यह मार्क्सवादी राजनीति से दूर रहा और जीवन की ऐहिक उन्नति, सामाजिक प्रगति और युगानुरूप उच्च नव सांस्कृतिक मूल्यों की सामान्य प्रतिष्ठा ही इसका लक्ष्य रहा। पर बाद में वामपंथी लेखकों और विचारकों ने इसे मार्क्सवादी राजनीतिक दृष्टि से बाँधकर 'प्रगतिशीलता' से 'प्रगतिवाद' बना दिया। प्रगतिशीलता किसी वाद विशेष से नहीं बँधी थी, जबकि प्रगतिवाद मार्क्स-

वाद से बँध गया। इसी से प्रगतिवाद की व्याख्या आज यह रूढ हो गई है कि राजनीति के क्षेत्र में जो मार्क्सवाद है, वही साहित्य के क्षेत्र मे प्रगतिवाद है।

यहाँ प्रगतिशील कवि तथा प्रगतिवादी कवि का अंतर स्पष्ट कर देना आवश्यक है। १ प्रगतिवादी लेखक मार्क्सवादी भौतिकवादी विचारधारा से इतना प्रभावित होता है कि आत्मा, परमात्मा, धर्म, स्वर्ग, नरक तथा मृत्यु के बाद के जीवन मे कोई विश्वास नहीं रखता। किसी अलौकिक या आध्यात्मिक शक्ति को वह वैयक्तिक या सामाजिक प्रगति या सामाजिक प्रगति का कारण या सहायक नहीं मानता। वह द्वन्द्वात्मक भौतिक विकास मे विश्वास रखता है। ऐहिक जीवन से परे किसी परलोक की कल्पना उसे रुचिकर नहीं है। द्वन्द्व या संघर्ष को ही वह नये विकास का आधार मानता है। २ भौतिक उत्पादनों में प्रगतिवादी श्रम का सर्वाधिक मूल्य मानता है। उसकी मान्यता है—सारा लाभ श्रमिक के श्रम पर निर्भर है। पूंजीवादी सामन्तीय पद्धतियों में पूंजीपति या सामन्त ही सारा लाभ हड़प जाता रहा है। इसी से समाजमे दो वर्गों का निर्माण हुआ—एक श्रमिक जो शोषित है, दूसरा पूंजीपति या जमींदार सामन्त जो शोषक वर्ग है। प्रगतिवादी पूंजीवादी या सामन्तीय व्यवस्थाओं को समाप्त करके ऐसी व्यवस्था चाहता है जिसमे श्रमिकों को ही पूरा लाभ प्राप्त हो। ३ प्रगतिवादी पूंजीवाद तथा सामन्तवाद की प्रचलित व्यवस्थाओं को समाप्त करने के लिए श्रमिक वर्ग मे चेतना उत्पन्न करता है। वह वर्ग-चेतना उत्पन्न कर वर्ग-संघर्ष के लिए सर्वहारा वर्ग को तैयार करना चाहता है। वर्ग संघर्ष के रूप मे उसकी जनक्रांति भी विध्वंस और अहिंसा की सशस्त्र क्रांति है। वह समझौते या हृदय-परिवर्तन के सिद्धान्तों पर विश्वास नही करता। वह पूंजीवाद या सामन्तवादी व्यवस्थाओं को समाप्त करके सर्वहारा या श्रमिक वर्ग का राज्य चाहता है। इसे ही वह स्वशासन या स्वतन्त्रता मानता है। ४. प्रगतिवादी का विश्वास है कि आजतक कला, साहित्य, शासन, राज्य, संस्कृति, धर्म, सभ्यता का जो विकास हुआ है, वह सामन्तवादी शोषक शक्तियों के लाभार्थ हो है। दास प्रथा ने श्रमिक को सर्वथा अपना गुलाम बना रखा था, उसके बाद राजतन्त्र या सामन्तीय व्यवस्था आई। इसमें यद्यपि श्रमिक को व्यक्तिगत मामलों मे कुछ छूट मिली, पर उसका श्रम सर्वथा सामन्त के लाभ में जुटता रहा। तीसरी व्यवस्था पूंजीवाद की आई। इसमे पूर्व व्यवस्था से कुछ सुधार हुआ। जहां पहले श्रमिक से बलात् श्रम कराया जाता था, वह बात अब नहीं रही। किन्तु श्रमिकों का शोषण जारी रहा। उन्हें उत्पादन का कोई लाभ नहीं मिलता। अतः इन पूर्व व्यवस्थाओं के स्थान पर ऐसी व्यवस्था चाहिए जिसमे उत्पादन का पूरा लाभ श्रमिकों को प्राप्त हो। कला, साहित्य, सभ्यता, संस्कृति, शासन, राज्य भी ऐसे हों जो श्रमिकों की इस उन्नति मे सहायक हो। ५ धर्म, समाज, और जीवन की सभी रूढ़ियों को समाप्त किया जाये क्योंकि ये सब पूर्व व्यवस्थाओं की ही देन हैं, प्रतिक्रियावादी हैं और श्रमिकों का अहित करती हैं। ईश्वर, भाग्यवाद, धर्म, परम्परागत रीति-

रिवाज सब व्यर्थ हैं। ईश्वर बूढ़ा और बेकार हो गया है। धर्म अफीम का नशा है, और भाग्य भ्रांति है।६ वर्ग-संघर्ष के द्वारा शोषक वर्ग को समाप्त करके ऐसे वर्गहीन समाज की स्थापना प्रगतिवादी का लक्ष्य होता है जहाँ मनुष्य-मनुष्य मे धर्म, जाति, रंग, लिंग, देश आदि किसी भी कारण कोई भेदभाव नहीं होगा।७ प्रगतिवादी अर्थ को जीवन का मूल प्रेरक मानता है। इसी से उसका प्रथम उद्देश्य है अर्थ व्यवस्था को बदलना। आर्थिक विकास ही वह सास्कृतिक विकास का मूल मानता है। अतः सास्कृतिक मूल्यों की अपेक्षा वह अर्थगत मूल्यों को प्राथमिकता देता है।८. प्रगतिवादी लेखक जनता की ही वाणी मे जनता की आवाज बुलंद करता है। उसकी यथार्थपरक दृष्टि कला और अभिव्यक्ति के साधनों को भी परम्परागत अलकरण से रहित सहज, यथार्थ और व्यंग्यात्मक रूप प्रदान करती है।

प्रगतिवादी लेखक की जिन प्रवृत्तियो और जिन विचारों का ऊपर उल्लेख किया गया है, उनमे से अधिकाश विचार और प्रवृत्तियाँ प्रगतिशील लेखकों मे भी सामान्यतः पाई जाती हैं, पर उनके व्यवहार पक्ष मे कुछ अन्तर रहता है। १ प्रगतिशील लेखक भी मार्क्सवादी भौतिकवादी दृष्टिकोण से प्रभावित होकर स्वर्ग-नरक, परलोक आदि की अवेहलना कर इहलोक के महत्व को स्वीकार कर सकता है। वह ऐसे धर्म, भाग्यवाद, ईश्वर आदि पर भी क्षोभ व्यक्त कर सकता है, जो मानवता को शोषण की चक्की मे पिसता देखकर भी निष्करुण रहते हैं। किन्तु प्रगतिवादी की तरह ईश्वर के प्रति अनास्था तथा आत्मा और अध्यात्म का निषेध वह प्रायः नहीं करता। २. श्रम का महत्व प्रगतिशील लेखक भी मानता है। वह भी शोषण के विरुद्ध है। वर्ग भेद के वह भी विरुद्ध होता है, पूंजीवादी और सामन्तीय व्यवस्था को वह भी समाप्त करना चाहता है। परम्परागत धर्म-व्यवस्था में उसका भी कोई विश्वास नहीं होता। ३ वर्ग-चेतना या कृषक-मजदूर को प्रबुद्ध करना प्रगतिशील लेखक का भी उपजीव्य होता है। वर्ग-विषमता से दुखी होकर वह भी दलित वर्ग के संघर्ष का हामी हो सकता है। किन्तु यहाँ दोनों के संघर्ष और शक्ति-संगठन मे अन्तर हो जाता है। प्रगतिवादी हिंसात्मक उग्र क्रांति का हामी होता है और इसके लिए वह साम्यवादका झण्डा तथा राजनीतिक नारेबाजी एवं लाल सेना का सहारा लेते भी सकोच नहीं करता। वह हँसिया हथौड़ा के राजनीतिक निशानों का प्रचार करने, रूस, चीन, आदि साम्यवादी देशो की प्रशंसा करने, उनकी सैनिक सहायता प्राप्त करने, विश्व भर के साम्यवादियो, मजदूरो किसानो को सगठित करने के राजनीतिक नारे बुलंद करने लगता है। मार्क्स, लेनिन और स्टालिन आदि रूसी नेताओ को अपना आदर्श घोषित करता है। देश की प्राचीन परम्परा की अपेक्षा वह रूस चीन की जनवादी परम्परा से प्रेरणा ग्रहण करता है। पूंजीवादियों और जमीदारो का विरोध तो प्रगतिशील लेखक भी करता है, पर प्रगतिवादी इस विरोध को हिंसात्मक रूप अधिक देता है। प्रगतिशील लेखक का राजनीतिक प्रचार से कोई वास्ता नहीं होता। वह किसी

राजनीतिक दल से सम्बद्ध नहीं होता जबकि प्रगतिवादी लेखक और सब राजनीतिक दलों का विरोध करता हुआ केवल मार्क्सवादी या समाजवादी दल मे विश्वास रखता है। वह सर्वहारा वर्ग का राज्य चाहता है जबकि प्रगतिशील लेखक गांधीवादी विचारधारा को भी अपना सकता है, समझौता और हृदय-परिवर्तन का एक सीमा तक पक्षपाती हो सकता है। सर्वहारा वर्ग के प्रति सहानुभूति होते हुए भी प्रगतिशील लेखक का अशिक्षित कृषक मजदूरों को सत्ता प्रदान करने का कोई विचार नही होता। ४. प्रगतिशील लेखक सामाजिक विकास का लेखा-जोखा मार्क्सवादी दृष्टि से ही नहीं करता। वह परम्परा से प्राप्त सभी उच्च सांस्कृतिक मूल्यों को महत्वपूर्ण समझता है। मानवता के विकास का एकांगी अध्ययन वह मार्क्सवादी लेखक के समान नहीं करता। प्राचीन संस्कृति के प्रति उसकी आस्था रहती है। प्रगतिशील लेखक मनुष्यो की समानता, स्वतन्त्रता का पक्षपाती होता है। वह सभी प्रकार के शोषण को बुरा मानता है। किन्तु प्रगतिवादियों की तरह कला, साहित्य, संस्कृति, सभ्यता के समूचे पूर्व विकास को नकारता नही। वह कला और साहित्य को स्वतन्त्र मानता है। साहित्य की सामाजिक उपयोगिता पर विश्वास रखते हुए भी प्रगतिशील लेखक उसे केवल एक वर्ग-विशेष (सर्वहारा) से सम्बद्ध करना भ्रांति समझता है तथा उसके भाववादी और कलावादी मूल्यों की सर्वथा उपेक्षा नहीं करता। ५ प्रगतिशील लेखक भी परम्परागत रूढियों, सामाजिक एवं धार्मिक विकृतियों को मृत्युदण्ड देना चाहता है। वह भी सभी तरह की सामाजिक, धार्मिक बुराइयों, पाखण्डो, अन्धविश्वासों का वैसा ही विरोधी होता है जैसा प्रगतिवादी लेखक। किन्तु 'धर्म अफीम का नशा है' या 'ईश्वर मर चुका है'—ऐसी आस्थाहीन उक्तियाँ वह प्राय प्रकट नही करता। ६ वर्ग-भेद ही नहीं, सभी प्रकार के भाषा, प्रदेश, धर्म, जाति आदि भेदों को मिटाकर मानवीय समानता की स्थापना प्रगतिशील लेखक का भी लक्ष्य होता है। वह भी भेदभावहीन समाज का निर्माण चाहता है चाहे उसे विशिष्ट लेबिल न लगा कर वर्गहीन समाज ही क्यों न कहा जाय। ७ प्रगतिशील लेखक केवल अर्थ को सारी उन्नति का आधार नहीं मानता। वह भौतिक विकास के साथ साथ आत्मिकता, आध्यात्मिक और सांस्कृतिक विकास का भी उतना ही महत्व समझता है, जितना आर्थिक विकास का। उसकी दृष्टि सर्वथा बाह्यपरक नहीं होती। वह अन्तर्मन या आत्मा के विकास को महत्वपूर्ण समझता है। आर्थिक विकास को ही वह सांस्कृतिक विकास का मूल नहीं मान सकता। ८ भाषा की सरलता, यथार्थता आदि अभिव्यक्ति के रूप मे दोनों का कोई भेद नही।

उपर्युक्त तुलनात्मक विवेचन से स्पष्ट है कि प्रगतिवाद और प्रगतिशीलता मे अन्तर वहीं पैदा होता है जहाँ प्रगतिवाद मार्क्सवाद के राजनीतिक पक्ष की कट्टरता अपना लेता है या उसकी रूढ सैद्धांतिक सीमा मे बँध जाता है। प्रगतिवाद से यदि वाद की कट्टरता हटा दी जाय तो वह प्रगतिशीलता ही रह जाती है। हँसिया-हथौड़े का गीत, लाल सेना का आवाहन, देश की सांस्कृतिक परम्परा और अध्यात्म पर अनास्था, नास्तिकता, हिंसात्मक उग्र क्रांति की आकांक्षा, पूंजीपतियों और सामन्तों

को गालियाँ देना, उनकी निर्मम हत्या चाहना, वर्ग संघर्ष का उग्रतम रूप प्रस्तुत करना, मार्क्सवादी द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का समर्थन, अन्य राजनीतिक दलों की आलोचना, विश्व भर के श्रमिकों का संगठन चाहना आदि ऐसी बातें हैं जिनसे प्रगतिशील लेखक बचता है, किन्तु प्रगतिवादी को ये विषय विशेष प्रिय हैं।

इस दृष्टि से निराला-काव्य का अवलोकन करें तो स्पष्ट प्रमाणित हो जाता है कि निराला प्रगतिवादी नहीं, प्रगतिशील कवि थे। कहीं भी मार्क्सवादी कट्टरता उनके काव्य में नहीं पाई जाती। उन्होंने कहीं भी साम्यवाद का प्रचार नहीं किया। कहीं लाल-सेना का आवाहन या हँसिया हथौड़ा की बात नहीं की। कहीं हिंसात्मक वर्गसंघर्ष की ऐसी ललकार भी नहीं लगाई

काटो काटो काटो कर लो साइत और कुसाइत क्या है!
मारो मारो मारो हसिया, हिंसा और अहिंसा क्या है!
—केदारनाथ अग्रवाल

निराला बड़े आस्थावान कवि थे। अध्यात्म उनकी प्रमुख प्रवृत्ति थी, ईश्वर के वे भक्त थे। वे भला द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के समर्थक कैसे हो सकते थे?

निराला ने वर्ग विषमता और निम्न वर्ग की दयनीय दशा का तो अपनी 'भिक्षुक', 'तोड़ती पत्थर,' 'दान' आदि अनेक कविताओं में खुलकर वर्णन किया और दलित वर्ग के प्रति सहानुभूति जगाई, उन्होंने कुछ रचनाओं में वर्ग चेतना भी उभारी ('झिंगुर डटकर बोला,' 'महगू महगा रहा' आदि 'नये पत्ते' की कई कविताएँ ऐसी ही हैं), पर वर्ग संघर्ष उनके काव्य में कदाचित कहीं नहीं है। 'डिप्टी साहब आये' (नये पत्ते) में बदलू अहीर जमींदार के आदमी की नाक पर घूँसा अवश्य लगाता है तथा और भी गाँव वाले टूट पड़ते हैं, पर यहाँ भी हिंसात्मक सशस्त्र क्रांति का अभाव है। निराला जी ने अपने गाँव में स्वयं किसान आन्दोलन चलाकर देख लिया था कि सशस्त्र क्रांति के लिए न तो किसान तैयार है, न इस सर्वघाती मार्ग से कोई लाभ संभव है।

'नये पत्ते' की 'महगू महगा रहा' जैसी एक दो रचनाओं में निराला जी ने कांग्रेसी नेताओं पर व्यंग्य किये हैं और उनकी समझौतावादी नीति का विरोध किया है। इससे कुछ प्रगतिवादी समीक्षक खुश होकर उन्हें अपने गोल का कवि मानने की भ्रांति में पड़ गये थे। पर 'मास्को डायलाग्स' में ढोंगी साम्यवादी पर व्यंग्य देखकर यही मानना पड़ा कि निराला जी का किसी भी राजनीतिक दल से सम्बन्ध नहीं था। 'महगू महगा रहा' कविता में निराला जी ने कांग्रेसी नीति का विरोध करते हुए महगू के माध्यम से प्रच्छन्न क्रांतिकारियों पर आशा बाँधी है। पर यहाँ भी उन्हें साम्यवादी समझना भूल होगी।

निराला जी ने 'दान' जैसी कविताओं में धर्म के पाखण्ड को फटकारा और 'दगा की' (नये पत्ते) जैसी एक दो रचनाओं में अमूर्त मतमतान्तरों, धर्म-साधना दर्शन के विविध रूपों पर व्यंग्य प्रहार किये हैं, पर धर्म अध्यात्म दर्शन ही उनके काव्य की मुख्य प्रवृत्ति रही है। 'धर्म को अफीम का नशा' कहीं नहीं कहा।

जीर्ण शीर्ण विकृत सामाजिक परम्पराओ, रीति रिवाजो और रूढ़ियो के वे जबरदस्त विरोधी थे, पर मानवता के उच्च सास्कृतिक मूल्यो की प्रतिष्ठा उन्होने सदा की। अतीत गौरव-गान उन सा कहा मिलेगा ?

उपर्युक्त तथ्यो के आधार पर निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि निराला प्रगतिवादी नही, प्रगतिशील कवि थे। वस्तुत मार्क्सवाद को आग्रहपूर्वक अपनाने वाले रामविलास शर्मा, राहुल साकृत्यायन, केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, रागेय राघव, प्रकाशचन्द्र गुप्त जैसे स्वीकृत प्रगतिवादियो से निराला और पत भिन्न हैं। इन पर मार्क्सवाद का प्रभाव तो पडा पर 'वादी' वे नही बने।

निराला की प्रगतिशीलता का स्वरूप—निराला की काव्य चेतना के विकास का अध्ययन करते हुए हम पीछे देख चुके हैं कि निराला आरम्भ से ही प्रगतिशील कवि के रूप मे हिन्दी जगत् के सामने आये। प्रगतिशील लेखक सघ की स्थापना से १५-२० वर्ष पहले से ही उन्होने दरिद्र भिक्षुकों, असहाय, निरपाय विधवाओ एव दलितो की करुणाजनक स्थिति का प्रकाशन और धनी पूजीपति शोषको के प्रति अपनी विद्रोही घन गर्जना आरम्भ कर दी थी। सन् १९३७ के बाद तो 'नये पत्ते' मे उनकी प्रगतिशील सामाजिक प्रवृत्ति चरम विकास को प्राप्त हुई।

निराला की समस्त प्रगतिशील रचनाओ को हम निम्न भागो मे विभाजित कर अध्ययन का विषय बना सकते हैं —

(१) सामाजिक, आर्थिक विषमताओं का बोध, शोषितों भिक्षुकों, असहायों का करुणाजनक चित्रण—इसके अन्तर्गत 'तोडती पत्थर', 'भिक्षुक,' 'विधवा,' 'सेवा आरम्भ', 'कुत्ता भौंकने लगा' (नये पत्ते) आदि कविताएँ आती हैं।

(२) परम्परागत रूढियों और पुरातन-पंथियों का विरोध —'मित्र के प्रति,' 'सरोज स्मृति' आदि

(३) धार्मिक ढोंग पर प्रहार—जैसे 'दान' (अनामिका) आदि।

(४) यथार्थपरक दृष्टि की सूचक—(क)यथार्थ लौकिक शृगार—'स्फटिक शिला,', 'प्रेम सगीत' (नये पत्ते)।

(ख) ग्राम प्रकृति, खेत-खलिहान और ग्राम जीवन का यथार्थ चित्रण—'देवी सरस्वती,' (नये पत्ते) 'सडक के किनारे दूकान है' (अणिमा), 'यह है बाजार' (अणिमा) आदि.

(५) उद्बोधन और वर्ग-सघर्ष की प्रेरक—'बादल राग' (परिमल), डिप्टी साहब आये हैं' (नए पत्ते), 'जल्द जल्द पैर बढाओ, आओ आओ, आज अमीरो की हवेली, किसानो की होगी पाठशाला (बेला)।

(६) राजनीतिक क्षेत्र से सम्बन्धित रचनाएँ—'वनबेला,'(अनामिका)'मास्को डायलाग्ज,' 'महगू महगा रहा,'(नये पत्ते), 'काले काले बादल छाये, न आये वीर जवाहर लाल' (बेला)

(७) पूँजीवाद, पूँजीपतियों-जमींदारों, राजाओं की भर्त्सना—किनारा वे हमसे किये जा रहे हैं (बेला), 'वन बेला' (अनामिका), 'झिंगुर डटकर बोला,' 'छलाँग मारता चला गया' (नये पत्ते), भेद कुल खुल जाय, वह सूरत हमारे दिल में है, देश को मिल जाय जो पूँजी तुम्हारे मिल में है, (बेला), 'पूँजि यहाँ दाना है' (अणिमा), 'थोड़े के पेट में बहुतों को आना पड़ा,' 'राजे ने अपनी रखवाली की' (नये पत्ते), 'कुकुरमुत्ता,' आदि।

(८) अतीत से प्रेरणा तथा राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक जागरण—'भारति जय विजय करे,' आदि राष्ट्र वन्दन गीत, 'भारत ही जीवन धन,' (बेला), 'जागो फिर एक बार,' शिवाजी का पत्र (परिमल), दिल्ली, खण्डहर (अनामिका), सहस्राब्दि (अणिमा), 'तुलसीदास,' 'राम की शक्ति पूजा' आदि।

(९) युग बोध, उदार मानवतावादी दृष्टिकोण—'महात्मा बुद्ध के प्रति' (अणिमा), जग की मंगल कामना के प्रार्थनापरक गीत (आराधना, गीतिका, अर्चना, अणिमा आदि में)।

निराला की इन रचनाओं से उद्धरण और उदाहरण हम पीछे चतुर्थ विमर्श में उनकी प्रगतिशील विचारधारा और जीवन दर्शन पर प्रकाश डालते हुए तथा द्वितीय विमर्श में उनकी रचनाओं का परिचय देते हुए दे आए हैं, यहाँ दोहराना कलेवर वृद्धि होगा। अतः पाठक उपर्युक्त सकेतों के आधार पर उद्धरण वहीं देखें। निराला के प्रगतिशील काव्य की सबसे बड़ी शक्ति हास्य-व्यंग्य है। पंत जी अपनी 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' में वह सरसता उत्पन्न नहीं कर सके जो निराला की प्रगतिशील यथार्थवादी रचनाओं में पाई जाती है। निराला ने शुष्क सिद्धान्त विवेचन कहीं नहीं किया। अपनी समस्त सामाजिक चेतना को हास्य व्यंग्य की प्रक्रिया के रूप में प्रकट करके निराला ने अपने प्रगतिशील काव्य को हृदय-संवेद्य बना दिया है। हास्य रस, वीभत्स, रस (घृणा), करुण रस और वीर रस आदि रसों-भावों से ओतप्रोत उनकी ये रचनाएँ हिन्दी साहित्य की अपूर्व निधि हैं।

कुछ प्रगतिवादी विचारक निराला की इस प्रगतिशीलता में अपनी दृष्टि से दुर्बलता का अनुभव करते हैं। एक ऐसे ही विचारक का कथन है—'निराला जी के प्रगतिवादी काव्य की सबसे बड़ी दुर्बलता यह है कि उसमें वर्ग चेतना का कोई स्पष्ट आधार नहीं मिलता। वस्तुतः निराला जी की प्रगतिवादी रचनाएँ किसी ठोस दार्शनिक पृष्ठभूमि पर नहीं खड़ी हैं। उनकी सृष्टि खीझ, प्रवंचना, पराभव, अभावों से निरन्तर संघर्षजन्य क्रोध तथा दुर्निवार एवं विस्फोटक अहम् के उपादानों से हुई है। और यहाँ भी उनकी नव प्रयोग करने की प्रवृत्ति ही ज्यादा सक्रिय जान पड़ती है। कलात्मक एवं सच्चे प्रगतिवादी काव्य की रचना के लिए जिस समाजवादी सौन्दर्य भावना की आवश्यकता होती है, निराला जी में वह कहाँ तक आ सकी थी—यह विवाद का विषय है। साहित्य में संयुक्त मोर्चों के दिनों में निराला जी को प्रगतिवादी कवियों का

सिरमौर मानने का बहुत शोर किया गया था। पर निराला जी के काव्य मे प्रगति के तत्त्व के रहने पर भी उसका मूल आधार न रहने से, उसमे दीर्घायु होने की क्षमता नही थी। वस्तुत उसमे वे वह प्राणवत्ता नहीं भर सके, जो उनके इस वर्ग के काव्य को चिरायु करती। पर यह दुर्बलता तो न्यूनाधिक रूप में प्राय समस्त हिन्दी प्रगतिवादी काव्य मे मिलेगी। अनुकृत कल्पनाधारित या कृत्रिम सहानुभूति से प्रेरित यह काव्य इसीलिए यहाँ पनप नही सका।" (प्रो० अरविन्द : निराला स्मृति-ग्रंथ, पृ० १५७)

प्रो० अरविन्द ने जिस ठोस दार्शनिक आधार की कमी का निराला के प्रगतिवाद की दुर्बलता कहा है, वही उनके प्रगतिशील कवि की शक्ति है। स्पष्ट है कि यहाँ ठोस दार्शनिक आधार से—आलोचक का अभिप्राय मार्क्सवादी दर्शन से है। दूसरा आक्षेप जो यहाँ समस्त हिन्दी प्रगतिवादी काव्य पर लगाया गया है, दिखावे की सहानुभूति का है। इस सम्बन्ध में हमारा निवेदन यह है कि चाहे और किसी हिन्दी प्रगतिवादी कवि पर यह आक्षेप सही लागू होता हो, पर निराला पर नही। उनके काव्य मे किसी प्रकार की कृत्रिम सहानुभूति नहीं है। 'दलित जन पर करो करुणा' की आर्त्त पुकार करने वाला कवि भिक्षुकों, विधवा, किसानों, पत्थर तोड़ती मजदूरनी आदि के प्रति कृत्रिम सहानुभूति जता रहा है—ऐसा कोई भूल से भी नहीं कह सकता। तीसरा आक्षेप इस कथन मे यह है कि निराला ने प्रयोग के लिए ही प्रगति को अपनाया, उनमें प्रयोग की प्रवृत्ति प्रमुख है। अपने इस कथन का तो प्रो० अरविन्द ने स्वयं ही आगे खण्डन कर दिया जबकि उन्होंने कहा है—"पर यह सब कुछ कह लेने के बाद भी इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि १९३६-३७ से ४२-४५ के बीच निराला जी छायावाद की कुज वीथी से बाहर ही नहीं, कुछ दूर भी आ चुके थे, और अब उनके काव्य की भावभूमि तथा शैली प्रगतिवाद की थी। प्रयोग तो वे दोनों ही क्षेत्रो मे आमरण करते ही रहे।"

भाषा—निराला के कतिपय राष्ट्र-गीतो और अन्य सास्कृतिक उद्बोधन से सम्बन्धित रचनाओं के सिवाय समस्त प्रगतिशील काव्य की भाषा सरल, सुबोध बोलचाल की जन भाषा है। सीधी चोट करने वाला तीखा व्यग्य उसकी अद्भुत शक्ति है। उर्दू के प्रचलित शब्दों और मुहावरो से सजी यह भाषा प्राय निराभरण है—सीधी-सादी सादगी से भरी हुई। हिन्दी के यथार्थवादी प्रगतिशील काव्य को निराला ने ही जन भाषा का आदर्श रूप प्रदान किया।

निष्कर्ष रूप मे कहा जा सकता है कि निराला हिन्दी के प्रगतिशील और प्रगतिवादी कवियों मे शीर्ष स्थान के अधिकारी हैं। जहाँ राम विलास शर्मा, नरेन्द्र शर्मा, अचल नागार्जुन आदि प्रगतिवादी कवि समाजवाद के प्रचार में लगे रहे, केदार नाथ अग्रवाल सीमित यथार्थ के ही गायक रहे, वहाँ निराला ने अपनी सामाजिक चेतना के विस्तृत क्षितिज को उद्घाटित किया। उनका-सा विषय विस्तार, सवेदनाओं की विविधता, काव्य की सरसता, उदार दृष्टिकोण, व्यग्य की क्षमता किसी भी प्रगतिशील या प्रगतिवादी कवि में नहीं है। हिन्दी में प्रगतिवाद के प्रवर्तन का श्रेय निराला के सिवाय और किसे मिल सकता है?

: ५ :

प्रयोगवाद और निराला

यों तो हर युग में हर नवचेता कवि जो नया भाव बोध जगाता है या काव्य-रूप, भाषा छन्द, शैली के नये-नये रूपों का निर्माण करता है, प्रयोगशील होता ही है, और इस दृष्टि से कालिदास, कबीर, केशव, श्रीधर पाठक, मैथिलीशरण गुप्त, प्रसाद, पंत आदि सभी कवि अपने अपने युग और काव्य-क्षेत्र मे प्रयोगशील कहे जा सकते हैं, पर आधुनिक युग में प्रगतिवाद की तरह प्रयोगवाद भी एक विशिष्ट संदर्भ और आधुनिक परिवेश रखता है। सन् १९४० के बाद हिन्दी कविता में नये दृष्टिकोण, नई साहित्यिक चेतना और नये काव्य की मांग बढ़ी। टी एस इलियट, एजरा पाउण्ड और फ्रायड कवियों के आदर्श बन रहे थे। एक ओर तो काव्य को रोजमर्रा की जिंदगी के निकट लाया जा रहा था, दूसरी ओर उसमे परम्परागत रूप विधान और शब्द-छन्द शैली के स्थान पर नये बिम्ब विधान, नयी प्रतीक-योजना, नये शब्द छन्द बंध आदि नये नये प्रयोगो की ललक बढ़ी। छायावादी वीणा अपनी सम्पूर्ण रागिनियों की अलौकिक स्वर लहरी प्रवाहित करके मूर्च्छना की स्थिति को प्राप्त हो गई थी और सामाजिक चेतना प्रगतिवाद, गांधीवाद, राष्ट्रवाद आदि विविध क्षेत्रों मे बंटी हुई टकराहट उत्पन्न कर रही थी। समन्वय की सामाजिक भाव भूमि नहीं बन पाई थी। उलझनो और अनिश्चय की स्थिति मे कवियो ने विविध प्रकार के प्रयोगो की राह अपनाई। हिन्दी मे इस राह के निर्माण का श्रेय भी युगकवि निराला को ही मिला क्योंकि उसका विद्रोही व्यक्तित्व अपने कवि के जन्मकाल से ही नया प्रयोग लेकर आया था और आरम्भ मे ही उल्टा जाप करते करते सिद्ध बन गया। प्रयोगवाद शब्द जबकि २५ वर्षों की गहरी पर्तों मे दबा पड़ा था तभी अपनी 'जुही की कली' के साथ १९१६ ई० मे निराला नये मुक्त छन्द, नये शब्द, नई गति लय और नये विषय रूप को लेकर अवतरित हुआ था। अगले सात आठ वर्षों मे जब उनकी क्रान्तिकारी रचनाएँ 'मतवाला', 'नारायण', 'सरोज' और 'माधुरी' पत्रिकाओं मे प्रकाशित हुई तो हिन्दी जगत् मे हलचल मच गई थी। जितना अधिक निराला का विरोध हुआ, उतना

अधिक वे तन गये। विरोधों ने उनमे मानसिक संघर्ष, विद्रोह और अहम् को और भी तीव्र किया। निराला स्वच्छन्द से स्वच्छन्दतम होते गए। स्वच्छन्दता ही प्रयोगशीलता की जन्मदात्री होती है। सोच सोच कर नियंत्रित कदम रखने वाला क्या प्रयोग करेगा ? निराला के फक्कड, मस्तमौला, स्वच्छन्द, बेपरवाह विद्रोही व्यक्तित्व ने ही उन्हें प्रयोगशील बना दिया।

वर्तमान युग मे, स्वतन्त्रता के पश्चात्, प्रयोग शीलता का जो एक वाद ही चल निकला, उसमे प्रयोगवादियो ने भी निराला का सम्मिलित नहीं किया, पर प्रयोगवादी सभी कवियो ने वाद मे निराला जी को अपना गुरु माना। प्रयोगवाद को चलाने का श्रेय अज्ञेय जी ने मुफ्त में ही पा लिया, वस्तुत वह सारा श्रेय निराला जी को मिलना चाहिए था। प्रेस और प्रचारवाद के कारण 'सप्तक' के कवियों ने जो नाम कमा लिया और प्रयोगवाद के आचार्य बने अज्ञेय ने जो नेतृत्व जमाया, वह सब निराला अपनी आँखो देख रहे थे, अपने कानो सुन रहे थे। प्रयोगवाद की इस दुदुभी मे अपनी सर्वथा उपेक्षा उन्हे कितनी दुखदायी रही होगी, आज हम अनुमान भी नहीं लगा सकते।

'सप्तक' मे प्रयोगशील नये कवियो को प्रस्तुत करते हुए अज्ञेय जी ने लिखा था कि आज का कवि अपनी उलझी हुई संवेदनाओं को जिनके मूल मे अनेक प्रकार की यौन-वर्जनाएँ रहा करती हैं, प्रकाशित करने के लिए अधूरे वाक्यांशों, सीधी-टेढ़ी लकीरो, उल्टे-सीधे मुद्रणो के माध्यम से अपने काव्य मे प्रेषणीयता लाने का जो उपक्रम कर रहा है, वही उसकी प्रयोगशीलता है। 'आत्मनेपद' मे भी अज्ञेय ने कहा है— "प्रयोग सभी कालो के कवियो ने किए हैं, यद्यपि किसी एक काल मे किसी विशेष दिशा मे प्रयोग करने की प्रवृत्ति होना स्वाभाविक ही है। किन्तु कवि क्रमश अनुभव करता गया है कि जिन क्षेत्रो मे प्रयोग हुए हैं, उनसे आगे बढकर अब उन क्षेत्रों का अन्वेषण करना चाहिए जिन्हें अभी नही छुआ गया है या जिनको अभेद्य मान लिया गया है। भाषा को अपर्याप्त पाकर विराम-संकेतों से, अंकों और सीधी तिरछी लकीरों से, छोटे-बडे टाइप से, सीधे या उल्टे अक्षरों से, लोगों और स्थानों के नामों से, अधूरे वाक्यों से, सभी प्रकार के इतर साधनों से कवि उद्योग करने लगा कि अपनी उलझी हुई संवेदना की दृष्टि को पाठकों तक अक्षुण्ण पहुँचा सके।"

प्रयोगवाद के नाम पर कवियों ने अपनी उलझी हुई संवेदनाओं को ऐसी अटपटी, अधूरी भाषा मे मनमाने प्रतीकों और बिम्बो के रूप मे प्रकट किया कि प्रयोग के लिए प्रयोग करना ही उनका लक्ष्य बन गया। इन पथभ्रष्ट कवियों ने निराला के साथ जो अन्याय किया था, निराला की जो उपेक्षा की थी, उसकी सजा वे आज पा चुके हैं। अज्ञेय की सारी हडकम्पी की अब कलई खुल चुकी है। जिन कवियों को, आत्म स्थापन के साथ साथ अज्ञेय ने उछाला था वेही अब उन्हें अस्वीकार (disown) कर चुके हैं।

अब समय आ गया है कि हम अपनी पिछली भूल सुधारें। यदि हिन्दी में प्रयोगशील या प्रयोगवादी कविता की कोई परम्परा है तो वह निराला से मानी जानी चाहिए। निराला उसके प्रवर्तक हैं।

प्रयोगशीलता निराला काव्य का प्रखर लक्षण है। इसकी विशेषता यह है कि सीमा का अतिक्रमण कहीं नहीं किया गया। उन्होंने प्रयोग के लिए प्रयोग नहीं किये। उनके प्रयोग प्रतिक्रियावादी नहीं हैं। उनकी प्रयोगशीलता ने हिन्दी काव्य को नई दिशा प्रदान की। निराला हिन्दी साहित्य के पहलवान थे। पहलवान कुश्तीबाजी में नये-नये दांव पेचों का प्रयोग करता है, निराला ने भी अपनी विजय-सिद्धि के हेतु नये-नये प्रयोगों को अपनाया।

एक सफल प्रयोगशील कवि वही माना जायगा जो विषय, भाव, भाषा, छन्द या शैली के क्षेत्र में ऐसा नया, अछूता असाधारण प्रयोग करेगा जो चौंका देने वाला हो और साथ ही प्रभावी हो अर्थात् पाठक की भावानुभूति और संवेदनाओं को अद्भुत रूप से जगा देने वाला हो। असाधारण और अनोखा प्रयोग ही प्रयोगशीलता का द्योतक हो सकता है। इस दृष्टि से निराला न केवल काल-क्रम या ऐतिहासिक दृष्टि से आधुनिक हिन्दी कविता के प्रथम प्रयोगशील कवि हैं, अपितु आगे के सभी प्रयोगशील या प्रयोगवादी कवियों की तुलना में सर्वश्रेष्ठ प्रयोगवादी कवि ठहरते हैं। निराला की तुलना में अभी तक भी अज्ञेय, प्रभाकर माचवे, भारत भूषण अग्रवाल, नामवर सिंह आदि सप्तकों के कवि या नकेनवादी कवि बौने (Pigmy) ही दिखाई देते हैं।

प्रयोगवादी कवियों में निराला की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि जहाँ आगे के प्रयोगवादी कवियों ने अधिकांशतः भाषा शैली के प्रयोगों तक ही अपने को सीमित रखा और विषय-भाव पक्ष की अवहेलना की, वहाँ निराला का प्रयोग क्षेत्र बहुत विस्तृत है। भाव, विषय, भाषा, छन्द, गीत, संगीत आदि सभी क्षेत्रों में निराला ने सुन्दर प्रयोग किए और कहीं भी भाव या विषय पक्ष की उपेक्षा नहीं की।

भाषा के क्षेत्र में निराला के प्रयोगों की कोई सीमा नहीं। 'राम की शक्ति-पूजा' के प्रारम्भ में तथा 'तुलसीदास' और अनेक गीतों में ऐसी भाषा है जो अत्यन्त गम्भीर संस्कृत-गर्भित है कि जिसका समझा जाना कठिन है, दूसरी ऐसी सरल बोल-चाल की कि जिसका न समझा जाना कठिन है। यथार्थपरक कविताओं की ऐसी ही भाषा है। कहीं उर्दू-अंग्रेजी के शब्द भी सम्मिलित हैं, जैसे 'कुकुरमुत्ता' में—

अबे सुन बे गुलाब,
भूल मत गर पाई खुशबू रंगो आब
डाल पर इतरा रहा कैपीटलिस्ट।

कहीं उर्दू शैली और मुहावरेदार भाषा है, जैसे 'बेला' में—

(१) निराया है जमीं होकर, छुड़ाया आसमां होकर,
निकाला दुश्मने जां और बुलाया मेहरबां होकर।

(२) पढ़ी पढ़ी कब उनकी आँखें में हम कब आये ?

कहीं समासबहुला है, कहीं समास-रहित—एक-एक शब्द अलग ! किन्तु यह भाषा-वैविध्य यों ही कहीं ईंट, कहीं पत्थर नहीं है, सब विषयानुरूप भावानुरूप है। कहीं ओज है, कहीं कोमलता—सब भावानुरूप।

छन्द बंध की दृष्टि से तो निराला जी प्रसिद्ध विद्रोही और प्रयोगशील हैं ही। हिन्दी मे उन्होंने ही मुक्त छन्द का ऐसा प्रवर्त्तन किया कि आज तक हिन्दी कविता उसी लकीर को पीट रही है। वह छंदों से सर्वथा मुक्त हो गद्यवत हो गई है। अज्ञेय आदि ने जो अधूरे वाक्यो, छोटी-बड़ी पंक्तियो, विराम सकेतों, अकों और सीधी-तिरछी लकीरों का फैशन अपनाया उसका स्रोत निराला के सिवाय कहाँ था ? आज की कविता को गद्यवत बना देने का श्रेय या दोष निराला का ही है। उन्होंने कड़े से कड़े छद बध मे भी सुन्दर कविता की, 'तुलसीदास' का छन्द-बध ऐसा ही है, जिसे साधना निराला के ही बस की बात थी, और मुक्त छद मे भी उनकी 'जुही की कली' की टक्कर का बध मिलना कठिन है, तथा 'नये पत्ते' की अनेक गद्यवत कविताएँ छद की सर्वथा मुक्ति, पूर्ण त्याग की परिचायक हैं। उन्होंने तुकान्त, अतुकान्त, मध्यतुक, अन्त्यानुप्रास सभी में रचना की। यही नहीं, फारसी की गजलों और बहरो का भी सफल प्रयोग किया। 'बेला' की गजलें इसका प्रमाण हैं।

प्रयोग वही सफल होता है जो जॅच जाय, प्रभावी हो। निराला की गजलों के प्रयोगो को कुछ लोग अधिक सफल नही मानते, पर मैं समझता हूँ कि निराला ने इस क्षेत्र में बहुत सफलता प्राप्त की है। "गिराया है जमीं होकर, छुड़ाया आसमां होकर', 'किनारा वे हमसे किये जा रहे हैं', 'बदली जो उनकी आँखें, इरादा बदल गया', 'साहस कभी न छोड़ा आगे कदम बढाये', 'निगह तुम्हारी थी दिल जिससे बेकरार हुआ', 'हँसी के तार के होते हैं ये बहार के दिन' आदि गजलो और बहरो की रवानी किस उर्दू शायर की गजलों मे कम है ? भाव सम्पदा तो उनकी बेमिसाल है ही।

गीत और संगीत में भी निराला ने विलक्षण प्रयोग किये हैं। 'बेला' के गीतो मे लोकगीत, कजली, ख्याल शैली आदि अनेक विशेषताएँ पाई जाती हैं। 'परिमल', 'गीतिका' आदि के गीत शास्त्रीय सगीत में आबद्ध हैं। खड़ी बोली हिन्दी की ध्वनि को इतने विविध क्षेत्रों मे किस कवि ने परखा है ? कजली की तरज का उनका गीत—'काले-काले बादल छाये, न आए वीर जवाहरलाल' कितना प्रसिद्ध है !—१९४२ के दुर्दिनो मे वर्षा का कैसा बढिया रूपक साथ साथ खिचा है ! 'बेला' के १५वें और १६वें वसत-वर्णन के गीत (हँसी के तार के होते हैं ये बहार के दिन' और 'हँसी के भूले···') ख्याल शैली के हैं। निराला ने बगला सगीत या रवीन्द्र सगीत को जिस खूबी से हिन्दी मे उतारा है, वह उनका कितना अभिनव प्रयोग था ! 'गीतिका' आदि सग्रहों के अनेक गीतों में रवीन्द्रनाथ ठाकुर की गीत शैली के सुन्दर प्रयोग हैं। नये

पत्ते' में वार्तालाप शैली का सुन्दर प्रयोग किया गया है। निराला ने सम्बोधगीत, शोकगीत, गीत, प्रगीत—लघु दीर्घ दोनों, गजल लोकगीत, खण्डकाव्य, आदि विविध काव्यरूपों के सफल प्रयोग किए।

निराला की अप्रस्तुत योजना में भी उनका प्रयोग शिल्पी सर्वत्र दिखाई देता है। 'खजोहरा' में वर्षा के बादलों का हाईकोर्ट के काले चोगे धारी वकीलों के साथ रूपक बाँधना कल्पना की कैसी अनोखी सूझ है। कैसी मृदुल खिल्ली उड़ाई गई है!

दौड़ते हैं बादल ये काले काले, हाईकोर्ट के वकील मतवाले,
जहां चाहिये वहां नहीं बरसे, धान सूखा देखकर नहीं तरसे,
जहाँ पानी भरा वहां छूट पड़े, कहकहे लगाते हुए टूट पड़े।

वकीलों के अर्थहीन हास परिहास, वमुरव्वत जीवन का यह ऐसा खाका है जो विषय की दृष्टि से भी अनूठा प्रयोग है। इस कविता में वकने, कहकहे, हिलगी, तुम्बी तुन्नो तुन्ने, सजे सजे आदि शब्दों का प्रयोग तथा 'मेढक एक बोलता है, जैसे सुकरात, दूसरा फलातूँ' आदि असाधारण अप्रस्तुत कल्पना में एक नई रंगीनी पैदा कर देते हैं।

निराला की 'कुकुरमुत्ता' कविता तो एक पूरा प्रयोग ही है। कुकुरमुत्ता का प्रतीक प्रयोग असाधारण प्रतिभा का ही कार्य था। क्या विषय, क्या व्यंग्य की विलक्षणता, क्या भाषा और क्या शैली सब दृष्टि से 'कुकुरमुत्ता' निराला का अद्भुत प्रयोग है। स्थान स्थान पर व्यंग्यपूर्ण अप्रस्तुत (उपमान) उपयुक्त हुए हैं—

(१) आगे चली गोली जैसे डिक्टेटर
उसके पीछे बहार, जैसे भुक्खड़ फॉलोअर,
उसके पीछे दुम हिलाता टेरियर—
आधुनिक पोएट (Poet)
पीछे बाँदी बचत की सोचती,
कैपीटलिस्ट क्वॅट (Quiet)

(२) जैसे प्रोग्रेसीव का, लेखनी लेते,
नहीं रोका रुकता जोश का घोड़ा।

(३) कहीं की ईंट, कहीं का लिया पत्थर,
टी० एस० इलियट ने जैसे दे मारा,

(४) हाथ जिसके तू लगा, पैर सर रखकर वह पीछे को भगा
औरत की जानिब औरत की, लड़ाई छोड़कर, टट्टू जैसे तबेले को तोड़कर।

—कुकुरमुत्ता

(५) बर्तुल उठे हुए उरोजों पर अड़ी थी निगाह
चोंच जैसे अधन्त की,

—नये पत्ते

निराला के विषयगत प्रयोगों की कोई इयत्ता नहीं। सर्वथा अछूते और नगण्य विषयों को सर्वप्रथम निराला ने ही अपनाया। 'दो टूक कलेजे के करता पछ-

ताता पथ पर ग्राता' भिक्षुक उस युग मे निराला के सिवाय किसकी कल्पना और सवेदना जगा सकता था ? इलाहाबाद के पथ पर आग उगलती दोपहरी मे पत्थर तोड़ती मजदूरिन के कर्मरत सौन्दर्य और विषम जीवन को सवेदना का विषय और कौन बना सकता था ? किसान की नई वधू की निरुपाय आखों का अवलोकन कौन कर सकता था ? बदरो को मालपुए खिलाने और मनुष्य की उपेक्षा का यह पाखण्ड-पूर्ण धर्माचरण कितना अछूता विषय है !—

झोली से पुए निकाल लिए, बढ़ते कपियो के हाथ दिये,
देखा भी नहीं उधर फिरकर, जिस ओर रहा वह भिक्षु इतर ।

कुकुरमुत्ता जैसे नगण्य पौधे को सर्वहारा वर्ग का प्रतीक बनाकर निराला ने कैसे अछूते विषय को अपनाया है ! निराला युग के सबसे बड़े व्यग्यकार थे। उनके व्यग्य प्रयोगों को देखकर चकित रह जाना पड़ता है। पूजीवादी-सामतीय शोषक-सस्कृति के प्रतीक गुलाब को कुकुरमुत्ता (साधारण सर्वहारा) की यह फटकार कैसी अनोखी है !—

अबे सुन बे गुलाब !
भूल मत गर पाई खुशबू, रगोआब,
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट,
डाल पर इतरा रहा कैपिटलिस्ट, ... आदि

'अनामिका' की 'वनवेला' कविता मे निराला जी ने चेतना प्रवाह (Stream of consciousness) के रूप मे ढोंगी नेताओं, पूजीपतियो, राजाओं, राजपुत्रो, सम्पादको और कवियों तथा थोथी साहित्यिक सस्थाओ पर जो व्यग्य बौछार की है, वह उनकी व्यग्य प्रयोगशक्ति का अद्भुत उदाहरण है। कवि नदी-तट पर भ्रमण करता हुआ मन में तरह तरह की बातें सोच रहा है। अपने जीवन की विफलता पर विचार करता करता वह—

फिर लगा सोचने यथासूत्र—"मैं भी होता
यदि राजपुत्र—मैं क्यों न सदा कलक ढोता,
ये होते जितने विद्याधर मेरे अनुचर,
मेरे प्रसाद के लिए विनत सिर उद्यत कर,
मैं देता कुछ, रख अधिक, किन्तु जितने पेपर,
सम्मिलित कठ से गाते मेरी कीर्ति अमर,
जीवन चरित्र लिख अग्रलेख अथवा छापते विशाल चित्र।
इतना भी नहीं, लक्षपति का भी यदि कुमार
होता मैं, शिक्षा पाता अरब-समुद्र-पार,
देश की नीति के मेरे पिता परम पडित,
एकाधिकार रखते भी धन पर, अविचल चित्त

होते उग्रतर साम्यवादी, करते प्रचार,
चुनती जनता राष्ट्रपति उन्हें ही सुनिर्धार,
पैसे में दस राष्ट्रीय गीत रचकर उन पर
कुछ लोग बेचते गा-गा गर्दभ मर्दन-स्वर,
हिन्दी-सम्मेलन भी न कभी पीछे को पग
रखता कि अटल साहित्य कहीं यह हो डगमग,······।

'कैलाश मे शरत्' कविता मे निराला जी ने 'दिवा स्वप्न' (Dream Phantasy) का सुन्दर प्रयोग किया है। इसमे उन्होंने स्वामी विवेकानन्द के साथ यात्रा की कल्पना की है।

इससे भी अधिक विलक्षण प्रयोग निराला ने 'नये-पत्ते' की 'स्फटिक शिला' मे किया है जहाँ अपने चेतन मे दबी काम-कुण्ठा को कवि ने उन्मुक्त निकलने दिया है। अवचेतन मन का ऐसा प्रवाह हिन्दी काव्य क्षेत्र मे प्रथम मनोवैज्ञानिक प्रयोग था। यूरोप मे फ्रायड आदि मनोवैज्ञानिकों के प्रभाव से बिम्बवादी प्रवृत्ति के कवियों ने इस प्रकार के प्रयोग किये थे, किन्तु हिन्दी मे यह पहला प्रयास था। 'स्फटिक शिला' पर बैठा कवि एक सद्य-स्नाता के नग्न सौन्दर्य को उन्मुक्त भाव से देखता और मासल रस प्राप्त करता है : "खडा हुआ स्फटिक शिला मैं देखता ही रहा। आँख पडी युवती पर, आई थी जो नहा कर, गीली धोती सटी हुई भरी देह मे सुघर, उठे पुष्ट स्तन, दुष्ट मन को मरोड कर, आयत दृगो का मुख खुला हुआ छोडकर, बदन कही से नही कापता। कुछ भी सकोच नहीं ढापता। वर्तुल उठे हुए उरोजों पर अडी थी निगाह, चोंच जैसे जयन्त की, नही जैसे कोई चाह देखने की मुझे और कैसे भरे दिव्य स्तन हैं ये कितने कठोर। मेरा मन काप उठा, याद आई जानकी। कहा, तुम राम की, कैसे दिये हैं दर्शन।"

चेतन-अवचेतन का यह सघर्ष-चित्रण निराला जी का अद्भुत मनोवैज्ञानिक प्रयोग है। 'तुलसीदास' और 'राम की शक्तिपूजा' में भी निराला जी ने मनोवैज्ञानिक प्रयोग किये थे, पर वे प्रयोग क्लासिकल ही थे, यह चेतन-अवचेतन का प्रयोग सर्वथा नया है।

काम का यथार्थ और सामाजिक व्यग्यात्मक चित्रण निराला ने अपनी 'प्रेम-सगीत' कविता मे करके अपने पाठकों को चौंका दिया था। ब्राह्मण का लडका, और कहार की लडकी पर मरता है! वह भी अपने ही घर की पनिहारिन!!—

"बम्हन का लडका मैं उसे प्यार करता हूँ। जात की कहारिन वह, मेरे घर की है पनहारिन वह, आती है होते तडका, उसके पीछे मैं मरता हूँ।"—नये पत्ते

जीवन की यथार्थता के ऐसे व्यग्य चित्र प्रस्तुत करने मे निराला का सानी नही। 'नये पत्ते' की 'महगू महगा रहा', 'कुत्ता भौंकने लगा', 'मास्को डायलाग्ज', 'गाजे ने अपनी रखवाली की' जैसी कविताओं में जो अछूते राजनैतिक एव सामाजिक व्यग्य पाये जाते हैं, वे निराला को हिन्दी का श्रेष्ठ व्यग्य प्रयोगकर्ता कवि सिद्ध करते हैं।

अंग्रेजी विद्वान श्री जी० एस० फ्रेजर ने अपनी पुस्तक 'वीजन एण्ड रिटोरिक' (Vision And Rhetoric) में प्रयोगवादी अंग्रेजी कविता की ये मुख्य विशेषताएँ बताई हैं[1]—१ भावों पर सीधा आक्रमण अर्थात् भाव सवेदन । २ लयो का साहसिक व्यजनात्मक प्रयोग अर्थात् छन्द धुनों का स्वच्छन्द प्रयोग। ३ सदर्भ प्राचुर्य का सतरगी प्रभाव ४ बिम्बो और प्रतीको का आधार ।

निराला के काव्य मे प्रयोगवादी कविता की ये सब विशेषताएँ पाई जाती हैं। भावान्दोलन या भावसवेदन तो उनका सा किसी भी कवि मे नही ।

यद्यपि निराला के अधिकाश प्रयोग पूर्ण सफल हैं, पर कही-कही प्रयोग के लिए प्रयोग अथवा असफल प्रयोग भी दिखाई देते हैं। निराला की प्रारंभिक छायावादी रचनाओ मे भी प्रयोगो की बहुलता है, पर उनके छायावादोत्तर यथार्थपरक काव्य-सग्रहो 'कुकुरमुत्ता', 'अणिमा', 'बेला' और 'नये पत्ते' मे उनकी प्रयोगशीलता बढती गई । इस बढती हुई प्रयोग प्रवृत्ति से कही कही अस्पष्ट, असगंल और निरर्थक प्रयोग भी निराला कर गये हैं, जैसे 'अणिमा' की 'चू कि यहाँ दाना है' कविता की ये पक्तियाँ :

अम्मा है, अप्पा है
झापड है और गोल गप्पा है,
नौजवान मामा है और बुड्ढा नाना है,
चूकि यहाँ दाना है ।

इस कविता मे 'टका धर्म' सस्कृति पर व्यग्य किया गया है । जहाँ रुपया है, वहीं महफिल है, नग्मे हैं, साज है, वही दिलदार है, वही शम्मा और परवाना हैं । इस प्रयोग की नोंक-झोंक मे कवि आगे कहता है कि जहाँ पैसा है वही मा बाप है, वहीं थप्पड है और वही गोलगप्पा है। उपर्युक्त पक्तियाँ कुछ अटपटी सी हैं। यदि थप्पड से अभिप्राय [क्षति लें तो गोलगप्पा का प्रयोग तो अटपटा ही मानना होगा। फिर जवान मामा और बूढा नाना का क्या अभिप्राय हुआ ? यहाँ अर्थ-बोध के लिए खींचा-ताना ही करनी पडती है। इसी प्रकार 'नये पत्ते' की 'झाड झाड का काटा हो गई' अस्पष्ट- सा प्रयोग ही है .

मुहो-मु[illegible] रहे
एक पेड पर दो डालों के काटे जैसे
अपनी-अपनी कली तोलते हुए ।
हर्फ न आया,

1 This direct attack on the emotions, too daringly expressive use of rhythm, this elliptical effect of multiple reference, this central reliance on the image symbol are, it might seem, essential parts of what we mean by experimentalism in the English poetry of this century."

—G S Fraser Vision & Rhetoric P. 24

× × × ×

छाँह में बैठाकर तंग नसें ढीली कीं;
फिर बुखार उतारा;
राही आया;
अपना रास्ता लिया
आँख आँख का काँटा हो गई।

यहाँ किसकी आँख किसकी आँख का काँटा हो गई, यह बिल्कुल अस्पष्ट है। यह चुभने वाला काँटा है कि तोलने वाला काँटा, कुछ पता नहीं चलता है। कुछ लोगों ने ऐसी रचनाओं को निराला की विक्षिप्त अवस्था का परिणाम बताया है। जो हो, प्रयोग अटपटा और अस्पष्ट ही है। ऐसे ही अटपटे प्रयोग के निमित्त प्रयोग करके आगे के प्रयोगवादी कवियों ने कविता को ऊलजलूल बनाकर छोड़ा। निराला में यह अटपटापन भी उस सीमा तक नहीं है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि निराला हिन्दी में प्रयोगवाद के प्रवर्तक सफल प्रयोगशील कवि हैं। उनके अनोखे प्रतीक, विलक्षण बिम्ब-योजना, छन्द-बंध, गेय छन्दों के विविध प्रयोग, तुकांत-अतुकांत, मुक्त छन्द, छन्दहीन गद्य, भाषा के विविध प्रयोग, प्रखर व्यंग्य-हास्य की प्रवृत्ति, नये-नये विषय-क्षेत्रों का संधान, मनोवैज्ञानिक प्रयोग सब उन्हें उच्चकोटि का प्रयोगशील कवि सिद्ध करते हैं।

षष्ठ विमर्श

कलापक्ष

- काव्य में छन्द-विधान और निराला का मुक्त छन्द
- निराला की भाषा-शैली
- बिम्ब-योजना
- प्रतीक-विधान
- अलंकार-विधान
- काव्य-रूप एवं गीत-संगीत-शिल्प

: १ :

काव्य में छन्द-विधान और निराला का मुक्त छंद

कविता और छन्द का अटूट सम्बन्ध है। विश्व-काव्य-साहित्य आदि काल से ही छन्दोबद्ध रूप में रचा गया है। छन्दों का आधार लय और संगीत है। आधुनिक युग से पूर्व तक छन्दों की काव्य में अनिवार्यता का सिद्धांत सर्वमान्य था। वैदिक साहित्य से सिद्ध होता है कि वैदिक युग में शास्त्रबद्ध छन्दों के अतिरिक्त शास्त्रमुक्त छन्दों का भी खुला प्रयोग होता था। पर वह शास्त्रमुक्त छन्द भी छन्द ही होता था जिसमें स्वर लय का एक व्यवस्थित क्रम संगीतात्मकता उत्पन्न करता था। आधुनिक युग में जो स्वच्छन्द छन्द की बात निराला ने संभवतः अंग्रेजी या बंगला के प्रभाव से हिन्दी में की थी, वह कोई नई बात नहीं थी। निराला ने केवल नियम-बंधन का विरोध किया था, छन्द का नहीं। अर्थात् निराला ने कविता करते समय मात्राओं या अक्षरों की निश्चित गणना से युक्त नियमबद्ध छन्दों के प्रतिबंध का विरोध किया था, भाषा के निश्चित प्रवाह का नहीं, जो अन्ततः छन्द ही होता है, चाहे उसका पूर्व नामकरण न हुआ हो।

छन्दों की स्वच्छन्दता का पूर्व-प्रयास—हिन्दी में छन्दों की नवीनता की आवश्यकता पर सर्वप्रथम आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने विचार व्यक्त किये थे। उन्होंने एक तो परम्परागत मात्रिक छन्दों के साथ-साथ संस्कृत के वर्णवृत्तों को अपनाने की ओर कवियों का ध्यान दिलाया था, जिससे अयोध्यासिंह उपाध्याय मैथिलीशरण गुप्त आदि ने दिशा-संकेत पाकर संस्कृत के वर्णवृत्तों में भी कविता आरंभ की। दूसरे, द्विवेदी जी ने तुकांत रचना के स्थान पर अतुकांत रचना करने पर भी बल दिया। उनका कथन है : "पादांत में अनुप्रासहीन छन्द भी हिन्दी में लिखे जाने चाहियें। इस प्रकार के छन्द जब संस्कृत, अंग्रेजी और बंगला में विद्यमान हैं, तब कोई कारण नहीं कि हमारी भाषा में वे न लिखे जायें।" (रसज्ञरंजन, पृ० १७)

द्विवेदी जी ने ही सर्वप्रथम परम्परागत परिपाटी को छोड़कर नवीन छन्दों के प्रयोग की आवाज बुलन्द की थी। उन्होंने कहा था—"किसी भी प्रचलित परिपाटी

या श्रम भग होता देख प्राचीनता के पक्षपाती बिगड खडे होते हैं और नई चाल के विषय मे नाना प्रकार की कुचेष्टाएँ और दोषोद्भावनाएं करने लगते हैं, यह स्वाभाविक बात है। परन्तु यदि इस प्रकार की टीकाओ से लोग डरते, तो ससार से नवीनता का लोप ही हो जाता।" (वही, पृ० १७)। जून १९०१ की 'सरस्वती' मे प्रकाशित द्विवेदी जी की 'हे कविते !' नामक कविता वर्णवृत्त मे लिखी गई हिन्दी की पहली अतुकांत रचना है। सस्कृत के वर्णवृत्तो का अतुकांत प्रयोग विस्तारपूर्वक 'हरिऔध' जी ने अपने 'प्रियप्रवास' मे किया था। मात्रिक छन्दों को अतुकांत रूप देने का महत्वपूर्ण प्रयास सर्वप्रथम जयशकर प्रसाद द्वारा हुआ। १९१२ ई० मे रचित उनकी 'भरत' नामक कविता मे २१ मात्राओं के अरिल्ल छन्द का अतुकांत प्रयोग हुआ है। इसके बाद प्रसाद जी ने अग्रेजी के 'ब्लैंक वर्स' के प्रभाव से अनेक चतुर्दशपदियों, 'करुणालय', 'महाराणा का महत्व' और 'प्रेमपथिक' काव्यों की रचना १९१३ और १९१४ ई० में ही कर डाली। प० रूपनारायण पाडेय ने भी अपनी मौलिक तथा बगला से अनूदित रचनाओं में ऐसे ही अतुकान्त छन्दों का प्रचुर प्रयोग किया।

अतुकांतता के साथ ही छन्द की स्वच्छन्दता का एक और प्रयास प्रसाद आदि खडी बोली के प्रारम्भिक कवियों द्वारा यह हुआ कि इन्होने अग्रेजी के 'ब्लैंक वर्स' (Blank verse) के साथ 'फ्रीवर्स' (Free verse) और 'रन ऑन लाइन' (Run on lines) का भी प्रयोग आरम्भ किया। 'रन ऑन' या 'चल चरण' में विराम का प्रयोग चरणात मे न होकर अर्थ की दृष्टि से होता है और पूर्णविराम कहीं भी आ सकता है।

परम्परागत छन्द चार-चार चरणो के होते थे। हमारे इन कवियों—विशेषत प्रसाद ने छन्द की इस सीमा और बधन को भी तोड डाला। अतुकांत और 'चल चरण' नवीन छन्दों की चरण सख्या नियत नही रही, जहाँ भी भाव समाप्त हो गया, वही कविता का अन्त कर दिया जाने लगा। इस प्रकार परम्परागत सम और अर्द्धसम छन्दो के स्थान पर विषम छन्दो का सूत्रपात हुआ। विषम मात्रिक अतुकात छन्दो का निराला से पूर्व ही खूब प्रयोग होने लगा था। निराला से पूर्व अर्थात् १९१६ ई० तक हिन्दी मे गण, मात्रा, वर्ण आदि सभी रूपो मे सम, अर्द्धसम, विषम, भिन्न तुकात, अतुकान्त और 'चल चरण' छन्दो का प्रचलन हो गया था। श्री मैथिलीशरण गुप्त ने माइकेल मधुसूदन के 'मेघनाद वध' का हिन्दी अनुवाद कवित्त के उत्तरार्द्ध के १५ वर्णों के प्रवाह आधार पर करके मुक्तक वर्ण छन्दों की प्रयोग-सभावनाओं का मार्ग खोल दिया था। प्रसाद, पत, रूपनारायण पाडेय, मैथिलीशरण गुप्त, सियाराम शरण गुप्त, अयोध्या सिंह उपाध्याय, पं० गिरधर शर्मा नवरत्न, अनूप शर्मा आदि अनेक नवचेता कवि नये छन्द विधान की ओर अग्रसर हो रहे थे। निराला ने इन सब से निराले ढग पर अपने मुक्त छन्द का निर्माण १९१६ ई० मे रचित अपनी 'जुही की कली' रचना मे किया। उन्होने अपने से पूर्व सभी प्रयासो को मुक्त छन्द

मानने से इन्कार किया और अपने मुक्त छन्द पर स्वयं प्रकाश डाला। निराला के सम्मुख हिन्दी की अपेक्षा बंगला की नव छन्द परम्परा अधिक समृद्ध थी। बंगला में माइकेल, नवीनचन्द्र सेन, गिरीशचन्द्र, रवीन्द्रनाथ ठाकुर आदि अनेक कवि मुक्त छन्दों के भिन्न-भिन्न प्रयोग कर चुके थे। बंगला का यह प्रभाव निराला में संस्कारगत था। साथ ही मिल्टन, शेक्सपियर आदि अंग्रेजी के कवियों के अतुकान्त 'इयाम्बिक पेंटामीटर'-जैसे मुक्त छन्द-प्रयोगों से भी निराला को प्रेरणा मिली।

नवीन छन्दों की आवश्यकता की इसी भूमिका में निराला ने—

१. कविता में छन्दों के बंधन का विरोध करते हुए छन्दों के बंधन को कविता के स्वतन्त्र निर्माण में बाधक बताया।

२. संस्कृत, अंग्रेजी और बंगला में प्रयुक्त मुक्त छन्द के प्रयोग पर बल दिया।

३. मुक्तछन्द के विरोधियों को मुंहतोड़ जवाब दिया।

यहाँ दो महत्त्वपूर्ण प्रश्न उपस्थित होते हैं: १ क्या छन्द-बंधन कवि-कर्म में बाधक सिद्ध होता है? २ क्या कविता में छन्द का महत्त्व गौण है? क्या वह कविता की अनिवार्यता नहीं?

पहले प्रश्न का तो निर्विवाद उत्तर यही है कि निश्चय ही वर्ण-मात्रा-गणना—विशेषतः वर्ण-गणना पर आधृत निश्चित छन्द का बंध कवि-कर्म को अत्यन्त कठिन ही नहीं बनाता, अपितु उसके स्वतन्त्र विकास में भी कुछ बाधा उपस्थित करता है। पर इससे कविता में छन्द का महत्त्व गौण मान लेना सर्वथा भ्रांति ही है। कविकर्म में कठिनाई होते हुए भी कविता में छन्द का गौण या वैकल्पिक स्थान नहीं है। न तो आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने छन्दों का निषेध किया था, न निराला ने। निराला ने शास्त्रबद्ध परम्परागत छन्दों का विरोध किया था, न कि कविता में छन्द-विधान को ही वर्जित करार दिया। सच तो यह है कि निराला ने अपने मुक्त छन्द का ही समर्थन किया था, छन्दों का विरोध नहीं किया, उन्होंने छन्दों के पूर्व साँचों का प्रतिबंध अनावश्यक माना—बंधन को अस्वीकारा, न कि मुक्त छन्द अर्थात् स्वतः निर्मित, स्व-छन्द (स्वच्छन्द) छन्द को। वास्तव में निराला का तात्पर्य यही था कि कवि की अनुभूति स्वतः अपने आप जिस प्रवाहात्मक स्वतः व्यवस्थित रूप में प्रकट हो जाती है, वह मुक्त छन्द बन जाता है। निराला के अनुसार कविता ऐसे ही मुक्त छन्द में गुम-गेनती है।

निराला की मुक्त छन्द कविता को छन्दरहित कविता मान लेने की भ्रांति के ही कारण आज हिन्दी में आए दिन कविता के नाम पर ढेरों ऊलजलूल एवं विकृत गद्य लिखा जा रहा है। मनमाने ढंग पर अक्षरों को उगल देने वाले आज के तथाकथित कवियों को हम बता देना चाहते हैं कि निराला का मुक्त छन्द भी एक सफल छन्द था। उसमें मात्रिक बंधनों की अवहेलना होते हुए भी प्रवाह और लयात्मकता की सफल व्यवस्था थी। आन्तरिक लयात्मकता और प्रवाह का ध्यान रखे बिना

अनर्गल छोटी-बड़ी पंक्तियाँ रख देने से अपने कवि-कर्म की सिद्धि समझ लेने वाले आज के कवि कहलाने वाले अनेक नासमझ लोगों को निराला के मुक्त छन्द की कला का ही ज्ञान प्राप्त कर अपनी भ्रांति दूर कर लेनी चाहिये। यहाँ निराला के विचार व्यक्त करते हुए उनके मुक्त छन्द का स्वरूप स्पष्ट करना आवश्यक है। 'परिमल' की भूमिका में निराला ने कहा है :

"मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है। मनुष्यों की मुक्ति कर्मों के बन्धन से छुटकारा पाना है, और कविता की मुक्ति छन्दों के शासन से अलग हो जाना।……मुक्त काव्य (मुक्त छन्द काव्य) कभी साहित्य के लिए अनर्थकारी नहीं होता, किन्तु उससे साहित्य में एक प्रकार की स्वाधीन चेतना फैलती है, जो साहित्य के कल्याण की ही मूल होती है।"

"मुक्त छन्द तो वह है जो छन्द की भूमि में रहकर भी मुक्त है।……उसमें नियम कोई नहीं, केवल प्रवाह कवित्त छन्द का-सा जान पड़ता है। कहीं-कहीं आठ अक्षर आप-ही आप आ जाते हैं। मुक्त छन्द का समर्थक उसका प्रवाह ही है। वही उसे छन्द सिद्ध करता है, और उसका नियम-राहित्य उसकी मुक्ति।"

यही नहीं, निराला जी ने स्पष्ट घोषित किया कि "हिन्दी में मुक्त काव्य कवित्त छन्द की बुनियाद पर सफल हो सकता है।" पंत जी ने 'पल्लव' के 'प्रवेश' में लिखा था कि "मुक्त काव्य भी हिन्दी में ह्रस्व दीर्घ मात्रिक संगीत की लय पर चल सकता है" (पृ० ४६)। निराला ने अपने अहम् को प्रदर्शित करते हुए कुछ उग्र शब्दों में पंत जी की इस धारणा का खण्डन करते हुए लिखा था .

"स्वच्छन्द छन्द में 'तार' और 'मार' के अनुप्रासों की कृत्रिमता नहीं रहती—वहाँ कृत्रिम तो कुछ है ही नहीं। यदि कारीगरी की गई, मात्राएँ गिनी गईं, लड़ियों को बराबर रखने पर ध्यान रखा गया तो इतनी बाह्य विभूतियों के गर्व से स्वच्छन्दता का सरल सौन्दर्य, सहज प्रकाशन निश्चय है कि नष्ट हो जाता है। पंत जी ने जो लिखा है कि स्वच्छन्द छन्द ह्रस्व-दीर्घ मात्रिक संगीत पर चल सकता है, यह एक बहुत बड़ा भ्रम है। स्वच्छन्द छन्द में आर्ट ऑफ म्यूजिक (Art of music) नहीं मिल सकता, वहाँ है आर्ट ऑफ रीडिंग (Art of reading); वह स्वर-प्रधान नहीं, व्यंजन-प्रधान है। वह कविता की स्त्री-सुकुमारता नहीं, कवित्व का पुरुष गर्व है। सौन्दर्य गाने में नहीं, वार्तालाप करने में है। उस (स्वच्छन्द छन्द) की सृष्टि कवित्त से हुई है, जिसे पंत जी विदेशी कहते हैं· · मेरे—

देख यह कपोत कंठ—
बाहु-वल्ली-कर-सरोज—
उन्नत उरोज पीन क्षीण कटि—
नितम्ब-भार-चरण सुकुमार—
गति मंद मंद

छूट जाता धैर्य ऋषि मुनियों का,
देवों भोगियों की तो बात ही निराली है।

"—(इसमे) देख यह कपोत कंठ' के 'ह' को निकाल दीजिए। अब देखिए, कवित्त छन्द के एक चरण का टुकड़ा बनता है या नहीं। इसी तरह 'बाहु वल्ली कर-सरोज' के 'र' को निकाल कर देखिए। लिखे हुए सम्पूर्ण चरणों की धारा कवित्त छन्द की है, नियमो की रक्षा नही की गई, न स्वच्छन्द मे की जा सकती है। कहीं-कहीं बिना किसी प्रकार का परिवर्तन किए ही मेरे मुक्त-काव्य मे कवित्त छन्द के बद्ध लक्षण प्रकट हो जाते हैं। अवश्य इस तरह की लड़ी मैं जान-बूझकर नही रखता करता।" "मुक्त काव्य मे बाह्य समता दृष्टिगोचर नहीं हो सकती, बाहर केवल पाठ से उसके प्रवाह मे जो सुख मिलता है, उच्चारण से मुक्ति की जो प्रवाह धारा प्राणों को सुख-प्रवाह सिक्त निर्मल किया करती है, वही इसका प्रमाण है।" (पंत और पल्लव)

उपर्युक्त पंक्तियो मे जहां निराला जी ने अपने मुक्त छन्द के स्वदेशी कवित्त छन्द पर आधृत होने की बात को स्पष्ट प्रमाणित किया है, वहीं बेचारे पंत जी पर व्यर्थ ही आक्रोश व्यजित कर दिया। भला उनसे कोई पूछता, क्या प्रवाह और आन्तरिक लयात्मकता, जो मुक्त छन्द के प्रमुख आधार हैं, केवल कवित्त छन्द की ही बुनियाद पर उतर सकते हैं? क्या मात्राओं के सयात्मक आयोजन से, जिसे पंत जी ने "ह्रस्वदीर्घ मात्रिक सगीत की लय" कहा है, मुक्तछन्द का निर्माण सभव नहीं? "कविता की स्त्री सुकुमारता" और "कवित्व का पुरुष गर्व" आदि शब्दों का प्रयोग तर्कबल के स्थान पर व्यक्तिगत प्रहार ही प्रतीत होता है। जो हो, हमारा निवेदन यही है कि निराला के मुक्त छन्द का आधार चाहे कवित्त छन्द रहा हो—यद्यपि उनके ही अनेक पद्यों से यह पूर्ण सत्य प्रमाणित नहीं होता—मुक्त छन्द अनायास ही किसी मात्रिक अथवा वार्णिक छन्द के प्रवाह और गति का ग्रहण कर सकता है। उसमें दो ही मुख्य बातें आवश्यक हैं—एक प्रवाह और दूसरे आतरिक लयात्मकता। 'अणिमा' की 'सेवा प्रारम्भ' कविता की इन पंक्तियो मे तुकातता भी है और निराला के इस मुक्त छन्द का आधार कवित्त छन्द भी नहीं है.

अल्प दिन हुए
भक्तों ने रामकृष्ण के चरण छुए
जगी साधना
जन जन में भारत की नवाराधना

निराला के मुक्त छन्द में अन्त्यानुप्रास या तुकांतता का चाहे अभाव रहा है, पर उसमें अन्त:अनुप्रास और अन्त:तुकसाम्य पंक्ति पंक्ति में दिखाई देता है। उपर्युक्त पक्तियों में 'सरोज', 'उरोज', 'पीन : क्षीण', 'नितम्ब भार : चरण सुकुमार' आदि पदों में अन्त:तुकसाम्य स्पष्ट है। यह तुकसाम्य और 'क', 'व', 'र' आदि

अक्षरो की आवृत्ति से अन्त अनुप्रास सब मिलकर सगीतात्मक लयात्मक ध्वनि उत्पन्न कर देते है और प्रवाह को अबाध बनाते है।

निराला ने मुक्त छन्द के प्रयोग मे भी अनेक प्रयोग किये हैं। 'कुकुरमुत्ता' तथा 'नये पत्ते' आदि मे निराला ने जिस मुक्त छन्द का प्रयोग किया है, वह 'जुही की कली' के मुक्त छन्द से भिन्न है। 'कुकुरमुत्ता' मे तुकातता का भी कुछ आग्रह है।

निराला के कुछ गीतो, विशेषत 'परिमल' के दूसरे भाग के गीतो मे मुक्त गीत-रचना का भी स्तुत्य प्रयास पाया जाता है। ये मुक्तगीत मुक्त छन्द और 'गीतिका' आदि के स्वरतालबद्ध गीतो की मध्यकडी कहे जा सकते हैं। इनमे मात्रिक सगीत ही है यद्यपि इनकी पक्तियाँ विषम मात्रिक हैं। इनमे अत्यानुप्रास या तुकातता भी पाई जाती है।

निराला के मुक्त छन्द प्रयोग की एक बडी विशेषता यह है कि वह कोमल-परुष सभी प्रकार के भावो का सफल वाहक बना हुआ है। 'जुही की कली', 'शेफालिका,' 'सध्यासुन्दरी' आदि मे निराला के मुक्तछन्द का कोमल रूप दर्शनीय है, तो 'महाराज शिवाजी का पत्र', 'जागो फिर एक बार', 'बादल राग' जैसी कविताओ मे उसका परुष स्वरूप प्रकट हुआ है। वह व्यग्य का भी सफल वाहक रहा है और घृणा का भी।

हिन्दी मे मुक्त छन्द का प्रयोग प्रसाद, पत, रूद्र नारायण पाडेय आदि अनेक निराला के समकालीन कवियों ने किया। मुक्त छन्द के प्रयोग मे निराला की सफलता का बडा राज इस बात मे है कि मुक्त छन्द लिखने से भी अधिक उसे पढने मे निराला को कमाल हासिल था। कवि-सम्मेलनों मे उनके कठ से निकला 'बादल राग,' 'जुही की कली' आदि कविताओं का एक-एक छन्द भावो को ही मूर्त्त नही कर देता था, अपितु बडे बडे गलेबाज गायक-कवियो और शायरो को भी मात दे देता था। प्रवाहात्मक तथा लयात्मक मुक्त छन्द कविता की गेयात्मक विशेषता के स्थान पर पाठ्य विशिष्टता रखता है। यदि उचित स्वरपात का ध्यान रखकर इसे न पढा जाय तो सम्पूर्ण रचना गद्यवत् ही प्रतीत होती है। दूसरी बात यह कि इसके पढने की उपयोगिता भी तभी है जबकि पढने वाले को निराला-जैसी कुशलता, कठ की विशिष्टता तथा ऊर्जा प्राप्त हो। स्वय निराला ने स्वीकार किया है कि मुक्तछन्द वार्तालाप के उपयोग की वस्तु है, उसे कविता का एकमात्र 'फार्म' बना डालना सबसे बडी नादानी है। निराला के विचार उल्लेख्य हैं

हिन्दी में मुक्त काव्य कवित्त छन्द की बुनियाद पर सफल हो सका है। ·· इस अपने छन्द को मैं अनेक साहित्यिक गोष्ठियों म पढ चुका हूँ ·· इस छन्द मे आर्ट आफ रीडिंग का आनन्द मिलता है, और इसीलिए इसकी उपयोगिता रगमच पर सिद्ध होती है। कहीं कहीं मिल्टन और शेक्सपियर ने सवत्र अपने अतुकात काव्य का उपयोग नाटकों मे ही किया है। बगला मे माइकेल मधुसूदन द्वारा अतुकात कविता की सृष्टि हो जाने पर नाट्याचार्य गिरीश चन्द्र ने अपने स्वच्छन्द छन्द का नाटकों में

ही प्रयोग किया है। स्वच्छन्द छन्द नाटक-पात्रों की भाषा के लिए ही है, यों उसमें चाहे जो कुछ लिखा जाय।"

निराला के उपर्युक्त विचारों से उनके मुक्त छन्द का स्वरूप भी स्पष्ट हुआ होगा और उनकी तत्सम्बंधी धारणाएँ भी। उनके विचारों का विवेचन आवश्यक है :

१ निराला ने मुक्त छन्द को कविता की (और कवि की) मुक्ति बताया जो किसी हद तक सत्य है।

२. निराला के अनुसार उनका मुक्त छन्द बंधन मुक्त होता हुआ भी छन्द है, उसका कवित्त छन्द पर आधृत प्रवाह और लयात्मकता ही छन्द है। वह विषम अक्षर-मात्रिक स्वच्छन्द छन्द है।

३. इस छन्द की कला (सौन्दर्य) संगीत में नहीं, पढ़ने में है।

४. निराला ने छन्द के संगीतात्मक सौन्दर्य और आनन्द-जैसी ही आनन्द-प्राप्ति अपने मुक्त छन्द के पढ़ने और सुनने में मानी है। यद्यपि निराला का यह कथन उनका अतिवाद ही है, फिर भी इससे यह तो स्पष्ट है कि निराला को मात्रा बद्ध छन्द के संगीत-सौन्दर्य का महत्व स्वीकार्य है।

४. अपनी प्रतिभा से कवि नई-नई संगीतात्मक छन्द ध्वनियाँ प्रकट कर सकता है। बने-बनाये साँचों को ही सामने रखना अनिवार्य नहीं। वह स्वच्छन्दता से गुनगुना कर ध्वनियों के साम्य और आरोह आवरोह से स्वयं संगीतात्मक स्वर-लय प्रकट कर सकता है। ऐसी स्वर लहरी स्वतः ही कोई-न-कोई छन्द बन जाती है। कविता-अभ्यासी सिद्ध कवियों की अनुभूति स्वतः ही गुनगुनाते ही छन्दो मे उतरने लगती है। साधने पर छन्द ऐसे सध जाते हैं कि फिर कवि के इंगितो पर नाचने लगते हैं।

वर्तमान कवियो से हमारा अनुरोध है कि वे कविता मे लय की उपेक्षा न करें। कविता भी यदि गद्य बन गई—जैसाकि अब हो रहा है—तो कविता कहाँ बचेगी ! अत भिन्न भिन्न प्रयोग लयबद्ध छन्दो के निर्माण मे दिखाने चाहियें, न कि पक्तियो को छोटा बडा रखने या विराम चिह्नो के बेमतलब अटपटे प्रयोग करने में। हम अपनी छन्द परम्परा को यो मिट्टी मे न मिलायें तो अच्छा होगा। नियम-बंधन जाने दीजिए, पर गुनगुना कर यह तो देख लीजिए कि कविता मे स्वर लय-प्रवाह भी कोई है या नही। मुक्त छन्द लिखने का अधिकार भी निराला जैसे उसी कवि को है, जो छन्दों के अनुशासन से गुजरने की पूरी क्षमता रखता हो। हमे यह नहीं भूल जाना चाहिए कि मुक्त छन्द से भी कही अधिक महत्वपूर्ण उपलब्धि निराला द्वारा हिन्दी के कठिनतम छन्दो का सफलतम निर्वाह है।

२

निराला की भाषा-शैली

भाषा का स्वरूप

निराला से पूर्व खड़ी बोली काव्य अपने शैशवकाल मे था। काव्य के क्षेत्र में खड़ी बोली अभी अपनी भाव और अभिव्यंजनागत क्षमताए —लाक्षणिक शक्ति और नाद-सौन्दर्य आदि विकसित नही कर पाई थी। छायावाद के प्रवर्तक कवियो प्रसाद और पत के साथ निराला ने भी खड़ी बोली कविता की अभिव्यंजना शक्ति बढ़ाने मे अपूर्व योग प्रदान किया। निराला ने विशेष रूप से नव नव प्रयोगो द्वारा खड़ी बोली भाषा को काव्योपयोगी समृद्ध और शक्तिशाली बनाया। निराला ने दन्त्य वर्णों का अधिक प्रयोग किया है, तालव्य का कम।

भाषा के सम्बन्ध मे निराला जी 'पवित्रतावादी दृष्टिकोण' के हामी नहीं थे। कबीर की तरह उन्होने बड़ी स्वतन्त्रता के साथ विभिन्न भाषाओ से शब्दो का ग्रहण किया है। इस दृष्टि से वे अपने छायावादी सहयोगियो—प्रसाद, पत और महादेवी से सर्वथा भिन्न हैं। प्रसाद, पत और महादेवी मे भाषा का ऐसा मिश्रितरूप नही मिलता। उनकी भाषा शैली अपनी-अपनी सीमाओ मे बधी हुई है। निराला की काव्यभाषा अधिक विस्तृत और वैविध्यपूर्ण है। निराला की इस प्रयोग बहुल भाषा-शैली के कई रूप स्पष्ट लक्षित होते हैं। एक है सस्कृत बहुल सामासिक पदावली का। इसके भी दो स्तर हैं—एक शृगार रसादि कोमल भावरसों की व्यजना में प्रयुक्त कोमलकात माधुर्यव्यंजक सामासिक पदावली जैसे 'यमुना के प्रति' कविता में और दूसरा वीर रस की अभिव्यक्ति में प्रयुक्त ओजपूर्ण समास-बहुल पदावली, जैसे 'राम की शक्ति पूजा' की आरभिक पक्तिया। निराला की इस सामासिक शैली की कई विशेषताएँ हैं एक तो इसमे 'अर्थममित अति आखर थोरे' की विशेषता है। शाब्दिक मितव्ययिता और अर्थगौरव की दृष्टि से इसका महत्व है। दूसरी बात यह कि निराला ने समासबहुला पदावली से लयात्मक और नादसौन्दर्यपूर्ण सगीत की छटा उत्पन्न करने का सफल प्रयास किया है। निराला की इस सस्कृतनिष्ठ समास शैली में कुछ क्लिष्टता का दोष भी आ गया है। एक उदाहरण देखिए

गध व्याकुल कूल उरसर लहर कच, करकमल मुख पर।
हर्ष अलि हर स्पर्श शर, सर, गूँज बारम्बार।।

प्रथम पंक्ति में कवि ने हृदय रूपी सरोवर के कूल को मधु से व्याकुल बताया है पर 'उर-सर कूल' न लिखकर कूल-उर-सर लिखा है जो संस्कृत-पद्धति पर नहीं है, पर हिन्दी की दृष्टि से अर्थ की सही प्राप्ति करा रहा है। यहीं यह भी द्रष्टव्य है कि अर्थ प्राप्ति में कठिनाई क्लिष्ट शब्दों के प्रयोग से नहीं, अपितु निराला की संक्षेप संश्लेषण प्रवृत्ति के कारण उत्पन्न हो रही है।

निराला को लोगों ने कठिन काव्य का प्रेत तक कह डाला। उनके काव्य पर क्लिष्टता और दुरूहता का दोष लगाया जाता है। पर इस कथन में आंशिक सत्यता ही है। इसमें संदेह नहीं कि उनके काव्य में अनेक ऐसे स्थल हैं, जहाँ बहुत दिमागी कसरत के बावजूद भी स्पष्ट अर्थाप्ति नहीं हो पाती। इस आक्षेप का उत्तर देते हुए निराला ने कहा था कि "मैं तुसिद, ईजी डाइरेक्ट शब्द नहीं लिख पाता, डेरीवेटिव्ज ही बराबर प्रयुक्त करता हूँ"। उन्होंने तुलसीदास की 'विनयपत्रिका' का उदाहरण देकर अपनी सफाई इस प्रकार दी, "तुलसीदास की 'विनयपत्रिका' मास्टर पीस होते हुए भी जनप्रिय एवं सरल इसलिए है कि भाषा क्लिष्ट होते हुए भी भावों में बड़ी गंभीरता है, ······उच्च भावों की अभिव्यक्ति के लिए तदनुरूप भाषा भी होनी चाहिये।" इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि निराला सज्ञान रूप से कठिन भाषा का प्रयोग करते थे। सच तो यह है कि निराला को 'ग्रैंड स्टाइल' में लिखना ही पसन्द था। पद्य ही नहीं, गद्य का मजमून बाँधने में भी वे पन्ने के पन्ने खराब कर डालते थे। सोच-सोच कर परिष्कार और शक्ति के साथ कविता रचना ही उन्हें अभीष्ट था। इसी से उनकी 'तुलसीदास' जैसी रचनाओं में अपार अर्थ शक्ति से भरे परिष्कृत शब्द और 'ग्रैंड स्टाइल' के दर्शन होते हैं। पर जहाँ उन्होंने बहुत लम्बे लम्बे समास रखे हैं, वहाँ की भाषा निश्चय ही दुरूहता के दोष से पूर्ण है और उसका कोई औचित्य दिखाई नहीं देता, जैसे 'परलोक' कविता में 'शत-सहस्र-जीवन पुलकित प्लुतप्याला कर्पण' जैसी लम्बी सामासिक पदावली। निराला की सामासिक शैली में एक और दोष यह बताया जाता है कि वह संस्कृत समास वृत्ति की कई बार उपेक्षा करती प्रतीत होती है। वास्तव में निराला ने हिन्दी की दृष्टि से ही उसकी योजना की है।

निराला की काव्य भाषा का दूसरा रूप, इसके सर्वथा विपरीत, सरल और ठेठ हिन्दी भाषा के प्रयोग का है। निराला ने अपने परवर्ती काव्य में अनेक गीतों तथा 'अणिमा' आदि की हास्य व्यंग्यपूर्ण रचनाओं में इस ठेठ खड़ी बोली भाषा का सुन्दर प्रयोग किया है। इस शैली में भाषा की सरलता और सुबोधता के साथ मुहावरों लोकोक्तियों और सरल लाक्षणिक प्रयोगों का स्वाभाविक चमत्कार पाया जाता है। 'अणिमा' की कुछ रचनाएँ 'कुकुरमुत्ता' के अनेक अंश तथा 'नये पत्ते' की अधिकांश रचनाओं में बोलचाल की व्यंग्यपूर्ण व्यंजक भाषा के दर्शन होते हैं। निराला की यथार्थवादी रचनाओं में लोक भाषा का यह रूप विषयानुरूप समीचीन ही है। इसके भी दो भेद स्पष्ट हैं—एक ठेठ हिन्दी का ठाठ दूसरा सरल हिन्दी और सरल उर्दू के

मिश्रित प्रयोग था। बोल चाल के उर्दू शब्दों से मिश्रित हिन्दी के इस रूप में न तो फ़ारसी के और न संस्कृत के ही कठिन शब्दों को स्थान मिला है। हिन्दी-उर्दू का यह मेल आज की बड़ी आवश्यकता है। हिन्दी उर्दू के इस मिश्रण की उपादेयता को निराला ने भली भाँति समझा था।

निराला की 'परिमल' काल की अनेक स्वच्छन्द रचनाओं तथा 'गीतिका' और 'अचना' आदि गीत-संग्रहों के अनेक गीतों मे निराला की भाषा का तीसरा स्वाभाविक रूप वह मिलता है जो संस्कृत के प्रचलित शब्दों से परिष्कृत एवं सुसंस्कृत साहित्यिक हिन्दी का रूप है। यद्यपि संस्कृत हिन्दी के इस समन्वय में भी प्रयोग की विविधता है। कहीं संस्कृत शब्द हिन्दी शब्दों से अधिक हैं, कहीं कम, तथापि सामंजस्य या समाहार सर्वत्र परिलक्षित होता है। आरंभिक रचनाओं ('परिमल' और 'गीतिका') में संस्कृत की तत्सम शब्दावली का अपेक्षाकृत अधिक प्रयोग हुआ था, पर परवर्ती गीतों में तद्‌भव और देशज शब्दावली का आधिक्य है। निराला की प्रतिनिधि भाषा यही है।

'बेला' काव्य-संग्रह में निराला की भाषा का चौथा रूप दिखाई देता है जो प्रयोगात्मक ही कहा जा सकता है। इस संग्रह की कई रचनाओं में हिन्दी-उर्दू-संस्कृत-फारसी के मिश्रण की प्रवृत्ति पाई जाती है। संस्कृत फारसी का अटपटा मेल अस्वाभाविक ही प्रतीत होता है। न तो लोक परम्परा में और न ही काव्य परम्परा में यह मिश्रण कभी-कहीं मान्य और प्रचलित हुआ है।

प्रश्न है कि निराला की उपर्युक्त वैविध्यपूर्ण भाषा शैलियों में से निराला की प्रतिनिधि मूल भाषा कौन सी है? उत्तर है कि निराला की प्रतिनिधि भाषा-शैली का रूप न तो उनके उर्दू शैली के प्रयोग बहुल काव्य में है, न 'तुलसीदास' या 'राम की शक्ति पूजा' की अलंकृत अतिशय गंभीर संस्कृतगर्भा या समासबहुला पदावली में ही निराला की मूल भाषा मानी जा सकती है। वस्तुतः उपर्युक्त तीसरा रूप अर्थात् संस्कृत हिन्दी के समन्वय से युक्त स्वाभाविक भाषा ही निराला की प्रतिनिधि भाषा है। निराला काव्य में मुख्यतः इसी समरस भाषा का प्रयोग हुआ है। उनके लगभग ४०० गीतों तथा 'परिमल', 'अनामिका' के अनेक मुक्त छंद तथा छन्दोबद्ध प्रगीतों में निराला की संस्कृत तत्सम शब्दावली से समन्वित परिनिष्ठित हिन्दी भाषा का रूप ही पाया जाता है। यही उनकी काव्य भाषा का प्रकृत प्रतिनिधि रूप है। इसमें संस्कृत के तत्सम शब्द कहीं ज्यादा कहीं कम अवश्य हैं, पर सामान्यतः सर्वत्र समरसता और सामंजस्य है, अप्रचलित और बेमेल संस्कृत शब्दों का प्रायः अभाव है।

निराला ने अपनी परवर्ती रचनाओं में अंग्रेजी शब्दों का भी प्रयोग किया है। 'कुकुरमुत्ता' में अंग्रेजी शब्दों का विशेष रूप से खुलकर प्रयोग हुआ है। कैपिटलिस्ट, कास्मोपालिटन, मेट्रोपालिटन, ग्राड, कैपिटल आदि अनेक शब्द प्रयुक्त हैं।

मुहावरेदार सरल भाषा

निराला की भाषा में विशेषतः उनकी ...

प्रथम पंक्ति मे कवि ने हृदय रूपी सरोवर के कूल को गंध से व्याकुल बताया है पर 'उर सर कूल' न लिखकर कूल-उर-सर लिखा है जो संस्कृत-पद्धति पर नहीं है, पर हिन्दी की दृष्टि से अर्थ की सही प्राप्ति करा रहा है। यही यह भी द्रष्टव्य है कि अर्थ प्राप्ति मे कठिनाई क्लिष्ट शब्दो के प्रयोग से नही, अपितु निराला की संक्षेप सश्लेषण प्रवृत्ति के कारण उत्पन्न हो रही है।

निराला को लोगो ने कठिन काव्य का प्रेत तक कह डाला! उनके काव्य पर क्लिष्टता और दुरूहता का दोष लगाया जाता है। पर इस कथन मे आंशिक सत्यता ही है। इसमे सदेह नही कि उनके काव्य मे अनेक ऐसे स्थल हैं, जहाँ बहुत दिमागी कसरत के बावजूद भी स्पष्ट अर्थाप्ति नही हो पाती। इस आक्षेप का उत्तर देते हुए निराला ने कहा था कि "मैं सुसिड, ईजी डाइरेक्ट शब्द नही लिख पाता, डेरीवेटिव्स ही बराबर प्रयुक्त करता हूँ'। उन्होंने तुलसीदास की 'विनयपत्रिका' का उदाहरण देकर अपनी सफाई इस प्रकार दी, 'तुलसीदास की 'विनयपत्रिका' मास्टर पीस होते हुए भी जनप्रिय एव सरल इसलिए है कि भाषा क्लिष्ट होते हुए भी भावो मे बडी गभीरता है, ··· ··उच्च भावो की अभिव्यक्ति के लिए तदनुरूप भाषा भी होनी चाहिये।" इन पंक्तियो से स्पष्ट है कि निराला सज्ञान रूप से कठिन भाषा का प्रयोग करते थे। सच तो यह है कि निराला को 'ग्रैंड स्टाइल' मे लिखना ही पसन्द था। पद्य ही नही, गद्य का मजमून बाँधने मे भी वे पन्ने के पन्ने खराब कर डालते थे। सोच-सोच कर परिष्कार और शक्ति के साथ कविता रचना ही उन्हें अभीष्ट था। इसी से उनकी 'तुलसीदास' जैसी रचनाओं में अपार अर्थ शक्ति से भरे परिष्कृत शब्द और 'ग्रैंड स्टाइल' के दर्शन होते हैं। पर जहाँ उन्होने बहुत लम्बे लम्बे समास रखे है, वहाँ की भाषा निश्चय ही दुरूहता के दोष से पूर्ण है और उसका कोई औचित्य दिखाई नही देता, जैसे परलोक' कविता मे 'शत-सहस्र-जीवन पुलकित प्लुतप्याला कपण' जैसी लम्बी सामासिक पदावली। निराला की सामासिक शैली मे एक और दोष यह बताया जाता है कि वह संस्कृत समास वृत्ति की कई बार उपेक्षा करती प्रतीत होती है। वास्तव मे निराला ने हिन्दी की दृष्टि से ही उसकी योजना की है।

निराला की काव्य भाषा का दूसरा रूप, इसके सर्वथा विपरीत, सरल और ठेठ हिन्दी भाषा के प्रयोग का है। निराला ने अपने परवर्ती काव्य मे अनेक गीतो तथा 'अणिमा' आदि की हास्य व्यंग्यपूर्ण रचनाओ मे इस ठेठ खडी बोली भाषा का सुन्दर प्रयोग किया है। इस शैली मे भाषा की सरलता और सुबोधता के साथ मुहावरो लोकोक्तियो और सरल लाक्षणिक प्रयोगो का स्वाभाविक चमत्कार पाया जाता है। 'अणिमा' की कुछ रचनाएँ 'कुकुरमुत्ता' के अनेक अश तथा 'नये पत्ते' की अधिकाश रचनाओ मे बोलचाल की व्यग्यपूर्ण व्यजक भाषा के दर्शन होते हैं। निराला की यथार्थवादी रचनाओ मे लोक भाषा का यह रूप विषयानुरूप समीचीन ही है। इसके भी दो भेद स्पष्ट हैं—एक ठेठ हिन्दी का ठाठ दूसरा सरल हिन्दी और सरल उर्दू के

मिश्रित प्रयोग का । बोल-चाल के उर्दू शब्दो से मिश्रित हिन्दी के इस रूप मे न तो फारसी के और न सस्कृत के ही कठिन शब्दो को स्थान मिला है । हिन्दी-उर्दू का यह मेल आज की बडी आवश्यकता है । हिन्दी-उर्दू के इस मिश्रण की उपादेयता को निराला ने भली-भाँति समझा था ।

निराला की 'परिमल' काल की अनेक स्वच्छन्द रचनाओ तथा 'गीतिका' और 'अर्चना' आदि गीत-सग्रहो के अनेक गीतो मे निराला की भाषा का तीसरा स्वाभाविक रूप वह मिलता है जो सस्कृत के प्रचलित शब्दो से परिष्कृत एव सुसस्कृत साहित्यिक हिन्दी का रूप है । यद्यपि सस्कृत हिन्दी के इस समन्वय मे भी प्रयोग की विविधता है : कही सस्कृत शब्द हिन्दी शब्दो से अधिक हैं, कही कम, तथापि सामजस्य या समाहार सर्वत्र परिलक्षित होता है । आरभिक रचनाओं ('परिमल' और 'गीतिका') मे सस्कृत की तत्सम शब्दावली का अपेक्षाकृत अधिक प्रयोग हुआ था, पर परवर्ती गीतों मे तद्भव और देशज शब्दावली का आधिक्य है । निराला की प्रतिनिधि भाषा यही है ।

'बेला' काव्य-सग्रह मे निराला की भाषा का चौथा रूप दिखाई देता है जो प्रयोगात्मक ही कहा जा सकता है । इस सग्रह की कई रचनाओ मे हिन्दी उर्दू-सस्कृत-फारसी के मिश्रण की प्रवृत्ति पाई जाती है । सस्कृत फारसी का अटपटा मेल अस्वाभाविक ही प्रतीत होता है । न तो लोक परम्परा मे और न ही काव्य परम्परा में यह मिश्रण कभी-कही मान्य और प्रचलित हुआ है ।

प्रश्न है कि निराला की उपर्युक्त वैविध्यपूर्ण भाषा शैलियो मे से निराला की प्रतिनिधि मूल भाषा कौन सी है ? उत्तर है कि निराला की प्रतिनिधि भाषा शैली का रूप न तो उनके उर्दू शैली के प्रयोग बहुल काव्य मे है, न 'तुलसीदास' या 'राम की शक्ति पूजा' की अलकृत अतिशय गभीर सस्कृतगर्भा या समासबहुला पदावली मे ही निराला की मूल भाषा मानी जा सकती है । वस्तुत उपर्युक्त तीसरा रूप अर्थात् सस्कृत-हिन्दी के समन्वय से युक्त स्वाभाविक भाषा ही निराला की प्रतिनिधि भाषा है । निराला काव्य मे मुख्यत इसी समरस भाषा का प्रयोग हुआ है । उनके लगभग ४०० गीतो तथा 'परिमल', 'अनामिका' के अनेक मुक्त छन्द तथा छन्दोबद्ध प्रगीतों मे निराला की सस्कृत तत्सम शब्दावली से समन्वित परिनिष्ठित हिन्दी भाषा का रूप ही पाया जाता है । यही उनकी काव्य भाषा का प्रकृत प्रतिनिधि रूप है । इसमे सस्कृत के तत्सम शब्द कही ज्यादा कही कम अवश्य है, पर सामान्यत सर्वत्र समरसता और सामजस्य है, अप्रचलित और बेमेल सस्कृत शब्दो का प्राय अभाव है ।

निराला ने अपनी परवर्ती रचनाओ मे अग्रेजी शब्दो का भी प्रयोग किया है । 'कुकुरमुत्ता' मे अग्रेजी शब्दो का विशेष रूप से खुलकर प्रयोग हुआ है कैपिटलिस्ट, कास्मोपालिटन, मेट्रोपालिटन, फाड, कैपिटल आदि अनेक शब्द प्रयुक्त हैं ।

मुहावरेदार सरल भाषा

निराला की भाषा मे विशेषत उनकी समासरहित प्रतिनिधि भाषा तथा

बोलचाल की सरल भाषा में मुहावरों का भी यथास्थान प्रयोग हुआ है : 'साप आस्तीन का', 'ईंट का जवाब हमें पत्थर से देना है', 'फूलों की सेज पर सोये हो', 'दूसरे भी मलते हैं हाथ' (शिवाजी का पत्र—परिमल), 'उगली के पोरों में दिन गिनता ही जाऊँ क्या माँ' आदि पंक्तियों में प्रचलित मुहावरों का सहज प्रयोग हुआ है।

हिन्दी मुहावरों से युक्त निराला जी की सरल समासरहित भाषा का एक नमूना देखिए :

सुख का दिन डूबे डूब जाय
तुमसे न सहज मन ऊब जाय।
खुल जाय न मिली गांठ मन की,
लुट जाय न उठी राशि धन की,
धुल जाय न आन शुभानन की,
सारा जग रूठे रूठ जाय।
उलटी गति सीधी हो न भले,
प्रतिजन की दाल गले न गले,
टाले न बान यह कभी टले,
यह जान जाय तो खूब जाय।

इन पंक्तियों में हिन्दी का अपना सौन्दर्य है। दिन डूबना, गाठ खुलना, आन धुल जाना, गति सीधी होना, दाल गलना आदि मुहावरों की भरमार है। संस्कृत के 'शुभानन' आदि एक दो विरल शब्द ही तत्सम रूप में प्रयुक्त हुए हैं। यहाँ सरल हिन्दी का अत्यन्त स्वाभाविक प्रयोग हुआ है। निराला की संस्कृत तत्समन्यूना भाषा का ऐसा रूप उनकी 'भिक्षुक', 'खुला आसमान' जैसी कविताओं में भी दिखाई देता है। यहाँ मुहावरों की छटा तो है, पर निराला के शब्द-प्रयोग की एक सामान्य त्रुटि यहाँ भी स्पष्ट लक्षित हो रही है वह है अर्थ असंगत शब्दों का प्रयोग। उपर्युक्त पंक्तियों में 'मिली' (मिली गाठ मन की), 'उठी' (उठी राशि), धुल जय (आन धुल जाय), 'खूब' (जान खूब जाय) शब्दों की सार्थकता संदिग्ध ही है। गाठ मिली के स्थान पर गाठ बधी ही उचित प्रयोग होता। इसी प्रकार आन धुल जाना और धन-राशि उठना असगत प्रयोग हैं। 'जान खूब जाय' भी चिन्त्य है।

निराला के दीर्घ प्रगीतों में भी भाषा का एक रूप नहीं है। 'यमुना के प्रति', 'सहस्राब्दि', 'देवी सरस्वती' आदि की भाषा गीतों की भाषा जैसी संस्कृत तत्सम समन्वित ही है, पर 'शिवा जी का पत्र, 'सेवा प्रारंभ' आदि मुक्त छन्द दीर्घ प्रगीतों में अपेक्षाकृत सरल भाषा का प्रयोग हुआ है। 'तुलसीदास' और 'राम की शक्तिपूजा' नामक आख्यानक काव्यों की भाषा अधिक प्रयत्न-साध्य और अलकृत गभीर भाषा है। निराला की समास शैली में क्रिया पदों और विभक्ति चिह्नों की कमी के कारण

दुरूहता और अस्पष्टता आ गई है। निराला की प्रवृत्ति स`पण-संश्लेषण की थी इसी से उन्होंने लम्बे-लम्बे समास और लम्बे सन्धियुक्त पदों का अपनी समास शैली में बहुत प्रयोग किया है। जगज्जीवनमृत, विद्याध्ययनान्तर, शतदेलसवरणशील जैसे लम्बे सन्धियुक्त पद उनकी समास शैली को दुरूह बनाते हैं।

कहीं-कहीं मनमाने प्रयोग त्रुटिपूर्ण हैं, जैसे 'हर्ष-अलि हर स्पर्श-शर'। कवि ने स्वयं इसका अर्थ समझाते हुए कहा है कि आनन्द रूपी भौंरा स्पर्श का चुभा तीर हर रहा है। कवि ने कहा है कि तीर के निकालने से भी एक प्रकार का सुखद स्पर्श होता है। आचार्य शुक्ल ने ठीक ही लिखा था कि कवि ने यह अर्थ पदावली से जबरदस्ती निकाला है।

कहीं-कहीं साभिप्राय शब्दों और विशेषण-पदों के मार्मिक प्रयोग ने भी निराला की भाषा को प्रभावी बनाया है : एक उदाहरण देखिए :

धन्ये, मैं पिता निरर्थक था,
कुछ भी तेरे हित न कर सका। —सरोज स्मृति

यहाँ 'निरर्थक' शब्द एक तरह का श्लिष्ट शब्द बन गया है। इससे पिता रूप में निराला की निरर्थकता के सामान्य बोध के साथ-साथ आर्थिक दृष्टि से अर्थहीनता का भी बोध हो रहा है। कहीं सानुप्रासिक विशेषणों का प्रयोग सौन्दर्य लाता है, जैसे 'सुरभि-समीर', 'मुग्धमौनमय' आदि।

ध्वन्यर्थ व्यंजक शब्दों का प्रयोग भी निराला की भाषा-शैली में विशेषता उत्पन्न करता है। 'बादल राग' की प्रारम्भिक पंक्तियाँ—'झर, झरझर निर्झर-गिरि सर में'—आदि तथा 'शरद पूर्णिमा की विदाई' (परिमल) की 'कल कल कुल कुल कल कल टलमल टलमल' आदि पंक्तियाँ इसका सुन्दर उदाहरण हैं।

निराला की भाषा शैली उनके व्यक्तित्व की पूर्ण परिचायक है। उनके स्वच्छन्द और विद्रोही व्यक्तित्व के अनुरूप उनकी स्वच्छन्द ओजपूर्ण परुष शैली के दर्शन 'बादल राग', 'जागो फिर एक बार', 'एक बार बस और नाच तू श्यामा' जैसी कविताओं में होते हैं। वीरता, क्षोभ, घृणा आदि उग्र भावों की व्यंजना में ओजपूर्ण भाषा का प्रयोग हुआ है।

भावानुरूप भाषा शैली की योजना में निराला बहुत कुशल थे। शृंगार, प्रकृति-सौन्दर्यांकन, करुणा, भक्ति, विनय-वंदना आदि कोमल भावों की व्यंजना में निराला ने माधुर्यपूर्ण मदिर शैली का प्रयोग किया है। 'जुही की कली', 'सन्ध्या सुन्दरी' आदि कविताओं में माधुर्य गुण पाया जाता है। प्रसाद गुण का प्रसार निराला की कविताओं में प्रायः सर्वत्र पाया जाता है (दो चार अपवाद हो सकते हैं)।

पाण्डित्यपूर्ण सायास सामासिक शैली का प्रयोग निराला ने 'तुलसीदास' तथा 'राम की शक्तिपूजा' में किया है। निराला की इस शैली को उदात्त शैली भी कहा जाता है। इसमें महाकाव्योचित गांभीर्य रहता है। इस शैली में निराला ने विराट् चित्र प्रस्तुत किये हैं।

जीवन की विषमताओ के प्रति व्यंग्य और उपहास की द्योतक निराला की व्यंग्य शैली के दर्शन 'कुकुरमुत्ता', 'नये पत्ते', 'बेला', 'अणिमा' आदि के यथार्थ सामाजिक चित्रण मे होते हैं। इसके उदाहरण हम पीछे इन रचनाओ के विवेचन मे दे चुके हैं। यहाँ दोहराना व्यर्थ है। निराला की व्यंग्य शैली बडी सशक्त है। 'दान' कविता (अनामिका) की अंतिम पंक्तियो मे जो फटकार है, जो तिलमिला देने वाला व्यंग्य है, वह निराला को एक कुशल व्यंग्यकार सिद्ध करता है। इस व्यंग्य शैली के भी कई रूप हैं : कही निराला हल्का हास्य प्रकट करते हैं, कही तीखे व्यंग्य।

इस प्रकार काव्य वस्तु और भाव-रस के अनुरूप भाषा-शैली का प्रयोग करने की निराला मे अपूर्व क्षमता थी। विविध शैलियों का ऐसा सफल प्रयोक्ता हिन्दी मे दूसरा नही,

चित्रात्मक लाक्षणिक प्रयोगों से भी निराला ने अपनी भाषा शैली को सशक्त बनाया है। कुछ उदाहरण देखिए. 'देखा मुझे उस दृष्टि से जो मार खा रोई नही' (तोडती पत्थर), 'नयनो का नयनो से बधन', 'स्पर्श से लाज लगी', 'पके आधे बाल मेरे' आदि।

बिम्ब विधान और भाषा की चित्र-शक्ति

निराला काव्य का एक बडा अश वस्तु चित्रण-से सम्बधित है। उन्होने प्रकृति, नारी आदि के अनेक सौन्दर्य चित्र प्रस्तुत किये है। निराला का यह वस्तु-चित्रण अधिकतर भाषा की अभिधा शक्ति पर आधृत है। 'जुही की कली', 'सध्या सुन्दरी' आदि मे प्रकृति के सुन्दर चित्र निराला की चित्र-शक्ति के ही परिचायक हैं। आकाश से उतरती हुई सध्या का गत्यात्मक चित्र कितना भव्य है :

दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही
वह सध्या सुन्दरी परी-सी
धीरे धीरे धीरे,

'जुही की कली' मे उपवन-सर सरिताओ, गिरि-काननो को तीव्र गति से पार कर आने वाले मारत-नायक का एक गत्यात्मक चित्र और देखिए, ऐसा लगता है, नायक की गति के साथ शब्द भी वेगवान् हैं

उपवन-सर-सरित् गहन गिरि कानन
कुंजलता पुंजों को पार कर
पहुँचा जहाँ उसने की केलि
कली खिली साथ

भारत माता का सक्षिप्त चित्र निम्न पंक्तियो मे देखिए :

तरु तृण वन लता वसन
अचल मे खचित सुमन

गगा ज्योतिर्जलकण
धवल धार, हार गले।

अभिधात्मक शब्द-चित्रों के साथ साथ निराला कहीं-कहीं चित्रात्मक सादृश्यमूल अलकारों का सुन्दर प्रयोग करके भी चित्रो मे रग भर देते है। 'यामिनी जागी' कविता की निम्न पक्तिया देखिए :

खुले केश अशेष शोभा दे रहे,
पृष्ठ ग्रीवा बाहु उर पर तर रहे,
बादलों में घिर अपर दिनकर रहे
ज्योति की तन्वी तडित द्युति ने क्षमा मांगी।

अंतिम दोनो पक्तियो मे सदृश उपमान-विधान से सौन्दर्य-चित्र भव्य बन गया है। निराला के बिम्ब विधान और उनकी चित्र-शक्ति को हमने आगे अलकार योजना के प्रकरण मे भी स्पष्ट किया है।

: ४ :

प्रतीक-विधान

निराला-काव्य व्यंजनापूर्ण है। छायावादी-रहस्यवादी कवियो ने प्रतीको के प्रयोग द्वारा भी अपनी अनुभूतियो को प्रकट किया है। निराला के काव्य मे अनेक स्थलो पर अर्थ की दो धाराएँ—प्रस्तुत और अप्रस्तुत—पाई जाती हैं और उनमे कई बार अप्रस्तुत प्रतीकार्थ प्रतीत होता है। उदाहरण के लिए 'कण', 'बादल', 'कुकुरमुत्ता' प्रतीकात्मक अर्थ लिए हुए हैं : कण दलित वर्ग का, बादल क्रांति का और कुकुरमुत्ता निम्न वर्ग का प्रतीक है। परन्तु निराला के ये प्रतीक प्रयोग सटीक प्रतीक नही कहे जा सकते। अनेक कविताओं मे दुहरे अर्थ की इस व्यजना को शुद्ध प्रतीक नही कहा जा सकता। ऐसी कविताएँ अन्योक्ति या समासोक्ति-पद्धति की ही मानी जा सकती हैं। विशुद्ध प्रतीक वहा होता है, जहाँ विशिष्ट रूप मे कोई शब्द सादृश्य और साधर्म्य के स्थान पर प्रभाव-साम्य के आधार पर प्रस्तुत का स्थान ले ले और उसके वाच्य अर्थ का महत्त्व न रहे। जैसे कबीर ने सिंह को माया का प्रतीक बनाया है। निराला की 'जुही की कली', 'बादल राग' आदि अन्य अनेक कविताओ मे भी दोहरे अर्थों की व्यजना परिनिष्ठत प्रतीको के प्रयोग रूप में नहीं, अपितु समासोक्ति या अन्योक्ति के रूप में हुई है।

निराला के कई गीतो और प्रगीतो मे दो से भी अधिक अर्थों की व्यजना हुई है, पर वहाँ भी प्रतीक-योजना शायद ही मानी जाय। उदाहरण के लिए उनके प्रसिद्ध गीत 'रूखी री यह डाल, वसन वासन्ती लेगी' को लीजिए :

रूखी री यह डाल, वसन वासन्ती लेगी।
देख, खड़ी करती तप अपलक,
हीरक सी समीर माला जप,
शैलसुता, अपर्ण अशना
पल्लव वसना बनेगी—
वसन-वासन्ती लेगी।
हार गले पहना फूलों का,

ऋतुपति सकल सुकृत कूलों का
स्नेह सरस भर देगा उर सर,
स्मरहर को वरेगी—
वसन वासन्ती लेगी।

इस कविता से अनेक अर्थों की व्यंजना हो रही है–मुख्यार्थ तो एक सूखी डाल के वसन्तागम पर हरी-भरी होने से सम्बंधित है। पर कवि की प्रतिभा ने इस मूल अर्थ के सम्पूर्ण निर्वाह के साथ दूसरा अर्थ पार्वती के तप और शिव-वरण से सम्बद्ध कर दिया है। यही नहीं, किसी व्यक्ति, समाज या युग के नैराश्य को भावी आशा में बदलने का उत्साहप्रद गीत भी यह खूब बना हुआ है। इस प्रकार यह कविता अनेकार्थ व्यंजनापूर्ण है। पर इसे प्रतीकात्मक कविता भले ही कह लें, विशेष विशेष प्रतीकों की योजना इसमें कोई नहीं है। इस प्रकार निराला काव्य में विशिष्ट प्रतीकों की योजना अति स्वल्प है। अप्रस्तुत शब्द अपने मूल अर्थों को त्यागे बिना प्रतीकात्मकता की ओर उन्मुख अवश्य है, पर उन्हें परिनिष्ठित प्रतीक शायद ही कहा जा सके।

फिर भी कहीं-कहीं निराला के प्रतीक भावात्मक संवेदना को तीव्र करने में पर्याप्त सहायक हुए हैं। चित्रात्मकता भी प्रतीकों का गुण होता है, पर निराला के प्रतीक चित्रात्मकता की अपेक्षा भाव संवेदन ही उत्पन्न करते हैं। निराला ने प्रतीकों को अपनी दार्शनिक रहस्यात्मक अभिव्यक्ति में भी सहायक बनाया है और समाज पर व्यंग्य प्रहार करने के लिए भी उनका उपयोग किया है निराला की 'जुही की कली' तथा 'शेफालिका' जैसी प्रसिद्ध रचनाओं में भी आलोचकों ने प्रतीकार्थ ढूंढ निकाले हैं। स्वयं निराला ने भी इनकी प्रतीकात्मकता को स्वीकार किया है। जुही की कली की सुप्तावस्था मायापाश में बंधी आत्मा की सुषुप्तावस्था की प्रतीक मानी जाती है और अपने प्रिय मलय (परमात्मा) से मिलन के पश्चात् उसकी जागृति की अवस्था बताई जाती है। इसी प्रकार 'शेफालिका' में शेफालिका आत्मा का, उसके कंचुकीबद्ध उसकी मायाबद्ध दशा के तथा शिशिर के बिन्दु-चुम्बन परमात्मा के चुम्बन स्पर्श के प्रतीक माने जाते हैं। परन्तु हम समझते है कि अव्वल तो यह अलौकिक अर्थ सिद्धि खींच तान ही है, दूसरे यदि यह दुहरा अर्थ मान भी लिया जाय तो ऐसी कविताओं को अन्योक्ति या समासोक्ति शैली की प्रतीकात्मक कवितायें ही कहा जा सकता है, परिनिष्ठित प्रतीक विधान नहीं माना जा सकता।

'प्रपात के प्रति' कविता में निराला जी ने प्रपात को गतिशील चेतन का तथा पर्वत को जड़ अचेतन का प्रतीक बनाया है, जो बहुत सुन्दर है

समझ जाते हो उस जड़ का सारा ज्ञान
फूट पड़ती है ओठों पर तब मृदु मुस्कान।

कुछ विद्वानों ने निराला की रूपक कल्पना को भी प्रतीक विधान समझ लिया

है। 'राम की शक्ति पूजा' की निम्न पंक्तियों में पर्वत को शक्ति का प्रतीक और गरजते सागर को सिंह-गर्जन का प्रतीक मान लिया गया है

देखो बंधुवर, सामने स्थित जो यह भूधर
पार्वती कल्पना है इसकी मकरन्द बिन्दु
गरजता चरण प्रान्त पर सिंह वह नहीं सिंधु।

कहने की आवश्यकता नहीं कि यहाँ प्रतीक योजना के स्थान पर रूपक कल्पना है और अंतिम पंक्ति में तो अपह्नुति अलंकार भी स्पष्ट है। इस प्रकार यदि सभी अप्रस्तुत विधान को प्रतीक-विधान कहने लगेंगे तो समीक्षा की सूक्ष्मता कहाँ रहेगी?

निराला ने अधिकतर प्राकृतिक प्रतीकों का अपनाया है। उपवन जीवन का, घन अंधकार दुःख और निराशा का, यौवन के लिये वसंत, वृद्धावस्था के लिए संध्या-वेला और ठूंठ, प्रात आशा और सुख का, पराग जीवनानन्द का आदि प्राकृतिक प्रतीक निराला की कई कविताओं में मिलते हैं। एक दो उदाहरण देखिए

अभी न होगा मेरा अन्त।
अभी-अभी ही तो आया है
मेरे वन में मृदुल वसंत। —परिमल

यहाँ वन जीवन का और वसंत यौवन का प्रतीक है। निम्न पंक्तियों में दिवस जीवन का सन्ध्यावेला वृद्धावस्था का प्रतीक है

मैं अकेला, देखता हूँ आ रही
मेरे दिवस कीसांध्य बेला —अपरा

इसी प्रकार 'गीतिका' की निम्न पंक्तियों में परा", शून्यडाल, अन्धरात और प्रात प्रतीकात्मक प्रयोग हैं.

गये सब पराग, नहीं ज्ञात;
शून्य डाल, रही अब रात,
आयेगा फिर क्या वह प्रात। —गीतिका

उपर्युक्त प्राकृतिक प्रतीकों के अतिरिक्त निराला काव्य में कहीं-कहीं सांस्कृतिक क्षेत्र से अपनाये गये प्रतीक भी दृष्टिगोचर होते हैं, जैसे निम्न पंक्तियों में जीवन की चहल-पहल के लिए मेला शब्द प्रतीक रूप में प्रयुक्त हुआ है

पके आधे बाल मेरे
हुए निष्प्रभ गाल मेरे
चाल मेरी मंद होती आ रही,
हट रहा मेला।

इस प्रकार निराला काव्य में मूर्त्त प्रतीकों की योजना भावाभिव्यंजना में सहायक सिद्ध हुई है। चाहे परिनिष्ठित रूप में प्रतीकों का प्रयोग निराला ने अन्य छायावादी कवियों—प्रसाद, पंत महादेवी की अपेक्षा कम किया है तथापि प्रतीकात्मक

शैली का उनमे प्राचुर्य पाया जाता है। सच तो यह है कि निराला-काव्य म प्रतीक, रूपक, अन्योक्ति-समासोक्ति का ऐसा सश्लिष्ट प्रयाग है कि बहुत बार प्रत्येक को पृथक् पृथक् करना कठिन हो जाता है। निम्न पक्तियो म आध्यात्मिक मिलन का चित्र है। निशि-अज्ञान दशा की प्रतीक है और मधु ऋतु मधुमय मिलन की। यह प्रतीक भी रूपक के सहारे से ही अपना सश्लिष्ट प्रभाव उत्पन्न कर रहा है

अनगिनत आ गये शरण मे जन, जननी,
सुरभि सुमनावली खुली, मधु ऋतु अवनि।
स्नेह से पक-उर हुए पकज मधुर,
ऊर्ध्व दृग गगन में देखते मुक्ति मणि !
बीत रे गई निशि, देश लख हँसी दिशि,
अखिल के कठ की उठी आनन्द ध्वनि।

: ५ :

अलंकार-विधान

अलंकार-विधान और बिम्ब-शक्ति—निराला की कवि-प्रतिभा समृद्ध कल्पना शक्ति से सम्पन्न थी। पर उन्होंने अपनी कल्पना-शक्ति का सदुपयोग भावसंवेदनाओं को प्रभावी बनाने में ही किया, केवल सौन्दर्य-चित्र प्रस्तुत करने में नहीं। पंत की कल्पना-सृष्टि सौन्दर्योन्मीलन की ओर झुकी रही जबकि निराला की कल्पना-शक्ति सौन्दर्योन्मीलन की अपेक्षा भाव-संवेदनाओं में स्फुरण उत्पन्न करने की ओर अधिक सजग रही है।

निराला की अप्रस्तुत-योजना बड़ी ही अनूठी है। उन्होंने परम्परागत तथा नवीन उपमानों से अपने काव्य में रूपकों की भव्य सृष्टि की। निराला ने प्रकृति के क्षेत्र से सुन्दर उपमान चुने हैं। रूपकातिशयोक्ति का एक उदाहरण देखिए :

वह कली सदा को चली गई दुनिया से
पर सौरभ से है पूरित आज दिगन्त। (उसकी स्मृति)

निराला की कल्पना विराट चित्रों की उद्भावना करने में बहुत सक्षम है। 'बादल राग', 'राम की शक्ति-पूजा' आदि अनेक रचनाओं में निराला ने अपनी विराट कल्पना का अद्भुत परिचय दिया है। प्रकृति और भावों का रूपक बाँधते या मानवीकरण करते हुए निराला ऐसा संश्लिष्ट चित्र प्रस्तुत करते हैं कि वस्तु-चित्र भी भाव-चित्र बन जाता है। एक उदाहरण देखिये :

जटिल जीवन नद में तिर तिर
डूब जाती हो तुम चुपचाप
सतत द्रुतगतिमयी अयि फिर फिर
उमड़ करती हो प्रेमालाप
सुप्त मेरे अतीत के गान
सुना प्रिय हर लेती हो ध्यान। —'स्मृति'

इस कविता में 'स्मृति' को नदी का संश्लिष्ट रूपक प्रदान किया गया है। पर संश्लिष्ट चित्र केवल अप्रस्तुत विधान या रूपक आदि अलंकारों द्वारा ही निर्मित नहीं होते, अपितु निराला की बिम्ब-विधान-शक्ति का परिणाम हैं। वर्ण्य-वस्तु को बिम्बात्मक सचित्र रूप प्रदान करने में निराला बहुत पटु हैं। उनकी 'विधवा,'

भिक्षुक' 'संध्यासुन्दरी,' आदि कविताएं बिम्बों से पूर्ण हैं। 'भिक्षुक' का यह चित्र देखिए

पेट पीठ दोनों मिलकर हैं एक,
चल रहा लकुटिया टेक,
मुट्ठी भर दाने को—भूख मिटाने को
मुँह फटी पुरानी झोली को फैलाता
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।

यहाँ अलंकारों के अभाव में ही भिक्षुक का कारुणिक चित्र कितना मार्मिक है! 'यामिनी जागी' शीर्षक प्रसिद्ध कविता का बिम्बात्मक विधान देखिए:

प्रिययामिनी जागी।
अलस पंकज दृग अरुण-मुख—
तरुण—अनुरागी।
खुले केश अशेष शोभा भर रहे,
पृष्ठ ग्रीवा—बाहु उर पर तर रहे,
बादलों में घिर अपर दिनकर रहे,
ज्योति की तन्वी तड़ित—
द्युति ने क्षमा मांगी।
हेर उर-पट, फेर मुख के बाल,
लख चतुर्दिक चली मन्द मराल,
गेह में प्रिय स्नेह की जयमाल,
वासना की मुक्ति, मुक्ता
त्याग में तागी।

यहाँ सम्पूर्ण कविता बिम्बात्मक है। अप्रस्तुत विधान (अलंकार-योजना) केवल 'अलस पंकज दृग अरुण मुख' और 'बादलों में घिर अपर दिनकर रहे' जैसी एक-दो पंक्तियों में ही है, जो वर्ण्यवस्तु के बिम्ब को अलंकृत करने के लिए सहायक बनकर ही आया है। निराला की रचनाओं से वर्ण्य वस्तु के ऐसे बिम्बात्मक प्रयोगों के अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

कहीं-कहीं सालंकारिक बिम्ब-योजना भी बहुत सुन्दर की गई है। निम्न पंक्तियों में अन्त साधना का वर्णन सांगरूपक की योजना रूप में अर्जुन-द्वारा द्रौपदी-स्वयंवर में लक्ष्य भेद का बिम्ब रूप ग्रहण कर रहा है:

चक्र के सूक्ष्म छिद्र के पार,
बेधना तुझे मीन द्वार भार,
चित्त के जल में चित्र निहार,
कर्म का कार्मुक कर में——

मिलेगी कृष्णा सिद्धि महान,
खोजता वहीं उसे नादान। —गीतिका पृ० २८

निराला-काव्य में सादृश्यमूलक अलंकारों की प्रचुरता है। उपमानों और रूपकों के प्रयोग में तो निराला बहुत कुशल हैं।

उपमा अलंकार—निराला का उपमान विधान बड़ा अनूठा है। उन्होंने अधिकतर बिंबात्मक उपमाओं का प्रयुक्त किया है। सादृश्य भी प्रायः रहता है, पर निराला की उपमाओं में भी प्रभाव साम्य पर अधिक बल रहता है। सभी प्रकार की मूर्त अमूर्त योजनाएँ उन्होंने की हैं। कहीं-कहीं तो वे उपमाओं की माला सी पिरो देते हैं। भारत की विधवा के लिए अमूर्त मूर्त उपमाओं का जो भव्य प्रयोग निराला ने 'विधवा' (परिमल) कविता में किया है वह अत्यन्त अनूठा है उपमाओं की भव्य माला पिरोकर निराला ने 'विधवा' को भेंट की है—

अमूर्त उपमान (१) वह इष्टदेव के मन्दिर की पूजा सी
(२) वह क्रूर काल ताण्डव की स्मृति रेखा सी,
मूर्त उपमान (१) वह दीप शिखा सी शांत, भाव में लीन
(२) वह टूटे तरु की छुटी लता सी दीन,

इष्टदेव की पूजा और दीप शिखा से उपमित करके विधवा में प्रति पवित्र भाव जगाया गया है तथा क्रूर काल-ताण्डव की स्मृति रेखा के समान बताकर भाग्य की विडबना और समाज के अत्याचार से पीड़ित दशा का बोध कराया गया है। 'टूटे तरु की छुटी लता' से समानता जताकर विधवा की पति आश्रय से हीन नि सहाय दशा का कारुणिक प्रभाव उत्पन्न किया गया है। यहाँ स्पष्ट ही सादृश्य के स्थान पर प्रभाव-साम्य है।

'उसकी स्मृति' (परिमल) कविता म भी सुन्दरी की मुस्कान के लिए उपमाओं की झड़ी सी लगा दी गई है

मृदु सुगन्ध सी कोमल दल फूलों की
शशि किरणों की सी वह प्यारी मुस्कान
स्वच्छन्द गगन सी मुक्त, वायु-सी चचल,
खोई स्मृति को फिर आई सी पहचान

अंतिम पंक्ति में अमूर्त उपमान कल्पना में रंग भर रहा है। रमणी की चाल को लघु लहरों की गति से उपमित किया गया है

लघु लहरों की सी चपल चाल वह चलती।

मंद पवन के झोंकों से लहराते काले बालों की अमूर्त उपमा कवियों की कोमल कल्पना के जाल से दी गई है

मन्द पवन के झोंकों से लहराते काले बाल
कवियों के मानस की मृदुल कल्पना के से जाल।

कैसी नवीन उपमान-योजना है ! उस गोरी बाला को सुरसरिता-सैकत-सी भी हा गया है।

निराशा की गहन रात्रि मे राम की आँखो मे जनकसुता की छवि ऐसे छा गई मे अंधकार-घन मे विद्युत की कौंध (राम की शक्ति पूजा)। 'तुलसीदास' में लावली की खुली लटें शफरी-सी डोल रही थी—

बिखरी छूटीं शफरी अलकें,
निष्पात नयन-नीरज-पलकें।

दूसरी पंक्ति मे परम्परागत निरंग रूपक भी है।

'तुलसीदास' मे निराला की उपमा-योजना के अत्यन्त भव्य दर्शन होते हैं। एक उदाहरण यहाँ दिया जाता है : बुन्देले जो शत्रु का वैसे ही मर्दन कर डालते थे जैसे सूर्य अंधकार का, वे आज सुरभिहीन कुवक पुष्प के समान हो गए हैं। अथवा उत्सव के बाद का सन्नाटा या शिथिल छाया-जैसे बन गये हैं .

रिपु के समक्ष जो था प्रचण्ड, आतप ज्यों तम पर करोद्दण्ड।
निश्चल अब वही बुंदेलखण्ड आभागत, नि:शेष सुरभि कुवक समान,
संलग्न वृ त पर, चित्य प्राण, बीता उत्सव ज्यों चिह्नम्लान, छायाश्लथ।

रूपक—निराला जी उपमाओं की ही तरह रूपकों के भी बादशाह हैं। उनकी कल्पना चित्रमय रूपक प्रस्तुत करने मे बडी सजग रही है। 'तुलसीदास', 'राम की शक्ति पूजा' तथा अन्य अनेक कविताओं और गीतों में उन्होने विराट् रूपकों की भव्य सृष्टि की है। उनका राष्ट्र वदना का यह प्रसिद्ध गीत सागरूपक का भव्य उदाहरण है, भारत माँ का कितना विराट् रूप चित्रण हुआ है :

भारति, जय विजय करे।
कनक शस्य कमल धरे।
लंका पदतल शतदल,
गर्जितोर्मि सागर जल
धोता शुचि चरण युगल
स्तव कर बहु-अर्थ-भरे।
तरु-तृण-लता वसन,
अंचल में खचित सुमन
गंगा ज्योतिर्जल कण
धवल धार हार गले।

निरंग रूपक और उपमा का सुन्दर प्रयोग इन पंक्तियों मे देखिए।

स्नेह निर्झर बह गया है
रेत ज्यों तन रह गया है।

रूपक और उपमा की सुन्दर योजना के सहारे 'सन्ध्या सुन्दरी' का यह मानवीकरण कितना भव्य है।

दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह सन्ध्या सुन्दरी परी सी, धीरे, धीरे, धीरे ।

कवि ने सर्वत्र अपने वस्तु वर्णन, भाव वर्णन मे सुन्दर रूपकों की सृष्टि की है। उसकी कल्पना, उसकी समस्त चेतना ही रूपकमय है। 'जागो जीवन धनिके' में कवि ज्ञान की देवी से प्रार्थना करता है कि भारत में दु खो का अधेरा छाया हुआ है, उसके वीर्य रूपी सूर्य के सब पक्ष अधकार से ढके हुए हैं, अपने कर-किरणो से उपा के पट खोलो :

दु ख-भार भारत तम केवल
वीर्य सूर्य के ढके सकल दल,
खोलो उषा पटल निज कर अयि,
छविमयि, दिनमणिके !

कहो बादल कवि के सपनों के रूप मे मडराते हैं—'बादल आये, ये मेरे अपने सपने आँखों से निकले, मडलाये', 'जीवन रूपी वृन्तहीन सुमन' खिल गया है, वासना-प्रेयसी मधुर स्वर से पुकार कर कहती है कि जीवन रूपी उपवन मे जो बहार आई है, उसका आनन्द ले लो

जीवन प्रसून वह वृ तहीन खुल गया उषा नभ मे नवीन,
धाराएँ ज्योति-सुरभि उर भर बह चलीं चतुर्दिक कर्म-लीन,
वासना प्रेयसी बार-बार श्रुति मधुर मन्द स्वर से पुकार,
कहती, प्रतिदिन के उपवन के जीवन मे प्रिय आई बहार,

अनेक कविताओं मे कवि ने दोहरे सांगरूपक बाधे हैं। निम्न पक्तियो में एक ओर कलियों के खिलने का वर्णन है, दूसरी ओर प्रिय के रूप दर्शन स प्रियतमा आत्मा के आनन्दित होने का चित्र है

दृगों की कलियाँ नवल खुलीं,
रूप-इन्दु से सुधा बिन्दु लह, रह रह और धुलीं।
प्रणय-श्वास के मलय स्पर्श से,
हिल हिल हँसती चपल हर्ष से
ज्योति-सप्त मुख, तरुण वर्ष के, कर से मिली जुली। — गीतिका

व्यस्त रूपक भी सैकडों पक्तियो मे मिलता है—'जीवन के रथ पर चढकर', 'भीरुता के पास', 'सत्य का मिहिर द्वार', 'उर के शतदल पर', 'करुणा की किरणें', 'दृगो की कलिया', 'स्नेह का सरस सरोवर' आदि।

रूपकातिशयोक्ति के प्रयोग भी निराला काव्य म खूब पाये जाते है। एक उदाहरण लीजिए

वह कली सदा को चली गई दुनिया से,
पर सौरभ से है पूरित आज दिगन्त ।

सुन्दरी तथा उसके गुणो के कली एव सौरभ उपमानो का ही उल्लेख होने अर्थात् उपमेय के अवसान के कारण यह रूपकातिशयोक्ति अलकार है।

उल्लेख अलकार भी कई कविताओ मे रूपकमाला सा बना हुआ आया है। 'तुम और मैं' कविता आरम्भ से अन्त तक इसी का उदाहरण है। कुछ पक्तियाँ लीजिए

तुम दिनकर के खर किरण जाल,
मैं सरसिज की मुसकान,
तुम वर्षों के बीते वियोग,
मैं हूँ पिछली पहचान,
तुम योग और मैं सिद्धि,
तुम हो रागानुग निश्छल तप
मैं शुचिता सरल समृद्धि।

इसी प्रकार 'हिन्दी के सुमनों के प्रति' (अनामिका) कविता में कवि ने कथन शैली मे अपना और हिन्दी के नये कवि-सुमनों का जो वैविध्यपूर्ण उल्लेख किया है, वह बहुत ही मार्मिक है। कुछ पक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं :

मैं जीर्ण साज बहु छिद्र आज, तुम सुदल सुरग सुवास सुमन,
मैं पड़ा जा चुका पत्र न्यस्त, तुम अलि के नव रस-रंग-राग।
मैं हूँ केवल पद तल आसन तुम सहज विराजे महाराज।

'अनामिका' की 'प्रिया से' कविता मे कवि अपनी कविता-प्रेयसी का रूपकाश्रित उल्लेख यों करता है :

मेरे इस जीवन की है तू सरस साधना कविता,
मेरे तरु की है तू कुसुमित प्रिये कल्पना लतिका,
मधुमय मेरे जीवन की प्रिय है तू कमलकामिनी,
मेरे कुज कुटीर द्वार की कोमल चरण-गामिनी।

यहाँ परम्परित रूपक की छटा भी है और उल्लेख भी।

निराला-काव्य अन्योक्तियों की रगशाला है। अनेक कविताएँ, जुही की जुही अन्योक्तियाँ और समासोक्तियाँ हैं। 'जुही की कली', 'शेफालिका', 'प्रभाती' जैसी कविताओ मे प्रकृति चित्रण भी उद्देश्य होने से इन्हें समासोक्ति कहना ही युक्तियुक्त है। किन्तु निराला की 'दान', 'कुकुरमुत्ता', 'जलद के प्रति' आदि कई कविताएँ अन्योक्ति-काव्य का उत्तम उदाहरण है। 'कुकुरमुत्ता' एक प्रतीकात्मक व्यग्यप्रधान अन्योक्ति है।

उत्प्रेक्षा के सहारे प्रतीप अलकार की योजना निम्न पक्तियों में देखिए—

वायु के झकोरे से वन की मरोर पर

अचल से मानों हूँ छिपाती मुख
देख यह अनुपम स्वरूप मेरा ।

सादृश्यमूलक अलंकारों में कहीं कहीं संदेह अलंकार भी प्रयुक्त हुआ है। 'माया' (परिमल) का निम्न वर्णन संदेह के ही रूप में है

तू किसी के चित्त की है कालिमा
या किसी कमनीय की कमनीयता ?
या किसी दुख दीन की है आह तू ?
प्रथम विरही की कठिन विरह-व्यथा
या कि तू दुष्यन्त-कान्त शकुन्तला ?

कवि की सलोनी कल्पना ने यहाँ अनेक गुल खिलाये हैं। माया का संदेह रूप में कल्पनाप्रवण ऐसा उल्लेख शायद ही कहीं मिले। 'नयन' कविता (परिमल) की ये पंक्तियाँ भी संदेह अलंकार का उदाहरण हैं

मद भरे ये नलिन नयन मलीन हैं,
अल्प जल में या विकल लघु मीन हैं ?
या प्रतीक्षा में किसी की शर्वरी,
बीत जाने पर हुए ये दीन हैं ?

नयनों का संदेहपूर्ण आलंकारिक वर्णन कितना सरसरा है!

'परिमल' की 'जलद के प्रति' कविता की निम्न पंक्तियों में अपह्नुति, काव्य-लिंग और अनुप्रास की मिश्रित छटा पाई जाती है :

जलद नहीं, जीवनद, जिलाया जबकि जगज्जीवन मूल को ।
तपन-ताप सतप्त तृषातुर तरुण-तमाल तलाश्रित को ।

यहाँ जलद को छिपाने से अपह्नुति तथा जीवनद कहने के कारण को अगली पंक्ति में स्पष्ट करने से काव्यलिंग है।।

'राम की शक्तिपूजा' की इस पंक्ति में दुर्गा का रूपक बाँधता हुआ कवि अपह्नुति अलंकार के सहारे ही सिंधु का निषेध कर उसे दुर्गा का वाहन सिंह बताता है—

गरजता चरण प्रान्त पर सिंह वह, नहीं सिंधु,'

अत्युक्ति और अतिशयोक्ति भी निराला काव्य में यत्र-तत्र मिलती हैं। 'पंचवटी प्रसंग' कविता से उदाहरण देखिए—

(१) सृष्टि भर की सुन्दर प्रकृति का सौन्दर्य भाग
खींचकर विधाता ने भरा है इस अंग में ।
(२) विश्व भर को मदोन्मत्त करने की मादकता,
भरी है विधाता ने इन्हीं दोनों नेत्रों में ।

विरोधमूलक विरोधाभास अलंकार का प्रयोग भी एक-दो जगह हुआ है। निम्न

पंक्तियों में आनन्द-सुरापान से प्यास और भड़कने और अंतर जलने की बात विरोध का आभास करा रही है :

क्या जाने वह कैसी थी आनन्द सुरा
अधरों तक आकर बिना मिटाये प्यास गई जो सुख जलाकर अंतर,

साभिप्राय लाक्षणिक चित्रात्मक विशेषणों के प्रयोग में छायावादी कवि बहुत पटु हैं। अलंकार के रूप में इसे परिकर अलंकार की संज्ञा दी जाती है। निराला के कुछ विशेषण प्रयोग देखिए कितने आकर्षक है—'सोई तान', स्निग्ध आलोक, ज्योतिर्मयी लता आदि।

विशेषण विपर्यय—विशेषणों का यही विलक्षण प्रयोग पश्चिम के विशेषण-विपर्यय अलंकार का रूप भी लेता है। निराला ने विशेषण-विपर्यय का प्रयोग भी कई जगह किया है। 'प्रगल्भ प्रेम', 'आकुल तान', 'चल चरणों का व्याकुल पनघट', 'प्रिय की शिथिल सेज', 'किस विनोद की तृषित गोद में' आदि विशेषण-विपर्यय के सुन्दर उदाहरण हैं।

मानवीकरण—प्रकृतिगत मानवीकरण निराला काव्य की सर्वप्रमुख विशेषता है। शायद ही कोई कविता ऐसी हो, जहाँ प्रकृति का चित्रण हो और उसका मानवीकरण न हुआ हो। 'निराला के प्रकृति-चित्रण' प्रकरण में हम प्रकृति के मानवीकरण के उदाहरण 'जुही की कली', 'शेफालिका', 'सध्यासुन्दरी 'प्रपात के प्रति' आदि कविताओं से दे आए हैं। मानवीकरण अलंकार तो निराला-काव्य की पंक्ति पंक्ति में पाया जाता है। कवि ने हर वस्तु, हर दृश्य को सजीव मानवीय व्यक्तित्व प्रदान किया है। 'माया', 'स्मृति' जैसे अमूर्त विषयों—भावों का भी निराला जी ने इन कविताओं में सुन्दर मानवीकरण किया है।

शब्दालंकारों में निराला ने अनुप्रास का तो पंक्ति-पंक्ति में प्रयोग किया है। उनके सानुप्रासिक शब्द-चयन से ही हिन्दी खड़ी बोली भी ब्रज भाषा की सानुप्रासिक स्पर्द्धा में ठहर सकी। अनुप्रास का उदाहरण लक्षित किया जा चुका है। निराला-काव्य में श्रुत्य, वृत्य, छेकानुप्रास आदि अनुप्रास के सभी रूप मिल जाते हैं।

अनुप्रास के बाद दूसरा शब्दालंकार वीप्सा अधिक मिलता है।

'शीतल शीतल बहे समीरण' (विधवा) 'व्याकुल व्याकुल कुछ चिर-प्रफुल्ल मुख निश्चेतन', 'उतरे-धीरे धीरे वह प्रभु पद' (राम की शक्ति पूजा), 'जागो जागो आया प्रभात' (तुलसीदास) आदि अनेक उदाहरण निकाले जा सकते हैं।

पुनरुक्ति प्रकाश भी कहीं-कहीं दिखाई देता है—

रावण महिमा श्यामा विभावरी, अन्धकार,

यहाँ श्यामा और विभावरी समानार्थक शब्दों की पुनरावृत्ति सी लगती है।

श्लेष अलंकार भी कम तब प्रयुक्त हुआ है : 'व थे, मैं सिटा निरर्थक था' में निरर्थक शब्द श्लिष्ट है। एक अर्थ है व्यर्थ, बेकार और दूसरा है अर्थहीन अर्थात निर्धन।

अनल से मानों हैं छिपाती मुख
देख यह अनुपम स्वरूप मेरा।

सादृश्यमूलक अलकारों में कहीं-कहीं संदेह अलंकार भी प्रयुक्त हुआ है। 'माया' (परिमल) का निम्न वर्णन संदेह के ही रूप में है :

तू किसी के चित्त की है कालिमा
या किसी कमनीय की कमनीयता ?
या किसी दुख दीन की है आह तू ?
या विरही की कठिन विरह-व्यथा
या कि तू दुष्यन्त-कान्त शकुन्तला ?

कवि की सलोनी कल्पना ने यहाँ अनेक गुल खिलाये हैं। माया का संदेह रूप में कल्पनाप्रवण ऐसा उल्लेख शायद ही कहीं मिले। 'नयन' कविता (परिमल) की ये पंक्तियाँ भी संदेह अलंकार का उदाहरण हैं :

मद भरे ये नलिन-नयन मलीन हैं,
अल्प जल में या विकल लघु मीन हैं ?
या प्रतीक्षा में किसी की शर्वरी,
बीत जाने पर हुए ये दीन हैं ?

नयनों का संदेहपूर्ण आलंकारिक वर्णन कितना सरस है!

'परिमल' की 'जलद के प्रति' कविता की निम्न पंक्तियों में अपह्नुति, काव्य-लिंग और अनुप्रास की मिश्रित छटा पाई जाती है :

जलद नहीं, जीवनद, जिलाया जबकि जगज्जीवन मृत को।
तपन ताप-संतप्त तृषातुर तरुण-तमाल तलाश्रित को।

यहाँ जलद को छिपाने से अपह्नुति तथा जीवनद कहने के कारण को अगली पंक्ति में स्पष्ट करने से काव्यलिंग है।।

'राम की शक्तिपूजा' की इस पंक्ति में दुर्गा का रूपक बाँधता हुआ कवि अपह्नुति अलंकार के सहारे ही सिंधु का निषेध कर उसे दुर्गा का वाहन सिंह बताता है—

गरजता चरण प्रान्त पर सिंह वह, नहीं सिंधु;'

अत्युक्ति और अतिशयोक्ति भी निराला-काव्य में यत्र-तत्र मिलती हैं। 'पंचवटी प्रसंग' कविता से उदाहरण देखिए—

(१) सृष्टि भर की सुन्दर प्रकृति का सौन्दर्य भाव
खींचकर विधाता ने भरा है इस अंग में।

(२) विश्व भर को मदोन्मत्त करने की मादकता,
भरी है विधाता ने इन्हीं दोनों नेत्रों में।

विरोधमूलक विरोधाभास अलंकार का प्रयोग भी एक-दो जगह हुआ है। निम्न

पंक्तियों में आनन्द मुस्कान से व्याप्त और भड़कने और सुन्दर जलने की बात विशेष का आभास करा रही है।

क्या जाने वह कैसी थी आनन्द सुरा
अधरों तक आकर बिना मिटाये प्यास गई जो सुख दरसाकर सत्वर,

साभिप्राय लाक्षणिक चित्रात्मक विशेषणों के प्रयोग में छायावादी कवि बहुत पटु हैं। अलंकार के रूप में इसे परिकर अलंकार की संज्ञा दी जाती है। निराला के कुछ विशेषण प्रयोग देखिए कितने आकर्षक हैं— 'मुँदे प्राण', 'स्निग्ध आलोक', ज्योतिर्मयी लता आदि।

विशेषण विपर्यय—विशेषणों का यही विलक्षण प्रयोग कभी-कभी विशेषण-विपर्यय अलंकार का रूप भी लेता है। निराला ने विशेषण-विपर्यय का प्रयोग भी कई जगह किया है। 'अचल प्रेम', 'आकुल तान', 'धन चरणों का व्याकुल पनघट', 'प्रिय की शिथिल सेज', 'प्रिय किशोर की कुसुमित गोद में' आदि विशेषण-विपर्यय के सुन्दर उदाहरण हैं।

मानवीकरण—प्रकृतिगत मानवीकरण निराला काव्य की सर्वप्रमुख विशेषता है। शायद ही कोई कविता ऐसी हो, जहाँ प्रकृति का चित्रण हो और उसका मानवीकरण न हुआ हो। 'निराला के प्रकृति चित्रण' प्रकरण में हम प्रकृति के मानवीकरण के उदाहरण 'जुही की कली', 'शेफालिका', 'सन्ध्यासुन्दरी' 'प्रपात के प्रति' आदि कविताओं से दे आए हैं। मानवीकरण अलंकार तो निराला काव्य की पंक्ति-पंक्ति में पाया जाता है। कवि ने हर वस्तु, हर दृश्य को सजीव मानवीय व्यक्तित्व प्रदान किया है। 'मल्हार', 'स्मृति' जैसे अमूर्त विषयों—भावों का भी निराला जी ने इन कविताओं में सुन्दर मानवीकरण किया है।

शब्दालंकारों में निराला ने अनुप्रास का ही पंक्ति पंक्ति में प्रयोग किया है। उनके आनुप्रासिक शब्द-चयन से ही हिन्दी खड़ी बोली भी ब्रज भाषा की आनुप्रासिक स्पर्द्धा में ठहर सकी। अनुप्रास का उदाहरण उद्धृत किया जा चुका है। निराला-काव्य में श्रुत्य, वृत्य, छेकानुप्रास आदि अनुप्रास के सभी रूप मिल जाते हैं।

अनुप्रास के बाद दूसरा शब्दालंकार वीप्सा अधिक मिलता है।

'डोलता डोलता वह समीरण' (विधवा) 'व्याकुल व्याकुल कुछ चिर-प्रफुल्ल मुख निकेतन', 'धीरे-धीरे धीरे मद मधु पद' (राम की शक्ति पूजा), 'जागो जागो आया प्रभात' (तुलसीदास) आदि अनेक उदाहरण गिनाये जा सकते हैं।

पुनरुक्ति प्रकाश भी कहीं-कहीं दिखाई देता है—

शयन महिमा श्यामा विभावरी अन्धकार,

यहाँ श्यामा और विभावरी समानार्थक शब्दों की पुनरावृत्ति भी लगती है।

श्लेष अलंकार भी यत्र तत्र प्रयुक्त हुआ है: 'व्यर्थ, मैं दिशा निरर्थक था' में निरर्थक शब्द श्लिष्ट है। एक अर्थ है व्यर्थ, बेकार और दूसरा है अर्थहीन अर्थात् निर्धन।

भाव और भाषा का सामंजस्य तथा स्वरैक्य स्थापित करने के लिए निराला ने ध्वन्यर्थव्यंजना (Onomatopoeia) का भी पर्याप्त प्रयोग किया है। उनके 'बादल राग' में बादल का झर झर बरसना, घर घर गहरना आदि की शब्द ध्वनि से ही अर्थबोध हो गया है । एक उदाहरण और देखिए । अभिसारिका की गति का नादमय चित्र निम्न पंक्तियों में कैसा भव्य है—

प्रिय पथ पर चलती सब कहते शृंगार।
कण कण कङ्कण, प्रिय किण् किण् रव किंकिणी,
रणन रणन नूपुर, उर लाज, लौट रंगिणी।

यहाँ शब्दों से ही नूपुर, किंकिणी, कंगन आदि की ध्वनियाँ प्रकट हो रही हैं।

इस प्रकार निराला काव्य में अलंकरण की प्रवृत्ति खूब पाई जाती है। यह अलंकृति उनकी छायावाद युग की रचनाओं में अधिक है। बाद की 'बेला', 'नये पत्ते', 'कुकुरमुत्ता', 'अर्चना', 'आराधना', 'साध्यकाकली' आदि यथार्थपरक और प्रार्थनापरक गीतों में अलंकार-सज्जा बहुत कम हो गई। निराला का वास्तविक कलाकार कवि तो छायावादी निराला ही रहा।

: ६ :

गीत-प्रगीत-शिल्प

काव्यरूप—निराला हिन्दी के श्रेष्ठ गीतकार कवि हुए हैं। यद्यपि उन्होंने 'राम की शक्ति पूजा' और 'तुलसीदास' नामक दो सफल सुन्दर लघु खण्ड काव्यों का भी प्रणयन किया, पर उनकी मुख्य प्रवृत्ति मुक्तककार-गीतिकार की ही थी। निराला के समस्त गीत प्रगीत काव्य को १. गीत, २. लघुप्रगीत और ३. दीर्घ प्रगीत—इन तीन भागों में बाँटा जा सकता है। निराला आधुनिक युग के सर्वश्रेष्ठ गीतकार थे। 'गीतिका', 'अर्चना', 'आराधना', 'गीतगुंज' और 'सांध्यकाकली' उनके पाँच गीत-संग्रह हैं और 'परिमल', 'अनामिका', 'अणिमा', 'बेला' आदि काव्य-संग्रहों में भी सैकड़ों गीत संकलित हैं। इस प्रकार निराला ने लगभग ५०० गीतों की रचना की। निराला के काव्य में लघुप्रगीतों की संख्या गीतों से कम है। 'जुही की कली', 'भिक्षुक', 'विधवा', 'तोड़ती पत्थर', 'दान' आदि निराला के श्रेष्ठ लघु प्रगीत हैं। निराला ने 'कुकुरमुत्ता', 'सरोज स्मृति', 'वन बेला' 'सहस्राब्दि' आदि कई आख्यानात्मक अथवा वर्णनात्मक दीर्घ प्रगीत भी रचे। 'कुकुरमुत्ता', 'सरोज-स्मृति', 'सेवा प्रारम्भ' आदि आख्यानात्मक दीर्घ प्रगीत हैं, पर 'वन बेला', 'सहस्राब्दि' आदि वर्णनात्मक दीर्घ रचनाएँ हैं। निराला जी की इन आख्यानात्मक दीर्घ प्रगीत रचनाओं में ही कुछ आलोचक उनकी 'राम की शक्ति पूजा' और 'तुलसीदास' की गणना भी कर लेते हैं। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने 'तुलसीदास' और 'राम की शक्ति पूजा' को खण्डकाव्य नहीं माना केवल आख्यानक प्रगीत कहा है। (देखिए कवि निराला : नन्ददुलारे वाजपेयी पृ० ७६)। इसमें संदेह नहीं कि इन दोनों रचनाओं में कथा और घटनाएँ बहुत न्यून है तथापि अपने संक्षिप्त कथा विधान में ही ये हिन्दी के श्रेष्ठ लघु खण्ड काव्य हैं। भाव और शैली की जो उदात्तता, नाटकीय वातावरण और संवाद शैली की जो कुशलता तथा उद्देश्य की जो महानता इन दोनों रचनाओं में पाई जाती है वह निश्चय ही इन्हें उत्तम कोटि के खण्ड काव्य सिद्ध करती है। निराला की 'सरोज-स्मृति', 'सेवा प्रारम्भ' आदि दीर्घ प्रगीत रचनाओं से इनका भेद स्पष्ट है। अतः 'तुलसीदास' और 'राम की शक्ति पूजा' को आख्यानात्मक प्रगीत कहना युक्तियुक्त नहीं। दोनों ग्रन्थों की विद्यमानता है

भी वे सफल खण्डकाव्य हैं। गीति तत्व तो 'कामायनी' मे भी प्रचुर हैं, तो क्या 'कामायनी' प्रबध काव्य नही ? 'तुलसीदास' और 'राम की शक्ति पूजा' छायावाद के श्रेष्ठ खण्डकाव्य हैं।

निराला के दीर्घ प्रगीतो मे 'सरोज स्मृति', सेवा प्रारभ, 'सहस्राब्दि', 'पचवटी प्रसग' आदि लगभग आधी रचनाएँ जहाँ सगठित सफल प्रगीत रचनाएँ हैं, वहाँ 'वन वेला'-जैसी कई दीर्घ रचनाओ मे भाव, शैली, बघ, विषय आदि की शिथिलता और बिखराव पाया जाता है। 'पचवटी प्रसग' मे यह दोष तो नही है और यह रचना अपने सभी खण्डो मे आकार मे 'राम की शक्ति पूजा' से कुछ ही छोटी होगी पर इसमे 'राम की शक्ति पूजा' जैसी उदात्तता और प्रौढ़ता नही। इसी से आख्यानात्मक होते हुए भी हम इसे खण्ड काव्य नही मान सकते। निराला का गीतकार उनके गीतों और लघु प्रगीतो मे ही पूर्ण सफल दिखाई देता है। 'तुलसीदास' और 'राम की शक्ति पूजा' से यह स्पष्ट प्रमाणित होता है कि निराला मे प्रबधकार की पूरी प्रतिभा विद्यमान थी। 'कुकुरमुत्ता' निराला की दीर्घ कविता है जिसमें शिल्प की दृष्टि से शिथिलता आदि अनेक और बिखराव का दोष पाया जाता है।

गीत शिल्पी के रूप मे निराला का स्थान आधुनिक कवियों मे सर्वोच्च है। छायावादी कवियों मे महादेवी ही उनकी टक्कर की गीतकार दिखाई देती हैं पर महादेवी के गीतो मे वह भाव विस्तार, वह वैविध्य, गीतकला के वे अनेकानक प्रयोग नही, जो निराला के गीतो मे पाये जाते हैं। विषय की दृष्टि से निराला के गीत कई प्रकार के हैं—१. शृगारपरक गीत, २ रहस्यवादी गीत, ३ ऋतुगीत ४ विनय, प्रार्थना के भक्तिपरक गीत, ५ दार्शनिक गीत ६ राष्ट्रीय गीत, ७ सामाजिक प्रगतिशील गीत प्रकार के गीतो की निराला ने सुन्दर रचना की।

१ निराला के शृगार-गीतो मे अनुभूति की तीव्रता, उदात्त भाव-सवेदना और सूक्ष्मता पाई जाती है। होली के एक गीत के सिवाय निराला के इन गीतो मे शारीरिक स्थूल उद्दामता नही पाई जाती। उन्होंने आत्मिक शृगार का ही वर्णन किया है। लौकिक शृगार के अनेक गीतों मे भी निराला ने अलौकिक सकेत प्रकट किये हैं। इन शृगार गीतो मे अनेक गीत ऐसे भी हैं जिनमे प्रकृति-चित्रण के माध्यम से शृगार-वर्णन हुआ है जैसे 'परिमल' का भ्रमर-गीत। यहाँ कवि ने समासोक्ति शैली में प्रकृति के प्रणय-व्यापार रूप मे शृगार का चित्रण किया है।

२ निराला जी के रहस्यवादी गीतो में भी अनुभूति की तीव्रता और सूक्ष्मता पाई जाती है। निराला के रहस्यवाद पर विचार करते हुए हम उनके रहस्यात्मक गीतो की विषयपरक विशेषताओ का अध्ययन कर चुके हैं।

३. ऋतु-गीतो म वर्षा, वसत और शरद् का ऋतु-वर्णन अधिक है। आरभिक गीतों मे उल्लासपूर्ण मानवीय भावनाओ का आरोपण किया गया है। परवर्ती गीतो मे प्रकृति का यथातथ्य वस्तुपरक चित्रण हुआ है। कवि ग्राम-प्रकृति की ओर आकर्षित

हुआ। 'अर्चना', 'आराधना' आदि परवर्ती गीतसग्रहो मे भाषा का प्रयोग भी बहुत सरल हो गया।

४. यो तो निराला आरभ से ही विनय और प्रार्थना के गीत लिखते रहे हैं, पर अर्चना और आराधना में यह प्रवृत्ति चरम विकास पर पहुँची। आरम्भिक विनय-गीतो मे जीवन मे अडिग विश्वास और विजयी रहने की प्रार्थना की गई है। परवर्ती विनयगीत अधिक आत्मोन्मुख हैं। उनमे करुणा, शरणागति, कृपा पर विश्वास आदि भक्ति भाव की तल्लीनता के साथ-साथ विश्व मगल की कामना पाई जाती है।

५ दार्शनिक गीत सख्या मे बहुत ही कम हैं। यह इस बात का प्रमाण है कि निराला सगीत के साथ भाव प्रवणता को गीत का अनिवार्य तत्त्व मानते थे। 'कौन तम के पार रे कह' तथा 'पास ही रे हीरे की खान' जैसे गीतो मे दार्शनिक गभीरता और दुरूहता पाई जाती है।

६ राष्ट्रीय गीत भी निराला ने कम ही रचे है। पर हैं बड़े भावपूर्ण और कलात्मक। 'भारति जय विजय करे' उनका श्रेष्ठतम राष्ट्रगान है।

७ सामाजिक विषमताओ और विडम्बनाओ का विस्तृत प्रकाशन तो निराला ने अपनी गीति रचनाओ मे ही किया है, पर कुछ गीतों मे भी सामाजिक चित्रण पाया जाता है।

निराला के गीत भारतीय रस-पद्धति पर रचे गए हैं, अत रस केन्द्रित हैं। शृगार रस, भक्ति रस, करुण रस, शात रस, वीर रस, देश प्रेम, प्रकृति प्रेम, मानव-प्रेम, हास्य रस आदि विविध रस भावो की पयस्विनी निराला के गीतो मे प्रवाहित हुई है।

निराला के गीतो मे भाव सवेदनाओ की विविधता का कारण यह है कि उनके अनेक गीतो मे वैयक्तिकता और आत्मव्यजना के साथ वस्तुमुखी प्रवृत्ति भी पाई जाती है। जहाँ महादेवी के समस्त गीत वैयक्तिक और सर्वथा आत्मव्यजक हैं, वहाँ निराला के राष्ट्रगीत, ऋतु गीत, सामाजिक गीत और दार्शनिक आदि कई प्रकार के अनेक गीत वस्तुमुखी भी हैं।

रस-भाव और विषय की विविधता के साथ ही निराला के गीतों मे रागो, छन्दो, भाषा-शैली आदि की भी विविधता पाई जाती है। गीत-सगीत के क्षेत्र मे निराला ने जितने प्रयोग किये हैं, उतने आधुनिक किसी कवि ने नही किये।

निराला के गीत अधिकतर भारतीय सगीत पद्धति को अपनाये हैं। पर उन्होंने देशी विदेशी सभी सगीत-पद्धतियों के प्रयोग किये। बगला के रवीन्द्र-सगीत का जैसा सफल अवतरण निराला ने अपने गीतो मे किया है, वह अन्य कोई कवि नहीं कर सका। सगीत की दृष्टि से गीत-योजना के निराला मे अनेक रूप मिलते हैं। शास्त्रीय राग-रागनियो मे बँधे 'गीतिका' आदि के गभीर गीत निराला की गीत-कला के उत्कृष्टतम नमूने हैं। निराला के अनेक गीत स्वच्छन्द सगीत-पद्धति का भी अनु-वर्तन करते हैं। इनमें भारतीय-पाश्चात्य सगीत-लयों, ग्राम-गीत शैली आदि का

समन्वय पाया जाता है । तीसरे प्रकार के गीत अशास्त्रीय लोक गीत भी निराला रचे हैं । उन्होने फारसी की गजलो व बहरो के प्रयाग भी 'बेला' सग्रह मे किये हैं *प्रयोग और विविधता की दृष्टि से निराला आधुनिक युग के सर्वश्रेष्ठ गीतकार हैं* 'अर्चना', 'आराधना' और 'गीत गुंज' के कुछ गीतो की धुनें चलती हुई भजन पद्धति बहरो, दादरा, ठुमरी आदि बन्दिशो पर हैं ।

गीत और प्रगीत के छन्द पृथक्-पृथक् होते हैं । गीत का छन्द-बध विशेष रूप से सगीत के आरोह-अवरोह पर निर्भर करता है । एक सफल गीतकार की भांति *निराला ने सगीत की मात्राओ के अनुरूप ही गीत-छन्दों का निर्माण किया है ।* निराला के गीतो मे स्वर-सधान की अपूर्व क्षमता है ।

निराला के गीतो की भाषा सरस, सरल, प्रवाहात्मक, मधुर एव स्वाभाविक है । कर्कश और खण्डित शब्दो का समावेश कहीं नही है । स्वर-सवेदन से भी भाव निर्माण की अपूर्व क्षमता निराला की पद-योजना मे है । सानुप्रासिक और ध्वन्यर्थ व्यजक शब्दो के प्रयोग से निराला ने अपने गीतो की कोमलकात पदावली को अत्य-धिक सरस, अत्यधिक प्रवाहात्मक एव सगीतमय बनाया है । यद्यपि गीत अर्थगत कम हो तो भी काम चल जाता है, अर्थगत कमी को उसकी स्वरगत विशेषता कुछ ढांप लेती है, पर यदि स्वर-सम्पदा और अर्थ सपदा दोनो का सामजस्य हो जाय तो कहना ही क्या ! निराला के गीत इस द्विविध सामजस्य से ओत प्रोत हैं ।

निराला के 'गीतिका' आदि के प्रारभिक गीतो पर समासबहुला पदावली होने का दोष लगाया जाता है । पर अव्वल तो वैसी समास बहुला पदावली का निराला ने अपने गीतो मे प्रयोग नही किया जो उनकी 'राम की शक्ति पूजा' के प्रारभ मे प्रयुक्त हुई है। 'गीतिका' आदि के प्रारभिक गीतो मे अधिक सश्लिष्ट समास नहीं हैं, दूसरे निराला की सामासिक पदावली की सगीत से पूर्ण मैत्री पाई जाती है । अत. प्रारम्भिक गीतो की सामासिक पदावली भी श्रुतिमधुर और सगीतमय होने से कोई दोष उत्पन्न नही करती । प्रगीतो मे चाहे सामासिकता दोष कही जाय, पर गीत मे मामूली सामासिकता दोष के स्थान पर गुण बन जाती है, यदि वह सगीत को त्वरा प्रदान करती है ।

निराला के गीत अधिकाशत सक्षिप्त हैं और उनमे एकान्विति का गुण विशेष है । महादेवी के गीतों की तरह निराला के गीतो मे पुनरावृत्ति का दोष दिखाई नही देता । सारे बध एक समग्र भाव या वस्तु चित्र को उपस्थित करते हैं। उनके गीतों मे कला-लाघव का गुण है । एक भी शब्द फालतू नही । शब्दो की इतनी मित-व्ययिता शायद ही अन्य किसी गीतकार मे हो । प्रारभिक गीतो मे सामासिकता को भी इसी मितव्ययिता या कला लाघव ने जन्म दिया । निराला ने प्राय चार-पाच बधों से अधिक बध अपने गीतो मे नही रखे । उन्होंने लम्बे प्रगीत तो रचे पर गीत नहीं । निराला के गीतकार की प्रबुद्धता इसी से सिद्ध हो जाती है । बंधो मे पुनरावृत्ति प्राय. नहीं हैं ।

जहाँ निराला के गीतो की टेकें सार गर्भित और कलात्मक हैं, वहाँ उनके गीतो का अंतिम बंध दार्शनिक या आध्यात्मिक पर्यवसान का द्योतक होता है। जिस प्रकार मध्ययुगीन सूर, तुलसी आदि के पदों मे अंतिम पंक्ति 'सूर के प्रभु' से सम्बंधित हो जाती है, कुछ इसी प्रकार निराला के गीतो का अंत आध्यात्मिक पूत भावनाओं से ओत प्रोत है।

इस प्रकार निराला के गीतों में गीत-शिल्प की भाव-प्रवणता, भावान्वय, संक्षिप्तता, कला, लाघव, संगीतात्मकता, कोमलकांत-माधुर्यव्यंजक पदावली, वैयक्तिकता आदि सभी विशेषताएँ विद्यमान हैं।

निराला का प्रगतिशिल्प भी गतिशील, आवृत्तिहीन और समग्र है। उसमे भावान्वय है। लघु प्रगीतो मे संक्षिप्तता, संगठन, प्रवाह, भावान्वय, संगीतात्मकता, भावप्रवणता तथा चित्रोपमता आदि गुण विशेष रूप मे पाये जाते हैं। अनेक प्रगीतों की भी अंतिम पंक्तियाँ एक दार्शनिक उपसंहार प्रकट करती हैं, जैसे 'तरंगो के प्रति' कविता में तरंगों का आरंभ मे अनन्त का नीला आँचल हिला कर आना और अंत मे उसी असीम मे मिल जाना—एक दार्शनिक संकेत है जो सारी कविता को प्रतीकात्मक बना देता है।

'जूही की कली' मे गत्यात्मक चित्रों, क्रिया-व्यापारो की गतिशीलता और भावों के आरोह-अवरोह का अत्यन्त सुन्दर नाटकीय प्रस्तुतीकरण हुआ है।

जहाँ कही प्रगीतो के बंधों मे आवृत्ति है, वहाँ भी वस्तुचित्रो का नव-नवोन्मेष हुआ है। 'स्मृति' कविता से उदाहरण देखिए :

(१) सुप्त मेरे अतीत के गान
सुना प्रिय, हर लेती हो ध्यान।
(२) वायु व्याकुल शतदल सा हाय
विकल रह जाता है निरुपाय।
(३) आज निद्रित अतीत में बद्ध
ताल वह, गति वह, लय वह छन्द।
(४) वही चुम्बन की प्रथम हिलोर
स्वप्न-स्मृति, दूर, अतीत, अछोर।

चार बंधों की इस कविता की अंतिम पंक्तियों में भाव एक ही है, पर उसे न केवल नये रूप-विधान अपितु नव-नव तुकों और नव पदावलो से नव-नव सुन्दर रूप प्रदान किया गया है। अत: निराला के आवृत्तिमूलक प्रगति-शिल्प में भी एकरसता या बासीपन नहीं।

निराला के दीर्घ प्रगीतों मे 'सरोज स्मृति' जैसे एक-दो प्रगीतों का काव्य-शिल्प भी लघु प्रगीतों की तरह ही सुगठित है। भाव और शैली का संयोजन अप्रतिम है।

निराला के प्रगीत शिल्प में भी उनके गीत शिल्प की उपर्युक्त सभी विशेषताएँ पाई जाती हैं। इस प्रकार संक्षेप में कहा जा सकता है कि निराला युग के एक बहुत बड़े गीत-गीतिकार थे। यद्यपि उनके मुक्त छन्द का बहुत शोर हुआ और अनुसरण भी, पर उन्होंने विविध छन्दों में जो गीत-प्रगीत रचे, उनसे उनकी छन्द-निर्माण की अद्भुत शक्ति का परिचय मिलता है।

निराला के मुक्त छन्द में तुकांतता का अभाव माना जाता है; ठीक भी है, उन्होंने अपनी पंक्तियों के अन्त में तुक साम्य नहीं रखा है, पर उनकी तुकांतहीन पंक्तियों के बीच-बीच में अनेक शब्द ऐसे प्रयुक्त रहते हैं जो तुक-साम्य के कारण अत्यन्त सुन्दर संगीतात्मक ध्वनियाँ प्रकट करते हैं। एक उदाहरण देखिए :—

देख यह कपोत कंठ
बाहुवल्ली कर सरोज
उन्नत उरोज पीन क्षीण कटि
नितम्ब भार चरण सुकुमार
गति मन्द मन्द
छूट जाता धैर्य ऋषि मुनियों का
देवों भोगियों की तो बात ही निराली है।

मुक्त छन्द की उपर्युक्त अतुकांत पंक्तियों में संगीतात्मक प्रवाह कितना भव्य है! इस समग्र प्रवाह के बीच में 'सरोज' और 'उरोज', पीन और क्षीण, नितम्ब भार और चरण सुकुमार आदि पदों में अद्भुत तुकसाम्य है। अतः यह कहना भ्रांति है कि निराला ने तुकान्तता का कोई ध्यान नहीं रखा। सच तो यह है कि निराला ने सानुप्रासिक और तुकसाम्यपूर्ण शब्दों के विशिष्ट प्रयोग से ही अपने मुक्त छन्द में संगीतात्मकता का गुण भर दिया है। तुक-साम्य, अनुप्रास और वीप्सा ('गति मन्द मन्द' में) आदि शब्दालंकारों के प्रयोग से निराला की पदावली कितनी मधुर बन गई है।

निराला जी ने छन्दानुरूप भाषा के प्रयोग की अपूर्व क्षमता दिखाई है। 'तुलसीदास'—जैसे आख्यानात्मक दीर्घ काव्य में निराला ने दीर्घछन्दों में उदात्त भाषा का प्रयोग किया है। इसके विपरीत जहाँ छोटे छोटे छन्दों का प्रयोग किया है, वहाँ भाषा सरल और मृदुल रखी है। राग-रागनियों से युक्त निराला के गीतों में भी अनुरूप छन्द विन्यास और वर्ण-मैत्री की छटा देखते ही बनती है। 'जग का एक देखा तार' गीत में यह विशेषता अवलोकनीय है।